स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में आर्थिक संघर्ष की अभिव्यक्ति

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की
पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु
प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
डा० उदय त्रिपाठी
रीडर-हिन्दी विभाग
मऊरानीपुर
श्री अग्रसेन महाविद्यालय

प्रस्तुति
सुनीता गुप्ता
एम.ए. (हिन्दी)

हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झांसी (उ०प्र०)

शत् शत् नमन ....

श्री मां के चरणों में सादर समर्पित

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती सुनीता गुप्ता मेरे पर्यवेक्षण में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी, पी–एच.डी. उपाधि हेतु "स्वातन्त्र्योत्तर-हिन्दी कहानियों में आर्थिक संघर्ष की अभिव्यक्ति" नामक शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर रही हैं। श्रीमती सुनीता गुप्ता का यह अपना प्रयास है और इन्होंने विश्वविद्यालय के नियमों के अनुरूप उपस्थित रहकर यह शोध कार्य पूर्ण किया है।

डा० उदय त्रिपाठी

रीडर हिन्दी विभाग

श्री अग्रसेन महाविद्यालय

मऊरानीपुर–झांसी

प्राक्कथन

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में आर्थिक संघर्ष की अभिव्यक्ति शीर्षक पर शोध प्रबंध प्रस्तुत है–

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का संघर्ष भारतीय जीवन की दुर्दशा को सुधारने के लिये हुआ था। वास्तविक लक्ष्य तो आर्थिक आजादी प्राप्त करना था। राजनैतिक आजादी तो साधन के रूप में लक्ष्य में रही थी यही कारण है कि आजादी के बाद शासन की व्यवस्था व राजनैतिक आन्दोलनों का सार रूप में उद्‌देश्य बना कि हर हाथ को काम मिले, हर पेट को रोटी मिले, और हर व्यक्ति को कपड़ा व मकान उपलब्ध हो यही सब प्रयास आजादी के बाद से सरकारें कर रही हैं फिर भी देश का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे है और करोड़ों हाथ बेरोजगार हैं। इन स्थितियों से भारतीय जीवन के आर्थिक तनाव व संघर्षों की एक व्यथा गाथा देश के जीवन में उभरती रही है।

हिन्दी साहित्य में यह वही युग है जिसमें भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्षों के अन्तर्द्वन्दों को गहरी संवेदना के साथ कहानी विधा में अभिव्यक्ति मिली है। इस शोध प्रबन्ध में भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष के निरूपण को आधुनिक हिन्दी कहानियों में परखा गया है और आर्थिक विकास की कसौटी पर उसकी विवेचना की गई है।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में आधुनिक हिन्दी कहानी और उसके स्वरूप

की विवेचना की गई है।

द्वितीय अध्याय के अ भाग में स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष के पृष्ठभूमि की विवेचना की गई है। इसी के समानान्तर ब भाग में प्रेमचन्द व उनके समकालीन हिन्दी कहानियों में भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष के निरूपण की विवेचना की गई है।

तृतीय अध्याय के अ भाग में स्वतन्त्रता के पश्चात आर्थिक नियोजन और जनता के आर्थिक उत्थान के प्रयास और प्रभाव को दर्शाया गया है। इसी अध्याय के ब भाग में उक्त आर्थिक नियोजन और जनता के आर्थिक विकास व प्रभाव को आधुनिक हिन्दी कहानियों में मिली अभिव्यक्ति की विवेचना की गई है।

चतुर्थ अध्याय में अ भाग के अन्तर्गत ग्रामोद्योग तथा सहकारिता आन्दोलन के प्रभावों को समझा गया है तथा इस अध्याय के ब भाग में आधुनिक हिन्दी कहानियों में ग्रमोद्योग तथा सहकारिता आन्दोलन का भारतीय जीवन के आर्थिक विकास के प्रभाव की विवेचना की गई है।

पंचम अध्याय के अ भाग को भारतीय जीवन के विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक, आन्दोलनों का भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव की समीक्षा में ढाला गया है। और इसी अध्याय के ब भाग में आधुनिक हिन्दी कहानियों पर इस प्रकार

के विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक आन्दोलनों के आर्थिक प्रभावों को दिग्दर्शित करते हुये इसके अच्छे व बुरे परिणामों को बताया गया है।

षष्ठ अध्याय के अ भाग में बेरोजगारी से जन्मे आर्थिक तनाव व संघर्ष की विवेचना की गई है ब भाग में बेरोजगारी से जन्मे आर्थिक तनाव की स्थितियों का आधुनिक हिन्दी कहानियों पर पड़े प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

सप्तम् अध्याय के अ भाग में भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की वास्तविक सामान्य स्थिति और आर्थिक विकास की सम्भावनाओं को इस अध्याय में उतारा गया है। इस अध्याय के ब भाग में भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष व आर्थिक विकास तथा वास्तविक सामान्य स्थिति के प्रभावों को आधुनिक हिन्दी कहानियों में इसकी अभिव्यक्ति और निरूपण की विवेचना की गई है।

अष्टम् अन्तिम अध्याय है इस अध्याय में स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में आर्थिक संघर्ष की अभिव्यक्ति की सारपूर्ण विवेचना की गई है।

मुझे इस कार्य में जिन विद्वानों का सहयोग मिला और विभिन्न विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के प्रमुखों ने उपयोगी सामग्री उपलब्ध कराई उन सभी के प्रति मैं आभारी हूं।

मेरे जीवन साथी श्रीमान शिवदास जी तथा बृजकिशोर और संजीव कुमार,

मनोज कुमार व कमलेश शर्मा, इन्होंने मुझे जो सहयोग दिया उसके लिये कृतज्ञता ज्ञापन केवल औपचारिकता ही है।

पूज्यनीय बाबूजी श्री विश्वनाथ गुप्ता तथा अम्मा जी श्रीमती भगवती देवी व मेरे गुरु श्रीमान शारदा प्रसाद उदैनियां जी के शुभाशीर्वाद मेरे लिये सदैव प्रेरणादायी रहे हैं।

विशेष रूप से डी०वी० कालेज, उरई, गांधी महाविद्यालय, उरई तथा अग्रसेन महाविद्यालय, मऊरानीपुर के पुस्तकालय अध्यक्षों के विशेष सहयोग से समुचित शोध सामग्री जुटा सकी हूं। इनके प्रति आभार प्रकट करना मेरा नैतिक दायित्व है।

शोध निर्देशक के रूप में मैं प्रो० उदय त्रिपाठी के मार्ग दर्शन व आशीर्वाद को कैसे भुला सकती हूं, मैं श्रीमान रामबाबू की हार्दिक आभारी हूं जिन्होंने मेरे शोध–प्रबन्ध को बड़े ही सुन्दर लेखों से टंकित किया। श्री अखिलेश कुमार जी ने मुख्य पृष्ठ मुद्रण एवं इस शोध–प्रबन्ध को पुस्तक के रूप में तैयार किया एवं अनेक सूचनायें एकत्र करके मुझ पर जो एहसान किया है उसके लिये में ह्रदय से आभारी हूं। अतः मुझे हार्दिक सन्तोष होगा कि यह शोध–प्रबन्ध हिन्दी साहित्य के ज्ञान क्षेत्र में अपनी उपादेयता स्थिर कर सकेगा।

सुनीता गुप्ता

- श्रीमती सुनीता गुप्ता

अनुक्रम

1.	**अध्याय प्रथम** आधुनिक हिन्दी कहानी और उसके स्वरूप की विवेचना।	1-27
2.	**अध्याय द्वितीय (अ)** स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की पृष्ठभूमि।	28-47
3.	**अध्याय द्वितीय (ब)** प्रेमचन्द और उनके समकालीन हिन्दी कहानियों में स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष के निरूपण की विवेचना।	48-70
4.	**अध्याय तृतीय (अ)** स्वतन्त्रता के पश्चात आर्थिक नियोजन और जनता के आर्थिक उत्थान पर इसका प्रभाव।	71-93
5.	**अध्याय तृतीय (ब)** आधुनिक हिन्दी कहानियों में स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक नियोजन और जनता के आर्थिक उत्थान के प्रतिफलन की विवेचना।	94-112
6.	**अध्याय चतुर्थ (अ)** ग्रामोद्योग तथा सहकारिता आन्दोलन का भारतीय जीवन के आर्थिक विकास पर प्रभाव।	113-128
7.	**अध्याय चतुर्थ (ब)** आधुनिक हिन्दी कहानियों में ग्रामोद्योग तथा सहकारिता आन्दोलन का भारतीय जीवन के आर्थिक विकास के प्रभाव की विवेचना।	129-147

8. **अध्याय पंचम (अ)** 148-173
भारतीय जीवन के विभिन्न, राजनैतिक, समाजिक आन्दोलनों का भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव।

9. **अध्याय पंचम (ब)** 174-196
आधुनिक हिन्दी कहानियों पर भारतीय जीवन के विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक आन्दोलनों का भारतीय जीवन पर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव की विवेचना।

10. **अध्याय षष्ठम् (अ)** 197-216
बेरोजगारी से जनमा आर्थिक तनाव व संघर्ष।

11. **अध्याय षष्ठम् (ब)** 216-238
बेरोजगारी से जन्मे आर्थिक तनाव व संघर्ष की स्थितियोंका आधुनिक हिन्दी कहानियों पर पड़ा प्रभाव और उसकी विवेचना।

12. **अध्याय सप्तम् (अ)** 239-254
भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की वास्तविक सामान्य स्थिति और आर्थिक विकास की सम्भावनायें।

13. **अध्याय सप्तम् (ब)** 255-276
आधुनिक हिन्दी कहानियों में भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की वास्तविक सामान्य स्थिति और आर्थिक विकास की सम्भावनाओं के निरूपण की समीक्षा।

14. **अध्याय अष्ठम्** 277-296
स्वातन्त्र्योत्तर आधुनिक हिन्दी कहानियों में आर्थिक जीवन के संघर्ष के प्रतिफलन की समीचीनता की सम्पूर्ण विवेचना

15. **सन्दर्भित ग्रन्थों की सूची** 297-307

अध्याय प्रथम

आधुनिक हिन्दी कहानी और उसके स्वरूप की विवेचना

आधुनिक हिन्दी कहानी और उसके स्वरूप की विवेचना

सभ्यता के विकास में इतिहास का प्रारम्भ एक साथ नहीं होता है। किसी का अपेक्षाकृत नया और किसी का पुराना। लेकिन शीघ्र ही एक ऐसी स्थिति आ जाती है कि उसका विवेचन देशकाल की सीमाओं से उठकर समस्त या समग्र सभ्यता के रूप में होने लगता है। व्यक्ति की गतिशीलता और मानसिकता पर इन राष्ट्रों के प्रभाव को "नयो का ज्ञान" कहकर उपेक्षिहत नहीं किया जा सकता। आज उनकी उपलब्धियाँ ही सारे विश्व की उपलब्धियाँ है।

आधुनिक हिन्दी कहानी की यात्रा पचास वर्ष पुरानी है। कहने का यह अर्थ बिल्कुल नहीं कि उसे पीछे कोई इतिहास नहीं है, या कि इधर हिन्दी कहानी का एक विश्वरूप नहीं विकसित हुआ है, बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगी कि कहानी की विवेचना जिस स्तर पर इधर दस--पन्द्रह वर्षो में हमारे यहाँ हुई है वह अभूतपूर्व है। उसी आधार पर सिद्धान्त और मानदण्ड निर्धारित किये गये हैं। इसलिये कहानी के सन्दर्भ में उस पुरानी मानसिकता से अलग हटकर सोचने की आवश्यकता है।

वस्तुतः इस अपेक्षा के दो--तीन कारण है। हिन्दी कहानी का अध्ययन अभी तक केवल 'हिन्दी कहानी' के रूप में ही किया जाता रहा है। मात्र कहानी के रूप में नहीं। अतः यही कारण है कि वह अध्ययन नहीं। इतिहास की एक छोटी सी प्रवृत्ति को भी शामिल कर लेने की उदारता अधिक है। प्रवृत्ति चाहे छोटी हो या बड़ी। इतिहास का प्रश्न चूँकि राष्ट्र के मान-सम्मान के साथ उलझा होता है। इसलिये उसकी गरिमा के लिये आवश्यक होता है कि उसे प्राचीनतम सिद्ध किया जाये, वेदों से उसका सम्बन्ध जोड़ दिया जाये। जिस राष्ट्र का इतिहास जितना पुराना होगा, वह वर्तमान दारिद्रय

के बावजूद अपने को उतना ही श्रेष्ठ मानने का गौरव पा सकेगा। हिन्दी कहानी का भी वेदों वाला इतिहास आधुनिक युग तक आकर टूट जाता है, और हर आलोचक को टिप्पणी देनी पड़ती है।

"कहानी के रूप मे आज हम जिस साहित्य रूप से परिचित है वह आधुनिक युग की देन है, और उसका विकास विदेशों में हुआ है। कहानी का यदि समग्र और सार्वभौमिक रूप का अध्ययन किया जाये, तो इस प्रकार की टिप्पणी की आवश्यकता ही न हो। कहानी का विकास किसी एक देश में सम्पूर्णतः अभी भी नही हुआ है। वह अनेक देशों में एक साथ या अलग--अलग युगों मे समान्तर ही हुआ है। अत हिन्दी कहानी इस विकाश में बहुत बाद में शामिल हुई। उसे पचास वर्षो मे ही वह सारा रास्ता तय करना पड़ा है, जो और देशो में लगभग सौ डेढ़ सौ वर्षो में किया है। इधर इसे एक विशिष्ट संस्कार और स्तर दिया गया है। कहानी के सार्वभौमिक रूप को समझकर ही उसे पा सकते हैं। बिना समझे उसे पाना कठिन है। आज वह उन्नतम कहानियो के साथ है।

आज तो विश्वास करने को जी नहीं चाहता कि जब ओ हैनरी मोपांसा तथा चैखव वर्तमान कहानी का विकाश के तीन शिखरो तक पहुँचा चुके थे। तब हम कहानीकार के रूप मे शायद "रूडियार्ड किप्लिंग" का ही नाम जाते थे। इन तीना में अन्तिम चैखव की मृत्यु 1904 में हुई। तब हिन्दी में पहली कहानियॉ लिखी जा रही थी।

इस समय कहानी की सम्पूर्णता का एक रूप बनाकर टूट चुका था और रूस के "एण्टन पाब्लोविच चैखव" ने उसका एक दूसरा नितान्त नया रूप स्थापित कर दिया था। आदमी सदा से अपने अनुभव दूसरे के साथ बॉटता रहा है। इसलिये आधुनिक

नाटककार ब्रेखत कहता है कि मनुष्य समाज की इकाई एक व्यक्ति नहीं दो व्यक्ति मिलकर बनाते हैं। आपस में भाषा चाहे संकेतों, मुद्राओ और अर्थहीन ध्वनियों की रही हो, या लिखी छपी, साफ--सुथरी पुस्तकों की। वह एक से दूसरे तक पहुँचने का वाहन साधन और माध्यम ही हैं। मनुष्य कभी जन्म के उत्स को समझना चाहता है तो कभी मृत्यु के रहस्य को भेदना चाहता है, और अनजाने ही छोटी--छोटी कहानियॉ बनती रहती है। लेकिन इन कहानियों का विषय व अपने आपको उतना नहीं बनाता जितना अपने आस--पास के परिवेश के परिवेश को। रामायण, महाभारत या पुराणों की कहानियॉ उन्नत समाज की कहानियॉं है। राज्यों के संघर्ष, जय--विजय की कहानियॉा, सही-गलत के निर्णय और निष्कर्ष की कहानियॉं हैं। ग्रीक कथाओं से लेकर इस्लाम के "दास्तान अमीर हमजा" तक इन कहानियों का सिलसिला है। सुन्दर स्त्रियॉ, सम्पन्न देश, शत्रु राज्य के राक्षस, कूच करती हुई सेनायें, शौर्य से गूँजते हुये स्थल, बन्दियों का बध और राज्यभिषेक--मेरे सामने इन कहानियों का यही विश्व उभरता है।

उननीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इन्शाअल्ला खॉ की "रानी केतकी की कहानी" में हमें कहानी के यही सब तत्व अपने अंतिम रूप में मिलते हैं। तिलस्मी कहानियो में चमत्कारों और अलौकिक घटनाओं को तर्क सम्मत और वैज्ञानिक रूप देने का रूमानी आग्रह है। पहले एक विलक्षण घटना की कल्पना कर ली जाती है फिर विलक्षण कल्पना का सहारा लेते हैं। राजा शिवप्रसाद सिंह अपनी "राजा भोज का सपना" और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र "एक अद्‌भुद अपूर्व स्वप्न" नामक रचनाओं में। लेकिन हिन्दी कहानियों का स्वप्न यहॉं आकर एक विराम पाता है। उसकी आत्मा विदेशों से चली आ रही परम्परा से मिलकर एक नया स्वरूप ग्रहण करती है तब हिन्दी की आधुनिक कहानी का सूत्रपात होता है।

अधिकतर आधुनिक कहानी के पात्र मनुष्य होते हैं। मनुष्यो में भी राजा नहीं, साधारण मनुष्य। अतः उनके कार्यकलाप लौकिक होगें। प्राचीन कथाओं में अलौकिकता के सन्निवेष से मनोनुकूल घटना वाली की योजना करने और कथा को आगे बढ़ाने की स्वतन्त्रता थी। पर आधुनिक कहानियों में यह बात नहीं है। इसलिये लेखक कभी--कभी संयोग और आकस्मिकता का सहारा लेकर भी कथा की योजना करते हैं। पर इनका उपयोग प्रत्यक्ष या स्पष्ट रूप में जितना ही कम हो उतना ही अच्छा।

अतः विदेशों से आती हुई परम्परा को मिलाते हुये ही नयी कहानी का स्वरूप बनता है। राजेन्द्र यादव ने आधुनिक हिन्दी कहानी का सूत्रपात इस प्रकार वर्णित किया है--

"इस शताब्दी का प्रारम्भ हिन्दी कहानी के लिये महत्वपूर्ण है जिस पर टैम्पेस्ट की छाप है।"[1] "एक बंग महिला का "दुलाई वाली" 1907-- अपनी मौलिकता के बाबजूद कहानी होने की मॉग पूरी नहीं करती। यों इन दिनों कहानियॉ तो बहुत निकली होंगी।"[2] लेकिन मै समझती हूँ, कि हिन्दी की पहली मौलिक और कला पूर्ण कहानी जिससे यहॉ की आधुनिक हिन्दी कहानी का आरम्भ मानना चाहिए वह है-- उसने कहा था।"[3] यह कहानी 1916 की है, और उससे ही यहॉ की आधुनिक कहानी का आरम्भ मानना चाहिए।"[4]

---

1. इन्दुमती : 1901-- किशोरीलाल गोस्वामी
2. ग्यारह वर्ष का समय : 1902-- रामचन्द्र शुक्ल
3. आधुनिक हिन्दी कहानियां: सं0 डा0नन्ददुलारे बाजपेई, डा0 विजय शंकल मल्ल, पृ0 21
4. कहानी स्वरूप और सम्बेदना : राजेन्द्र यादव, पृ0 13

हम इटली के बोकेशियों या बाकेच्छियों या चौसर की ''कैन्टवरी कहानियों'' के साथ कहानी के आधुनिक रूप के पास आते जाते हैं। यह वह समय है जब ड्यूक सामन्तों का युग बीत रहा था। औद्योगिक सभ्यता के शैशव की ये ऐसी प्रोढ़ और सार्थक कहानियाँ थी जो अपने पीछे का यथार्थ खो देने के कारण आज केवल बच्चों का मनोरंजन करतीं हैं। आज की कहानी को हानार्थ (1804-64) के साथ आने वाले एडगर एलन पो (1809-49) से प्रारम्भ किया जाता है, लेकिन मै समझती हूँ पों से भी पहले और साथ-साथ रूस और फ्रांस के लेखक कहानी का आधुनिक रूप स्थिर कर चुके थे।

कहानी में उभरने वाले यथार्थ जीवन ही नहीं शिल्प और शैली के लिहाज से भी मै समझती हूं कि गोगोल की ''ओवर कोट'' को विश्व की पहली यथार्थवादी शसक्त और सफल आधुनिक कहानी मानना चाहिए। वह आज भी विश्व कहानी मे उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी हिन्दी में ''उसने कहा था''। कहानी लेखक से अधिक कहानी शिल्प के शैली की समस्याओं की विवेचना करने वालों मे ''पों'' का स्थान महत्वपूर्ण है। उसने कहानी में वाकायदा यदा, कदा, आदि मध्य और अन्त होने पर जोर दिया। अगर कहानी का पहला वाक्य ही इस प्रभाव की दिशा में निर्धारित नहीं करता है तो कहानीकार वहीं असफल हो जाता है। इसके प्रभान्वित के लिए आवश्यक है कि सारी कहानी में कहीं एक वाक्य भी ऐसा न हो कि कहीं वह व्यर्थ या अप्रसांगिक हो। इसी समय कहानी के छः तत्व इत्यादि निर्धारित किए गये। कहना न होगा कि कहानी की यही सौ साल पुरानी परिभाषा ''शास्त्रीय'' मानी जाती है। हालाँकि आज तक इसमे अपरिमित संशोधन हुए हैं।

''ओ हैनरी'' मोपांसा और चैखव के बारे में पाठक को जान लेना इसलिए

आवश्यक है कि इन तीनों ने विश्व के सारे कहानीकारो को अपने--अपने ढंग से प्रभावित किया है और आज भी ये बहुतों के आदर्श हैं।

स्वतन्त्रता के बाद की हिन्दी कहानी इसी बिन्दु पर उसकी ऋणी है। लेकिन इस कहानी की निर्व्याज सहजता की भगिमा के पीछे कितना कठोर अनुशासन, शिल्प चेतना तथा अनुपात सन्तुलन है उसे "पो" और "ओ हैनरी" के संस्कार वाला पाठक नहीं समझ सकता। कहीं भी वह सतह पर नहीं है। वह कहानी सुनाता नही, स्वय उसमे जीता है। जिस स्थिति या अनुभूति से तुम्हारा परिचय नहीं है। उस पर कभी मत लिखो ......उसने अपने छोटे भाई को लिखा था ....कहानी मे घिसे, पिटे, बेकार और अर्थहीन वर्णन मत दो। केवल अपने निरीक्षण से कुछ बिम्ब चुन लो उन्हें सम्पादित करके इस तरह रख दो कि चित्र खुद बोल उठे .....चॉदनी रात में कुए पर लेटी रहट की परछांई और टूटी बोतल के कॉच पर झिलमिलाती किरणें रात का जैसा सजीव भव्य वातावरण उपस्थित कर सकती है। वह लम्बे--लम्बे वर्णन नहीं कर पायेंगे ......चैखव की कहानियों का वातावरण उसे पात्रो के मूड का ही एक अविभाज्य अग बन जाता है (जैसा कि कहीं--कहीं प्रसाद जी की कहानियों में है) और उसकी कहानियॉ सामने से नहीं मन के भीतर ही निर्मित होती है। बिना झटके या विस्मय के साथ जब वे समाप्त होती है। तब पाठक की चेतना में रह जाते हैं कुछ चित्र, कुछ दृश्य, कुछ प्रभाव, कुछ कुहेलिकाये ......एक आत्मीय मित्र के साथ बिताये कुछ स्मरणीय क्षण, जहॉ न वार्तालाप याद आते हैं न मुद्रायें ....याद आती है तो मधुर सगीत की झकृतियो जैसी गूँज।

आधुनिक हिन्दी कहानी का स्थान और उसका मूल्यांकन उसके इतिहास के अभ्यन्तर में जितनी शक्तियॉ कार्यरत् रहीं है, उनका सबका लेखा-जोखा तथा विवेचन

बड़ी गहन दृष्टि की माँग करता है। इसकी जय यात्रा प्रेमचन्द से शुरू होकर आज की नई कहानी तक अवाध गति से प्रवाहमान है।

इस आधुनिकता का श्री गणेश अपनी समर्थ तथा मानववादी लेखनी से प्रेमचन्द ने किया था। उसका महत्वपूर्ण विकास जैनेन्द्र, अज्ञेय और यशपाल जी ने अपनी कहानियों द्वारा किया। फिर आयी नई कहानी। इस प्रकार से आधुनिक हिन्दी कहानी का क्षेत्र पूरे भारतीय कहानी साहित्य में सर्वोपरि हो गया है। इसमें तब रचनात्मक प्रक्रिया तथा दृष्टि बोध का सवाल सबसे महत्वपूर्ण हो गया।

हिन्दी कहानियो के अध्ययन मे उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर उन्नीस सौ पचास तक इसका विवेचन और मूल्यांकन प्रस्तुत किया था। पर साहित्य अकेडमी द्वारा सम्पादित "समसामयिक हिन्दी साहित्य" पुस्तक योजना के अन्तर्गत वर्तमान हिन्दी कहानी (1944 से 62) तक अध्ययन माँगा गया। इस चरण का अध्ययन वस्तुत हिन्दी की "नयी कहानी" का अध्ययन है पर यह अध्ययन तब तक अधूरा है जब तक कि नई कहानी के मसीहा प्रेमचन्द से इसके अध्ययन का क्रम न समझा जाय और उसके आगे जैनेन्द्र, अज्ञेय तथा यशपाल की उपलब्धियों को इस परिपेक्ष्य में न देखा जाय। इसके अधिकांश लेखक अलग--अलग देशों में भी है और कभी एक दूसरे की जानकारी मे और कभी गैर जानकारी मे अपनी--अपनी पृथक--पृथक परम्पराओं के अनुसार लिखते रहे है। कहानी का सम्पूर्ण रूप इन्हीं के लेखन से उभरता है। इनमे कुछ प्रारम्भिक लेखको का प्रभाव पहले कुछ वर्षो बॅगला के मार्फत फिर सीधे हिन्दी पर पड़ा है। किसी भी चीज का पहले प्रभाव होता है। स्वतन्त्र विकास बाद में......।

हिन्दी मे इस स्वतन्त्र विकास का प्रारम्भ "उसने कहा था' कहानी से माना जा सकता है। त्याग और भारतीय की परम्परा इसके भी मूल मे है। पच्चीस

वर्षों बाद अमृतसर की गलियों मे खेलने वाली लड़की अचानक सूबेदारनी की पत्नी के रूप में मिले। इस ''आकस्मिक संयोग'' को छोड़कर कहानी में अमृतसर और लड़ाई के मैदानों का भी वातावरण अत्यन्त सजीव है। जिस सांकेतिक ढंग से इसे बुना गया है। वह कहानी का प्रौढ़ स्तर पर ही प्राप्त होती है। लड़ाई की क्रूर और गतिमय पृष्ठभूमि में इस नाजुक सी प्रेम कहानी की गम्भीरता और भी निखर उठती है। अभी तक ''उसने कहा था'' को लहनासिंह को ही प्रेम और बलिदान त्याग की कहानी के रूप मे देखा जाता रहा है। इस दृष्टि से शायद पाठ्यक्रमों में इसे पढ़ाया जाता रहा है। वातावरण की सजीवता कहानी की लाक्षणिक भंगिमा, फ्लैश बैक की शैली और कथा शिल्प का यह संयम ''उसने कहा था'' के बाद दसियों वर्ष अनछुए पड़े रहे और हिन्दी कहानी को उस धरातल के साथ अपने को जोड़ने के लिए लम्बी राह देखनी पड़ी। देवदास का त्याग और बलिदान वर्षों हिन्दी लेखकों पाठकों को सलाता जरूर रहा, लेकिन कहानी का यह शिल्प कौशल उसमें भी नहीं है।

प्रेमचन्द से पहले और समान्तर लिखने मे दूसरा नाम 'जयशकर प्रसाद'' का है। उनकी पहली कहानी ''ग्राम'' सन् उन्नीस सौ ग्यारह में 'इन्दु'' में छपी। तब वह कविताओं, नाटकों के साथ--साथ कहानियाँ भी लिखते रहे। भारतीय संस्कृति और इतिहास के प्रति उनकी अनुरक्ति कहानियों के वातावरण, काल, घटना, स्थल, पात्र आदि के चुनावों में भी प्रकट है, लेकिन उनका झुकाव प्रायः छायावादी काव्य बोध का ही है। उनकी ''आकाशदीप'' ''पुरस्कार'' ''व्रतभंग'' ''देवरथ'' इत्यादि कहानियाँ प्राय व्यक्तिगत भावना और स्थापित नैतिकता का द्वन्द्व सामने रखती है। वहाँ विकल्प भावना और कर्तव्य का है। कभी यह कर्तव्य राष्ट्रप्रेम, कभी मठ मर्यादा, कभी पारिवारिक शत्रुता के निर्वाह का है। इस द्वन्द्व में छटपटाती और उसमें कर्तव्य की ओर झुकती हुई, उनकी कहानियों की नायिकायें अक्सर उस मानसिक स्थिति का शिकार है, जिसे मनोविज्ञान मे

''एम्बिवैलेन्सी'' कहते हैं। अर्थात् एक ही व्यक्ति या वस्तु के प्रति प्यार और घृणा की समान तीव्र भावना का होना। मैं तुमसे घृणा करती हूँ। जलदस्यु लेकिन तुम्हे प्यार भी करती हूँ। वाली स्थिति की अभियक्ति उनकी कहानियों में कहीं शब्दों में है और कही संकेतो में। अतिरिक्त रोमानी वातावरण और कल्पित कथानकों के बावजूद प्रसाद हिन्दी के पहले सफल कहानीकार है। मधुआ मे इस द्वन्द की परिणित हृदय परिवर्तन के सौम्य धरातल पर होती है।

हृदय परिवर्तन के तन्त्र को आदर्शवादी नीति और सुधारवादी आन्दोलन के साथ आग्रह पूर्वक प्रेमचन्द मिलाये रखते हैं। लेकिन इसका प्रारम्भ सुदर्शन, ज्वालादत्त शर्मा, विशम्भरनाथ शर्मा, कौशिक और चतुरसेन शास्त्री के समय में ही हो गया था। प्रेमचन्द की कहानी आर्य समाजी और राष्ट्रीय दृष्टि से सुधार और मर्यादाओं के पुनर्संस्थान की कहानियाँ है।

हिन्दी कहानी धारा में सर्वथा नवीन प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो चुकी थी। प्रेमचन्द की कहानी 'कला' अपने अन्तिम चरण में सहसा जैसे नये आलोक और अपनी नई दृष्टि में उद्दीप्त हो गई थी। ''कफन और शेष रचनाओं'' के अन्तर्गत 'कफन' के वे दोनो चरित्र--माधव और घीसू जो न जाने किस दैवी प्रेरणा से कफन के पैसे हाथ मे लिये हुये, कफन खरीदते--खरीदते एक मधुशाला के सामने आ पहुंचे और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गये। इन चरित्रों और कहानी के कला रूप मे वह प्रवत्ति सूर्य आलोक की तरह प्रकाशमयी हो गई और उसका नूतन स्वर कहानीकार की अन्तर्दृष्टि घीसू मे मुखरित हो गई।

घीसू ने कफन का रूपया लिये हुये गद्दी के सामने जाकर कहा-- साहू जी, एक बोतल हमें भी दे देना। इसके बाद कुछ चखना आया, तली हुई कुछ मछलियॉ भी आई और दोनों चरित्र वहॉ बैठकर पीने लगे। कई कुल्हड़ ताबड़--तोड़ पीने के बाद दोनों ही सरुर में आ गये।

घीसू बोला-- "कफन लाने से क्या मिलता ? आखिर वह जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता। लेकिन लोगो को क्या जबाब दोगे, लोग पूछंगे नहीं कि कफन कहॉ है ?" घीसू हॅसकर कहता है-- "अबे कह देगे, रूपये कमर से खिसक गये। बहुत ढूँढे, मिले नहीं। फिर वही रूपये देगे।" अन्त मे दोनो नाचने लगे, मटके, गिरे और कूँदे भी। अन्त में दोनों वेहोश होकर गिर पड़े।

"यह है उस नये नवीन प्रवृत्ति के उदय की एक अकम्प शिखा। 'अलग्योझा' बेटों वाली विधवा की तरह न वह कथा, न वह विकाशमयी इति वृत्ति वाली शिल्पविधि, न वह घटना, न वह कुसुम वाली भावुकता, न वज्रपात जैसा वह संयोग, न ईश्वरी न्यायवाला वह आदर्शोन्मुख यथार्थवाद।

यहॉ पर है स्पष्ट, विवेकमयी दृष्टि से देखा गया यथार्थ। सामाजिक स्थिति और उसका भयानक वैषम्य। सत्य सामाजिक दृष्टि। चेतन जागरुक कलाकार वाली निगाह।"[1]

"कफन की आत्मा मे बैठी हुई एक आवाज कहती है--

"कैसा बुरा रिवाज है, जीते जी तन ढकने को कपड़ा न मिले। मरने

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानी : डा0 लक्ष्मीनरायण लाल, पृ0 14

पर उसे नया कफन चाहिये।........और क्या रखा है यही पॉच रूपये पहले मिले. होते तो कुछ दवा दारू कर लेते। अतः कैसी यथार्थ अनुभूति है। कलाकार की आत्मा में भीगी और पगी हुई।"[1]

यह थी एक नवीन प्रवृत्ति। एक ओर दूसरी प्रवृत्ति "मनोवृत्ति"[2] कहानी में एक सुन्दर युवती प्रातःकाल गॉधी पार्क में बेंच पर गहरी नीद में सोई पड़ी है। उसी पार्क मे सुबह विभिन्न प्रकार के पात्र घूमने आते है और सब अपनी मनोवृत्ति के अनुसार उस युवती के बारे में सोचते जाते है। "अतः गल्प का आधार अब घटना नहीं मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नही बैठता। उसका उद्‌देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं, वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है, जिसमे सौन्दर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओ को स्पर्श कर सके।[3] प्रेमचन्द पहली ही प्रवृत्ति के मसीहा थे। दूसरी प्रवृत्ति तो पहली प्रवृत्ति के सगिनी थी-- साधन। मुख्य हो गया था यथार्थ। प्रेमचन्द ने कहानी कला के अन्तिम चरण में आकर प्रत्यक्ष अनूभूतियों का वर्णन किया था कि "वर्तमान अख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ स्वभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमे कल्पना की मात्रा कम अनुभूतियो की मात्रा अधिक रही है। अनूभूतियॉ ही अब रचनाशील भावना से अनुरजित होकर कहानी बन जाती है। मगर यह समझना भूल होगी, कि कहानी का यथार्थ चित्र है। यथार्थ जीवन का चित्र मनुष्य स्वयं हो सकता है। परन्तु कहानी के पात्रों के दुख--सुख से हमें जितना

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानी : डा0 लक्ष्मीनरायण लाल, पृ0 14
2. मानसरोवर : भाग 1 : प्रेमचन्द, पृ0 325
3. मानसरोवर : प्रथम भाग : प्रेमचन्द, भूमिका, पृ0 9

प्रभाव होता है, अर्थात हम सुख–दुख से जितना प्रभावित होते है, उतना यथार्थ जीवन से नही होते। जब तक यह निजत्व की परिधि मे न आ जाये। अगर हम यथार्थ को हूबहू खींचकर रख दें, तो उसमें कला कहॉ है। कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है। कला दीखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुये भी यथार्थ मालूम हो।"[1]

नई सामाजिक चेतना की दृष्टि मे प्रेमचन्द की अन्तिम कहानियां सर्वथा एक नये स्वर, नये विश्वास, और विद्रोह की ओर सकेत कर गई है। इसके पीछे प्रेमचन्द का अपना व्यक्तित्व तो था ही पर तत्कालीन परिस्थियॉ और उस काल की विश्वव्यापी चेतना का हाथ कम नहीं है। 1935 में लेखको की पेरिस कांग्रेस। मार्क्सवाद। वर्ग सघर्ष। और भारतवर्ष के बम्बई फिर लखनऊ नगर मे प्रगतिशील साहित्याकर सघ के अधिवेशन लखनऊ में जिसकी अध्यक्षता स्वयं प्रेमचन्द ने की। प्रेमचन्द के अन्तिम स्वर नये क्षितिज को छूने वाले विश्वास और विद्रोह, हिन्दी कथा सहित्य की दिशाओं मे नक्षत्र की तरह चमक उठे, इस नई सामाजिक चेतनाको उन्होने कभी हल्कू के मुख से कहलवाया, "तकदीर की खूबी है मजूरी हम करें, और मजा दूसरे लूटे।"[2] और कभी घीसू के मुख से-- "वह बैकुण्ठ न जायेगी तो क्या ये मोटे--मोटे लोग जायेगें, जो गरीबों को दोनों हाथ से लूटते है। अपने पाप को धोने के लिये गंगा मे नहाते है और मन्दिरों में जल चढ़ाते है।"[3]

इस सशक्त पृष्ठभूमि के साथ प्रेमचन्द ने अपनी मृत्यु के बाद हिन्दी

---

1. मानसरोवर : प्रथम भाग - भूमिका, पृ0 2,3
2. आधुनिक कहानियॉ : स0 भगवत्स्वरूप मिश्र, पृ0 83
3. आधुनिक हिन्दी कहानी : डा0 लक्ष्मीनरायण लाल, पृ0 15,16

कहानियों का आकाश ही बदल दिया। सामाजिक अर्थबोध आगे तीव्र हो गया सामाजिक संघर्ष के प्रति जो साहस, विद्रोह भावना प्रेमचन्द का अन्तिम स्वर था, उसके आगे का द्वार था-- "समाज की जटिल परिस्थितियों में और गरहे उतरना तथा वस्तु स्थिति के उद्घाटन के लिये प्रयत्न करना। यदि अन्याय, सामाजिक वैषम्य को दूर करना है, मानवता जिसके नीचे बेतरह पिस रही है, यदि उसके विरूद्ध सफल सघर्ष करना है तो निश्चय ही वस्तु स्थिति के जटिल दॉव-पेच को भी समझना आवश्यक है और परिस्थिति की जटिलता ने अपने विश्लेषण और उद्घाटन के लिये कहानीकार से मॉग की-- उसकी अन्तर्भेदी समझ की, विश्लेषण की।"[1]

इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द के बाद जो महत्वपूर्ण कहानीकार हिन्दी जगत में अपनी प्रवृत्तियों के साथ प्रकाशमान हुये। जेसे जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी और उपेन्द्रनाथ अश्क आदि। ये सभी विदेशो और बॅगला तथा उर्दू की कहानी कला के ज्ञान के साथ पूर्ण सजग और गम्भीरता के साथ हिन्दी कहानी क्षेत्र मे अवतरित हुये।

"प्रेमचन्द का मूलक्षेत्र जहॉ केवल ग्रामीण सामाजिकता थी वहॉ इस नये चरण में (अनेक) इन कहानीकारों का क्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक हुआ। ग्रामीण सामाजिकता तथा समस्याओं के स्थान पर शहरी मध्यवर्ग और उसकी समस्याये अपने विभिन्न पक्षो में कहानी की विषयवर्ण्य बनी। प्रेमचन्द द्वारा उद्भूत सामाजिक संघर्ष के अर्थबोध की धारा मुख्यतः यशपाल की कलम से बहुत व्यापक और गहन हुई। जैनेन्द्र की कला का आधार व्यक्ति का अन्तर्जगत और उसका मनोविश्लेषण जिसे व्यापक अर्थ मे जैनेन्द्र ने

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानियॉ : डा0 लक्ष्मीनारायण लाल, पृ0 16

"अलौकिक" "अतीन्द्रिय" "दर्शन" आदि की सज्ञा देकर अपनी इस धारणा को प्रभामण्डित करने का प्रयत्न किया। अज्ञेय कवि की दृष्टि लेकर सामाजिक और राजनीतिक सवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने आये और उनमें मनोविश्लेषण, सामाजिक सघर्ष की गहन चेतना और कवि दृष्टि इन तीनों के समन्वय से इनकी अपनी महत्तर धारा बनी। इलाचन्द्र जोशी ने अपना सीमित क्षेत्र चुना। मनोविश्लेषण-- वह भी केवल 'मैं' और 'अह' के ही विवेचन विश्लेषण में अपने को न्योछावर कर दिया। उपेन्द्रनाथ अश्क को हम किसी विशेष धारा में नहीं रख सकते। इसके अतिरिक्त, भगवतीचरण वर्मा, निराला, सियारामशरण गुप्त, और होमवती आदि कहानीकारों से हिन्दी कहानी का नया आकाश जगमगा उठा।"[1]

'एक रात' की भूमिका में जैनेन्द्र ने कहा-- "..(लोग) समाधान मुझसे न मॉगें, मैं इन्कार कर दूँगा। इसलिये नहीं कि समाधान के नाम पर मै उन्हें बहुत कुछ नहीं दे सकता, प्रत्युतर इसलिये कि मैं मानता हूँ कि मन मे शंका, उद्वेलन पैदा करना भी मेरी कहानियों का एक इष्ट है।"[2]

कथावस्तु के संगठन की दृष्टि से भी नई और पुरानी कहानियो में एक बड़ा अन्तर है। प्राचीन कथा की घटनायें काल क्रम-बद्ध होती थी। एक के बाद दूसरी घटनाक्रम से आती थी। पर आधुनिक कहानी मे ऐसा नही होता या कम होता है। आधुनिक कहानी में लेखक मानव जीवन से सायास संचित उन्ही सार्थक घटनाओ को ग्रहण करता है जो कम समय में अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से अभिप्रेत संवेदना उत्पन्न कर सके। इसके लिये उसे चुनी हुई घटनाओं को नये अनुक्रम से सजाकर उपस्थित करना पड़ता है जो

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानी : डा0 लक्ष्मीनाराण लाल, पृ0 18

2. वही-- पृ0 19

प्रसंग सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है उसी से अब प्रायः कहानी प्रारम्भ की जाती है। कभी कहानी अन्त में शुरू होती है, कभी मध्य से। कभी बीच की घटनाओं के अनुक्रम मे ही उलट--फेर कर दिया जाता है।

इस प्रकार आधुनिक कहानी दृष्टिकोण, कथावस्तु के सगठन, और संवेदना तथा प्राभाव आदि की दृष्टि से पुरानी कहानी से भिन्न हो जाती है। कहानी में कोई भी घटना, परिस्थिति या कार्य लेखक के लिये अपने आप में, निरपेक्ष रूप से , महत्व नहीं होता। कहानी के लिये उनका महत्व होता है उसका आशय या अभिप्राय। जिसके कारण जिसे वे व्यक्त करते हैं। एक ही घटना, परिस्थिति या कार्य का कोई लेखक कुछ अभिप्राय ग्रहण कर सकता है और कोई कुछ। फलत एक घटना पर अनेक कहानियाँ लिखी जा सकती हैं। इसलिये कहानी में लेखक के मूल केन्द्रीय भाव, सवेदना या हेतु का बहुत बड़ा महत्व होता है। यह विशेष ध्यान देने की बात है। कहानी मौलिकता का आधार उसकी कथा या घटना वाली नहीं, बल्कि उसका भाव है। अपनी--अपनी दृष्टि से यह भाव ही कहानी का रूप बदल देता है, और उसका एक नया रूप देता है। जैसे--

''कालिदास की शकुन्तला की कहानी वही नही है, जो महाभारत मे मिलती है। ''अभिज्ञान शाकुन्तलकार' ने उसे एक नया अर्थ दे दिया है, रूपांतरित कर दिया है। महाभारत में वर्णित शकुन्तला की कथा को एक विशेष दृष्टि या भाव से उसने देखा है, इसलिए उसका एक नया रूप हो गया है।''[1]

कहानी की कथावस्तु प्रायः सरल होती है, जटिल नही। उसमे प्राय एक से अनेक कहानियाँ नहीं होती। कहानी का प्रत्येक शब्द क्रिया और संवाद को अन्त

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानियाँ: सं० आचार्य नन्ददुलाने बाजपेयी, एव डा० विजयशंकर मल्ल, पृ० 8

की ओर शीघ्रता से ले जाने में सहायक होने चाहिये।

आधुनिक कहानी मे आदि और अन्त के विधान मे काफी सतर्कता रखी जाती है। कहानी का आरम्भ आकर्षक होना चाहिए। आकर्षक आरम्भ के लिए कई तरह के ढग अपनाये जा सकते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि अमूल ढग ही सबसे अच्छा है। पर प्रत्येक स्थिति में कहानी का आरम्भ रोचक, सरल, अर्थपूर्ण और स्पष्ट होना चाहिए तथा अन्त में कहानी को भावपूर्ण और व्यजक होना चाहिए। उपदेशात्मक या वर्णनात्मक अन्त अच्छा नहीं होता।

अतः पुरानी और नई कहानी के अन्तर पर भी यहाँ दृष्टिपात करना होगा। प्राचीन हिन्दी कहानी एक प्रकार के अद्भुत्व से रोमाचित और नीति से आक्रान्त रहती थी। उसमें यथार्थ का प्रश्न ही नहीं था।''[1] इसका उद्देश्य था उदान्त शाश्वत मूल्यों की उद्भावना''[2]) हिन्दी में कहानी का वास्तविक परिपेक्ष्य प्रेमचन्द से ही आरम्भ

---

1. ''गुमनाम चिट्ठी'' (जासूस, 1932) गोपालराम गहमरी, ''आपत्तियों का पर्वत'' ''चन्द्रलोक की यात्रा'' केशव प्रसाद सिह, ''ग्यारह वर्ष का समय'' - रामचन्द्र शुक्ल, इन्दुमती किशोरी लाल गोस्वामी आदि''। डा0 परमानन्द श्रीवास्तव हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया, पृ0 207 के आधार पर।

2. ''इन आरम्भिक कहानियों की सरचना के केन्द्र मे है एक विचार या भावबिन्दु (जो प्रायः नैतिक होता है) और यही भावबिन्दु कहानी की बुनावट और बनावट को नियन्त्रित करता हुआ अपनी ओर सींचता है और सारी कथा इसी बिन्दु पर पहुँच कर फ्लैश कर देती है और वह बिन्दु चमक उठता है।'' - डा0 रामदरश मिश्र ''हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा'' (''हिन्दी कहानी की पूर्व पीठिका और प्रस्थान बिन्दु) पृ0 17

होता है।)[1] अतः यह जीवन की व्याख्या. को लेकर चलने वाली साधारण वर्णनात्मक शैली की कहानी थी, जिसमें क्या कहा? इस जिज्ञासा की पूर्ति होती थी।

प्रत्यक्षतः आधुनिक कहानी पहले की कहानी की तुलना में यथार्थ बोध के संवेदनात्मक स्तर की कहानी है। निर्मल वर्मा, कृष्णा सोवती, रामकुमार की कहानी जो यह प्रमाणित करती है कि आज की कहानी का यथार्थ प्रेमचन्द की कहानी का यथार्थ नहीं है, बल्कि उससे अलग एक भाव-भूमि पर स्थित है, जिसमें भाव और बुद्धि का अभेदत्व है।

पिछले छठे दशक में कविता की ओर से सारी साहित्यिक चेतना का कहानी की ओर मुड़ आना अचानक और अकारण नहीं है।'.......'वास्तव मे उसका विशिष्ट या सिगनीफिकेन्ट को उठाना इसलिये अनिवार्य है, कि कहानी ने ही अधिक गम्भीरता और अधिक ईमानदारी से आन्तरिक संक्रमणो से गुजरते मनुष्य की कुण्ठाओं और अभिलाषाओ को अपना आधार बनाया है।'[2]

इस सब स्रोतों और महत्तर प्रेरणाओं तथा युगीन प्रवृत्ति एवं कहानीकारो की जागरूकता का परिणाम इस काल पर श्रेष्ठ रूप मे पड़ा। कहानियो की सारी भाषा ही बदल गई। कहानियाँ शिल्पवती होती हुई भी विषय, भाव, चरित्र, प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व विश्लेषण आदि तत्वों मे आगे और गहरे पहुंच गई।

---

1. 'आधुनिक कथा के अतीत की शुरूआत प्रेमचन्द से होती है।' - डा० गगाप्रसाद विमल 'प्रेमचन्द (आज के सन्दर्भ में), (स्पष्टीकरण की भूमिका, पृ० 9)

2. कहानी स्वरूप और संवेदना : राजेन्द्र यादव, पृ० 148-49

विकासा के युग में यह सिद्ध हो चुका कि कहानी की आत्मा स्वाभाविकता है यथार्थ, सामाजिक समस्याओं की प्रतिष्ठा है, लेकिन इस नूतन प्रयोग की दिशा मे स्वयं जैनेन्द्र ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है -

"मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता, जो मात्र लौकिक हो, जो सम्पूर्णता से शारीरिक धरातल पर ही रहता है, जिसके भीतर हृदय है, जो सपने देखता है, जो जगती रहती है, जिसे शस्त्र छूता नही, आग जलाती नहीं। सबके भीतर वह है, जो जलाती नही, जो अलौकिक है, मैं वह स्थल नही जानता, जहॉ अलौकिक न हो, कहॉ वह कण है जहां परमात्मा का निवास नहीं है? इसलिये आलोचक से मै कहता हूँ कि जो अलौकिक है वह भी कहानी तुम्हारी ही है। तुमसे अलग नहीं है। रोज के जीवन में काम आने वाली, तुम्हारी जानी पहचानी चीजो का और व्यक्तियों का हवाला नहीं है तो क्या उन कहानियों में तो वह आलौकिक है, जो तुम्हारे भीतर अधिक तहों में बैठा है और जो भी घनिष्ट और नित्य रूप में तुम्हारा अपना है।"[1]

शिल्पविधि की दृष्टि से ये दर्शनगत कहानियॉ जिनमें धर्म, शिक्षा, नीति और आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है, साधारण कहानियो की शिल्प से दूर हटकर की गई है। इसमें स्पष्ट रूप से वार्ता दृष्टान्त और कहानी के तत्व आ गये हैं। स्वयं जैनेन्द्र के शब्दों में-- "दार्शनिक तत्व के रूप में सत्य अत्यन्त गरिष्ठ है। उस रूप मे वह सत्य उपरोक्षित भी है। वह अधिकांश के लिये आग्राह है, उसको दृष्टान्तगत, चित्रगत और कथा के रूप में परिवर्तित करो , तभी वह रूचिकर और कार्यकारी बनता है।"[2]

---

1. जैनेन्द्र : "एक रात" की भूमिका, पृ0 4
2. वही, पृ0 1

इस तरह दर्शनगत कहानियों में इनके शिल्पगत तत्व परमअनूठे ढंग से प्रयुक्त हुये हैं। जैनेन्द्र ने चरित्र--चित्रण, चरित्र-निर्माण और उनक व्यक्तित्व प्रतिष्ठा में आश्चर्यजनक शिल्पकौशल का परिचय दिया है। वस्तुततः यहाँ चरित्र--निर्माण में कल्पना तत्व है। फिर भी प्राचीन वार्ताओं, कथाओं और दृष्टान्तों के चरित्रों की भांति यहाँ के चरित्रो में अपना अलग--अलग आकर्षण है। यहाँ के चरित्र मुख्यत छ वर्गो में बाँटें गये हैं--

"1-- ऐतिहासिक चरित्र-- जैसे यशोविजय, बसन्ततिलका, जयवीर, जयसन्धि आदि।

2-- पौराणिक चरित्र-- इन्द्र, शंकर पार्वती आदि।

3-- लौकिक, राजा--रानी, योगी, वैरागी आदि।

4-- आध्यात्मिक चरित्र।

5-- विशुद्ध भावना और काल्पनिक चरित्र।

6-- प्रतीकात्मक, पशु--पक्षी चरित्र।'[1]

कहानियॉं विशेषतर दृष्टान्त के रूप में क्यों लिखी गई। इसके उत्तर में जैनन्द्र का ही दृष्किोण सम्बन्ध में सबसे अधिक वैज्ञानिक है वह कहते हैं -

"शास्त्र ने तो कह दिया सत्यं वद, लेकिन असली जिन्दगी में सत्यं वद पर जब चलना आरम्भ करते है तो पेंच पर पेंच पैदा हो जाते हैं। उस सीधे-साधे कथन में शकाऐं निकलती जाती है, जब आदमी कहता है शास्त्र का सत्य वद हमको मत दो, दुनिया के सामने रखकर दृष्टान्त से हमें दिखलाओं, सत्यंवद क्या है, कैसे यह टिकता है।"[2]

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानी : लक्ष्मी नरायण लाल पृ0 24-25
2. जैनेन्द्र, प्रस्तावना-- 'एक रात' पृ0 2

'लाल सरोवर' और 'नीलम देश की राजकन्या' आदि इन कहानियों की शैली उसी तरह है जैसे कोई कथावाचक या नानी-दादी कहानियाँ सुनाती है जैसे-- "लाल सरोवर" कहानी इस तरह कथित है, कमल के फूलो से भरे इस लाल सरोवर की कथा भाई प्राचीन है और परम्परा के अनुसार सुनाता हूँ, बहुत पहले यहाँ से उत्तर पूरब की तरफ एक नगर बसा हुआ था उसके बाद खण्डहर की हालत में एक शिवाला था आदि।"[1] लाल सरोवर में लक्ष्य की प्रेरणा, "अनेकानेक अनर्थों का मूल यह स्वर्ण है भौकिता लेकिन फिर भी प्रभु सबमें तुम्ही हो, तुम्ही हो।"[2] शैली के व्यापक पक्ष में इन कहानियों की निर्माण शैली वार्ता तथा दृष्टान्त के रूप में है। आधुनिक कहानी शैली में इन कहानियों का निर्माण क्यों नही हो सका। इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि ये कहानियाँ विशुद्ध दार्शनिक धरातल से लिखी गई हैं। इनके विकास में घटनाओ की क्रमिक अवतारणा और नाटकीय परिस्थिति का उत्पन्न होते जाना, दूसरी और चरित्रो के आन्तरिक पक्ष में भावों का क्रमिक उदय, मनःस्थिति का स्वाभाविक विश्लेषण और कहानी को लक्ष्य की ओर प्रेरित करते जाना। यह भाव कहानियों के विकास मे अदभुत गति और प्रवाह देता है। इन्हें पढ़कर ऐसा लगता है जैसे हमारी सवेदनशीलता पर किसी ने बहुत तेजी से कोई लकीर खींच दी, ऐसी लकीर जिसके आदि अन्त का पता नही चलता और पाठक कहानी मे उसे ढूढ़ता--ढूढ़ता थक जाता है।

शिल्प शैली के सामान्य पक्ष में यहा वर्णन और चित्रण में क्रमश चित्रात्मकता और विश्लेषण पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है। इनमे से इतनी स्वाभाविकता और प्रवाह

---

1. जयसिन्ध, लाल सरोवर, पृ0 20
2. आधुनिक हिन्दी कहानी- लक्ष्मीनारायण लाल, पृ0 29

है कि कहानियाँ अपनी सम्वेदना के साथ पाठक की अन्तस्थल को स्पष्ट करती चलती हैं। जहाँ व्यक्ति विश्लेषण हुआ है, वहाँ की भाषा गद्य शिल्पी की हुई है। जहाँ मानसिक ऊहापोह दिखाया गया है। वहाँ की भाषा चिन्तक की भाषा हुई है। और जहाँ कही किसी चित्रमूर्ति की प्रतिष्ठा करनी है। वहाँ की भाषा कवित्वपूर्ण भावुक और एक चतुर शिल्पी की भाषा है। अतएव जैनेन्द्र की भाषा में भावोचित शब्द निर्माण, स्वाभाविक शब्द चयन और शब्द विस्तार इतना है कि ''जैनेन्द्र ने सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो की अभिव्यक्ति मे सफलता प्राप्त की है। भाषा की लक्षणता और व्यञ्जना शक्ति को इन्होने इतना बल दिया है कि आधुनिक हिन्दी कहानी की भाषा सदैव ऋणी रहेगी।[1]

अज्ञेय की कहानी 'कला की आत्मा' व्यक्ति चरित्र के केन्द्र बिन्दु से निर्मित हुई है। अज्ञेय की दृष्टि मूलतया कवि की दृष्टि है, समाज सुधारक की दृष्टि नही। जो सामाजिक अव्यवस्थाओं के इतिवृत्त उपस्थित करता चलता है। चरित्र की अवतारणा. चरित्र विश्लेषण, चरित्र मनोविज्ञान इनकी वे आधार शिलाए है, जिनपर कहानीकार अज्ञेय के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है। उन्होने अपनी कहानियो में जितने भी सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक समस्याओ के प्रश्नों को उठाया है। उन सबका अध्ययन उन्होंने व्यक्तिगत पहलुओं से किया है। शिल्पविधि की दृष्टि से जो कहानियाँ उच्चकोटि की हैं। वे इस शैली से निर्मित हुई है। मानव जीवन में कहानी का आदि स्थान है। ज्यों ही मनुष्य को बोलना आया होगा, उसी क्षण किसी न किसी रूप में कथा कहानी का आरम्भ हुआ होगा तथा ज्यो--ज्यों मनोरजन की वृत्तियाँ बढ़ती गई आधुनिक जीवन मे द्रुतिगमता आती गई और त्यों--त्यो कहानी के निश्चित शिल्पविधि का विकास

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानी : लक्ष्मी नारायण लाल, पृ0 34

होता गया। इधर सक्रान्ति काल में हिन्दी क़हानी कला अपूर्व गति से नया रूप ग्रहण करने लगी। वस्तु और विधान दोनों की दृष्टि से उसने नई दिशाओं मे फैलना आरम्भ किया। और आधुनिक कहानी का आरम्भ हुआ। आधुनिक कहानी कला में मनोविश्लेषण तथा समाजशास्त्र के अन्तर्गत मार्क्सीय मत, यौनवाद आदि की प्रेरणाओं ने इसके लक्ष्य तथा अनुभूति में महान अन्तर उपस्थित किया।

अतः आधुनिक कहानीकार की दृष्टि अनेक अर्थो मे व्यापक हुई। फलत: उसकी कहानी कला में व्यक्ति समाज तथा उसकी कहानी कला में व्यक्ति समाज तथा अन्य मानवीय संबधों पर निश्चित विचार, स्पष्ट सहानुभूति, तथा निर्णय देने की दृष्टि उलझ गई, और उसकी लक्ष्यात्मक दृष्टि से झिझक उत्पन्न हुई।

"नई सामाजिकता की नई चुनौती ने आगे स्वीकार किया नई कहानी ने। यह नई कहानी क्या है? नई कहानी से मेरा मतलब उन कहानियो से है, जो सच्चे अर्थों में कलात्मक निर्माण है। जो जीवन के लिए उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं और साथ ही उसके किसी न किसी नये पहलू पर आधारित है, या जीवन के नये सत्यों को एकदम नई दृष्टि से दिखाने में समर्थ हैं। जैसे--

--नवीनता इसमें नहीं है कि उसमें किसी अछूते भू--भाग के अजीव से प्राणियों का वर्णन है, बल्कि इसमें नयापन है कि साधारण मानवीय जीवन में वह कौन सा विशेष नयापन है जो कि सामाजिक परिस्थितियो के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है या बिना किसी परिवर्तन के भी जीवन का कौन सा ऐसा पहलू है जो साहित्य में अब तक अछूता है।"[1]

---

1. भूमिका : हंसाजाई अकेला, मार्कण्डेय

कहानियाँ केवल शिल्प रगीन् वर्णन कला की कलाबाजी के बल पर खड़ी नहीं होती। उनका निर्माण जीवन्त वस्तु शिला पर होता है। इसलिए वे पत्थर की तरह ठोस और कंक्रीट की तरह शक्ति सम्पन्न होती है।

1950 और 1960 के बीच हिन्दी कहानी में जो प्रयोग आरम्भ हुए उन सबने मिलकर नई कहानी को जन्म दिया। ....राजेन्द्र यादव इस वैचारिक एवं एप्रोचगत नितान्त नये स्वर की कहानी का समय सन् पचास के आसपास मानते हैं।"[1] आलोचकों ने माना है कि नई कहानी, नये यथार्थ, नये मानव, नये परिवेश. नयी प्रवृत्तियाँ तथा नयी जीवन पद्धति की कहानियाँ हैं। जिनमें मानव जीवन के मानदण्ड, नये आयाम तथा नये नैतिक प्रतिमानों की स्थापना है। इन कहानियो का सामान्य व्यक्ति. नई अर्थव्यवस्था के दबावों में पिसा हुआ है, इसकी मनः स्थिति द्विविधात्मक है। इन कहानियों में यह देखा गया है कि पुराने कहानीकार शाश्वत मूल्यों की प्रधानता तथा आदर्श की सीमा को नहीं छोड़ पाये थे, वहीं नये कहानीकारो ने संश्लिष्ट जीवन की सम्बेदना से जुड़े सामान्य व्यक्ति की मनःस्थितियों का चित्रण बारीकता से किया और स्वस्थ परिवेश से संपृक्त किया।"[2]

नई कहानी के पात्र दोहरे अलगाव को झेलते हैं-- अपने से और समाज से। इस तरह नई कहानी अकेलापन, अजनबीपन और अपरिचय की देन है। साठोत्तर युग में इन स्थितियों में ह्रास होने की अपेक्षा विस्तार आता गया।

प्रेमचन्द ने 'पूस की रात' 'शतरंज के खिलाड़ी' ''कफन'' जैसी कहानियों

---

1. राजेन्द्र यादव : कहानी स्वरूप और सम्वेदना, पृ0 42

2. डा0 वासुदेव शर्मा-- साठोत्तर हिन्दी कहानी मूल्यों की तलाश, पृ0 25

में मध्यम वर्ग की विषम समस्याओं को विषय बनाया था और उनकी कहानियाँ गहनतम मानवीय संकट की कहानियां है। नई कहानी ने प्रेमचन्द की इन कहानियों से काफी प्रेरणा गहन की, परन्तु उनकी कहॉनियां बढ़ती हुई स्थितियों की कहानियाँ हैं। हिन्दी कहानी के इस सशक्त आन्दोलन ने अपना प्रस्थान बिन्दु और प्रेरणा स्रोत प्रेमचन्द की परवर्ती कहानियों ''पूस की रात' और ''कफन' को माना।''[1]

आजादी मिलने के बाद आशा के बदले निराशा सामने आयी। बाहर और भीतर शरणार्थी थे। ऊपर से सही दिखाई देने वाला आदमी अन्दर से चटख गया था। "दोनों देखों में तो कई लाख आदमी मरे थे पर जिस आदमी ने इस रक्तपात को झेला और भोगा था उसके भीतर सदियों में बने और करोड़ों जिन्दगियो द्वारा बनाये गये विश्वासों का ध्वसं हुआ था। इसलिए देश की सीमायें पार करने वाले शरणार्थियों से भी ज्यादा शरणार्थी वे थे, जिनके मानवीय मूल्यों की हत्या हो गई थी।''[2]

आलोचक मानते है कि 1964--65 तक आते--आते ''नयी कहानी'' का आन्दोलन क्षीण पड़ गया। डा0 बच्चन सिंह ने लिखा है -

"अपनी उपलब्धियों और ऊँचाइयों के बावजूद भी इस दौर की सीमाये दृष्टिगोचर होने लगीं हैं। अब समय आ गया है कि हम इस तथ्य को स्वीकार कर नई दिशाओं की खोज करें। अन्यथा इस दौर के कथाकार भी अपने को उसी प्रकार दोहराने लगेंगे-- अंशों में यह भी लगा है। जिस प्रकार पूर्ववर्ती पीढ़ी ने पिछले डेढ़ दशक में अपने

---

1. पुष्पपाल सिंह : समकालीन कहानी, युग बोध का सन्दर्भ, पृ0 67

2. कमलेश्वर : नयी कहानी की भूमिका, पृ0 7

को दुहराया है।"[1]

मध्यवर्ग को, उसके यथार्थ रूप में साहित्य के स्तर पर नई कहानी में प्रस्तुत किया गया है। सुरेन्द्र चौधरी के अनुसार--

"कहानी एक कालखण्ड के भीतर मध्यवर्ग के मिजाज को धारण करने वाली एक मात्र विधा है।"[2]

स्वतन्त्रता के बाद पारिवारिक संस्थाओं, दाम्पत्य विवाह की जो बदलती हुई परिस्थितियाँ दिखाई दी है, नई कहानी ने इन सारी बदली हुई परिस्थितियों पर दृष्टि डाली है।

अज्ञेय और जैनेन्द्र ने कहानी को व्यक्तिगत नास्टेलिजिक क्षण की कहानी जरूर बना दिया था, लेकिन उसका वैयक्तिक होना अभी बॉकी था "अर्थात व्यक्तिगत को बिना बचाव और सफाई के दूसरे की निगाह से देखने, भोगने का अनुभव।" आजकल तो शहर और गॉव की जिन्दगी की "हृदयहीनता' आज "हाय' यह क्या हो रहा है? का प्रश्न उसने अपने आप व्यर्थ समझकर निकल कर फेक दिया है। साथ ही अनैतिक को देखकर "हाय' यह क्यों हो रहा है ? अन्याय को देखकर यह कौन कर रहा है? की बात भी उसके दिमाग में नहीं आती। उसके सारे कोने और कोण मारकर जिन्दगी ने उसे अपने लिए अभ्यस्त बना लिया है।

---

1. डा0 बच्चन सिंह-- परम्परा का नया मोड़, (नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति - स0 देवी शंकर अवस्थी) पृ0 229
2. सुरेन्द्र चौधरी-- एक रचनाशील सन्दर्भ (हिन्दी कहानी पहचान और परख-- सं0 इन्द्रनाथ मदान) पृ0 203

कहानी चाहे कितने ही ''कैचुअल क्षण' की हो, वह उतने कैचुअल ढंग से नहीं कही जाती। इसलिए भाषा और अनुभूति के दो अलग या कभी-कभी विरोधी स्तरों पर कहानी नहीं चलती। बनावट हीनता का यह दाबा उस समय और भी भ्रामक लगता है, जब देखते हैं कि हर कैचुअल क्षण के साथ संत्रास, मृत्युबोध, अजनबियत, बोरियत से जोड़िए और आधुनिक बनिये।

''इस तरह के तयशुदा दर्शन और दृष्टि की स्वीकृति के बाद कहानी में अनुभव स्तरों का उद्‌घाटन आरोपण या निर्माण ही हो सकता है, सम्बेदनशील मन और परिवेश के आपसी सन्दर्भो की अन्वेषण और जिज्ञासा की प्रक्रिया वही बन्द हो पाती है। ....ऐसी स्थिति में यह कहना बहुत संगत नहीं लगता कि पहले यथार्थ निर्मित किया जाता था, फिर खोजा जाने लगा, आज यथार्थ भोगा भी जाता है।''[1]

आज भी कुछ की कथा उपलब्धियां यही है कि ''उन्होने सम्भोग, होमोसेक्सुअलिटी, मास्टरवेसन, लैर्सिवनिज्म, सैडिज्म इत्यादि के विभिन्न और विविध ''आसनों को दिल फरेब'' और ''प्रतिभा और मौलिकता'' ने कमर के नीचे के हिस्से आदमी --औरत के मिलने बिछुड़ने के विभिन्न ''कोण और स्तर' साहित्य को दिये है। लोकेल सोना गाछी से लेकर आधुनिकतम फ्लैट और होटल रखे हैं, और उन्होंने ही हर इस तरह की कहानी लिखने के बाद सड़क पर खड़े होकर बेचैनी से इन्तजार किया हे, कि लोग उनपर अण्डे और जूते फेंककर उन्हें शहीद क्यों नहीं कर रहे हैं?''[2]

निश्चय ही आधुनिकता बोध वाली कहानियो मे सेक्स को लेकर इस

---

1. राजेन्द्र यादव-- कहानी स्वरूप और सम्बेदना, पृ0 166-67

2. वही, पृ0 167

तरह की ''सन्निपात शहीदेच्छा'' नहीं है। स्त्री पुरूष के सम्बन्ध-- शारीरिक और मानसिक-- वहाँ अधिक सहज और नॉर्मल लगते हैं।

अतः चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, अज्ञेय, यशपाल, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, हरिशकर पारसाई, जैनेन्द्र आदि कहानीकारों ने आधुनिक कहानी और रचना प्रकारों से उसका साम्य--वैषम्य देख लेने के बाद आधुनिक हिन्दी कहानी और उसके स्वरूप को इस प्रकार से उभारा है। आज की कहानी एक ऐसी ध्येयोन्मुख मनोरंजन गद्य रचना है, जिसमें थोड़े स्थान के भीतर मार्मिक परिस्थिति कल्पना के द्वारा जीवन के किसी एक मार्मिक तथ्य को प्रभावी सम्बेदना से व्यञ्जित किया जा रहा है।

****

अध्याय द्वितीय (अ)

स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की पृष्ठभूमि

(अ) "स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की पृष्ठभूमि"

स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय जीवन की सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था ब्रिटिश साम्राज्य के शोषण मूलक नीतियों पर आधारित थी। प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न निर्धन देश में ब्रिटिश व्यापारियों को सस्ता श्रम और विशाल बाजार भी मिल गया था। ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीति का विरोध भारतीय नेताओं, समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों ने समय--समय पर किया था। श्री रानाडे ने कहा था- "भारत वर्ष इंग्लैण्ड का ऐसा बागीचा समझा जाने लगा है जो कच्चा माल पैदा करके ब्रिटिश ऐजेन्टों की मार्फत ब्रिटिश जहाजों में इसलिए बाहर भेज दे कि ब्रिटिश मजदूरों और ब्रिटिश पूँजी से उसका पक्का माल तैयार हो और ब्रिटिश ऐजेण्टों द्वारा भारत को ब्रिटिश व्यापारियों के पास भेज दिया जाय।"[1]

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत में आदिम "हल और बैल" से खेती साधारण औजार की सहायता से दस्तकारी की भित्ति पर टिका आत्मनिर्भर गाँव, अंग्रेजों के आने से पूर्व यही भारतीय अर्थ व्यवस्था का मूल सत्य है--

"राजकुल रूढ़ की क्रान्तियाँ हुई हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिक्ख क्रमशः राजा शासक बने, मालिक बने पर ग्राम समुदाय की अर्थ-व्यवस्था पूर्ववत् ही रही।"[2]

गाँव में प्रायः किसान ही रहते थे। सारा गाँव ही गाँव की भूमि का मालिक होता था। गांव में बहुत ही उलटफेर हुई पर किसी का भी उद्‌देश्य गांव में सत्ता का उपयोग करना नहीं रहा। "गाँव व किसान" इन संघर्षों में आर्थिक कारणों के भागीदार नहीं हुए। ....गाँव में बढ़ई, लुहार, कुम्हार, जुलाहा, मोची, धोबी, तेली, हज्जाम आदि रूप में मजदूर रहते थे। गाँव में जिन वस्तुओं

---

1. कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभि सीतारमैया, पृष्ठ 38
2. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ऐ0आर0 देशाई, पृष्ठ 06

का उत्पादन होता था, उनका विनिमय भी गाँव की जनता में होता जाता था।''[1]

''हसिया और हल' छेनी और आरा, चरखा और करघा इनमें कम समय में कम लागत में सामान तैयार हो जाते थे, पर पीढ़ियों तक वे काम में आते रहते थे। इस प्रकार से आर्थिक रूप से गाँव पूर्णतया आत्म निर्भर रहते थे।''[2]

अतः ब्रिटिश साम्राज्य से भारत का यह सत्य देखा गया। अतः ब्रिटिश सरकार ने भारत में अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित करके भारतीय उद्योग के विनाश के लिए अनेक हथकंडे अपनाये। जैसे--

(1) ''भारत में अबाध ब्रिटिश व्यापार प्रारम्भ करना।

(2) भारत में निर्मित वस्तुओं पर ब्रिटेन में बिक्री कर लगाना।

(3) भारत के कच्चे माल का निर्यात करना।

(4) सीमा शुल्क और परिवहन पर कर लगा।

(5) भारत में रहने वाले अंग्रेजों को विशेष सुविधायें प्रदान करना।

(6) भारत में रेलवे तथा अन्य यातायात को बढ़ाना।

(7) भारतीय कारीगरों की भारतीय रोजगार का (गुप्त) मौलिक बातें उजागर करने को बाध्य करना।''[3]

स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की कहानी लम्बी है और दर्द

---

1. द इन्डस्ट्रियल एबोल्युशन ऑफ इण्डिया इनरीसेन्ट टाइम्स : 1931 डी0आर0गाडगिल, पृष्ठ 10
2. द डेवलपमेंट ऑफ कैपिटलिस्ट इण्टरप्राइज इन इण्डिया: 1934 डी0एच0 वायुकैनन, पृष्ठ 15
3. द रूईन ऑफ इण्डियन ट्रेड एवं इन्ड्रस्टीज, 1933, मेजर बी0डी0 वसु

भरी भी है। यह संघर्ष कई स्तरों पर भी उभरा है। राजनीति के क्षेत्र में स्वदेशी–विदेशी की टकराहट थी। अपने ही देश के अफसरों और पुलिस अधिकारी तथा अन्य कर्मचारियों से सामान्य जनता की टकराहट थी। सामाजिक क्षेत्र में सामान्तवाद और महाजनी सभ्यता का संघर्ष था। देश की सम्पत्ति राजा महाराजाओं और सामन्तों के हाथों से निकलकर शहरों के उद्योगपतियों के हाथों में आने लगी थी। इस तरह देशी और विदेशी उद्योगपतियों की भी एक टकराहट थी। विदेशी शासन विदेशी पूँजीवाद का समर्थक था; पूँजीवाद के उदय से मजदूरों का एक नया वर्ग बनने लगा था।

भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष में पूँजीवादी व्यवस्था का दबाव मजदूर झेल रहे थे। पूँजीपति अंग्रेज इंग्लैण्ड की मशीनों के लिए सस्ता कच्चा माल भी वे यहाँ से बटोरना चाहते थे। इस कार्य के लिए भारत में रेलों का आवागमन अति आवश्यक था। अतः उन्होंने रेलों का जाल भी बिछाया। ब्रिटिश पूँजीपति नीति का आधार था कि भारत का आर्थिक स्तर केवल इस सीमा तक रहे कि वह इंग्लैण्ड का बना माल खरीद सके। उसकी नीति नादिरशाह, चंगेज खॉ जैसे आक्रमणकारियों की तरह लूट की नहीं थी। वरन् शोषण की नीति थी। जो कानूनों अधिकारों और नई सभ्यता को सहयोगी बनाकर वर्षों तक भारत को लूट सके पर ऊपर से यह शोषण साफ--साफ न दिखाई दे। पूँजीपति वर्ग ने भारत का शोषण जिस चतुराई से किया उसकी झाँकी के लिए हीरेश विल्सत की टिप्पणी उल्लेखनीय है :–

"भारत का समस्त सामान तथा सूती माल के व्यापार का इतिहास एक कारूणिक प्रसंग है। जिस देश पर भारत आश्रित हो चुका था, उसने भारत के साथ कैसा अन्याय किया। ....यदि प्रतिरोधक कर और कानून न होते तो पैंजनी और मैनवेस्टर की मिलें शुरू में ही बन्द हो जाती हैं। भाप की ताकत के बावजूद भी उन्हें फिर चला पाना सम्भव नहीं होता। अतः भारतीय निर्माण उद्योग की बलि चढ़ाकर ही ब्रिटिश उद्योगों की सृष्टि की गई। स्वाधीन न होने के कारण भारत आत्म–रक्षात्मक कार्यवाही नहीं कर सका, अजनवी लोगों की दया पर वह भारत निर्भरता ब्रिटेन में

बने सामान पर कर नहीं लगता था और इस सामान का खरीद के लिए भारत बाध्य था। ब्रिटिश पूँजीपति उद्योगपतियों ने राजनीतिक प्रभुता और अनीति की मदद से अपने भारतीय प्रतियोगियों को दबाये रखा और अन्ततोगत्वा उन्हें पूरी तरह समाप्त कर दिया, यद्यपि बराबर की लड़ाई में वे टिक नहीं पाते।"[1]

स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्षों में कृषि पर निर्भर उद्योग धीरे--धीरे नष्ट होने लगे। बेकारी की परेशानी हुई। बेकारी बढ़ने से वस्तुतः कृषि पर दबाव भी बढ़ने लगा। मंहगी शासन व्यवस्था का दबाव भी अन्ततः कृषि पर ही पड़ता था, क्योकि ग्रामीण समाज में भारत का बहुसंख्यक किसान जमींदार और महाजन की व्यवस्था के दो पाटों में पिस रहा था। किसानों का सीधा सम्बन्ध जमींदारों से था किन्तु सरकारी अहलकार भी इनकी हडिडयों से पैसे निचोड़ते थे छोटे--छोटे साहूकारों और ऋणदाताओं के रूप में महाजनी सभ्यता की अपशक्तियाँ देहात में भी फैली थीं जो किसानों का खून चूसती थीं। इसके अतिरिक्त धर्म भी अर्थमूलक होकर रूढ़िवादी किसानों का शोषण निर्भयता से करता था।

मध्यवर्ग की अपनी अलग समस्यायें थी। वह अपनी आर्थिक विपन्नता और उच्चमर्यादा पालन के बीच बुरी तरह पिसकर आडम्बर प्रियता का शिकार हो रहा था। सामाजिक रीति रिवाजों और मर्यादाओं के झूठे निर्वाह के लिए भीतर से कई--कई परतों में टूटकर बाहर से अपने अपने अखण्ड दिखाने के प्रयत्नों में लगा हुआ था। सन् 1906 ई0 में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी ने कहा था कि --

"निर्धन बच्चों का तन काटकर प्रतिवर्ष 30 करोड़ रूपया केवल वेतन तथा पेंशन

---

1. हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया : जेम्सगिल, पृष्ठ 385

के नाम पर इंग्लैण्ड भेज दिया जाता है।"[1] बाल्कृष्ण गोखले ने भी सरकार की कर नीति और साम्राज्य विस्तार पर बढ़ते हुए खर्च की आलोचना की थी। 1906 ई0 में कांग्रेस ने राजनीतिक स्तर पर इस पहलू पर विचार किया और विदेशी का वहिष्कार तथा स्वदेशी का प्रचार आन्दोलन शुरू किया।

प्रथम विश्व युद्ध 1914--1919 ई0 काल तथा उसके बाद के चार वर्ष तक कृषि की स्थिति बहुत खराब रही, उत्तर भारत में अकाल पड़े। 1923 ई0 तक स्थिति कुछ सभली तो 1929 ई0 का अन्तर्राष्ट्रीय मन्दी संकट उपस्थित हो गया। व्यापारिक फसलों जूट, गन्ना, तिलहर आदि से किसान को कुछ लाभ हुआ उसका भी बड़ा हिस्सा प्रशासन जमींदार और उसके कारिन्दे तथा साहूकार हड़प लेते थे। एक निश्चित रकम वसूल करने के लिए विदेशी सरकार ने जमींदार प्रथा लागू कर दी और प्रशासन की सुविधा के लिए जमींदारी और उसके कारिन्दों का एक नया शोषक वर्ग तैयार हो गया। जब जमींदार जाकर शहरों में बसने लगे तो उसका किसान से सम्बन्ध टूट गया। लगान वसूली के लिए मुफ्तखोरी की एक बड़ी जमात मजदूर किसान के लिए विपत्ति बन गई।

"गॉव का पूँजीपति साहूकार था। लगान और ऋण के बोझ से भूमि किसान के हाथ से निकलती जा रही थी और भूमिधर खेत छोड़कर शहरों की ओर मजदूरी के लिए निकलने लगे। गॉव में किसान साहूकार के ऋण में पैदा होता ऋण में ही मरता भी था। युद्ध व्यय के बढ़ने के कारण करों में और वृद्धि हो गई। इन करों का सीधा सम्बन्ध बोझ गॉव पर ही पड़ता था, क्योंकि "कभी--कभी तो लगान की बढ़ाई हुई रकम गांव में पैदा होने वाली फसल की रकम से ज्यादा बढ़ जाती थी।"[2]

---

1. कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभिसीता रमैया, पृष्ठ 79
2. कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभिसीता रमैया, पृष्ठ 34

आर्थिक दुर्दशा ओर युद्ध व्यय के बोझ का अनुभव गाँधी जी द्वारा 2 मार्च, 1930 ई0 को लार्ड इर्विन को लिखे गये पत्र से भी होता है। गाँधी जी ने लिखा है--

"इस शासन में करोड़ों भूखे मनुष्यों का दिन–दिन अधिकाधिक रक्त शोषण करके उन्हें कंगाल बना दिया गया है। उस पर सैनिक व्यय का असह्यनीय भार लादकर उन्हें बर्बाद कर दिया गया है।"[1] दैवी विपत्तियों में सरकार किसान की कोई सहायता नहीं करती थी।

शोषण की समस्त प्रक्रिया के विरोध में उत्कर्ष काल में स्थान--स्थान पर किसान आन्दोलन गांधी जी तथा अन्य नेताओं के प्रोत्साहन से आरम्भ हुए। गांव में किसान समितियों का गठन हुआ। गाँधी जी द्वारा स्वदेशी का आन्दोलन भी आर्थिक मुक्ति की ओर एक कदम था। संयुक्त प्रान्त उत्तर प्रदेश में लगान बन्दी आन्दोलन कृषकों की जागृति का प्रमाण है। निरन्तर अकालों और अन्य दैवी विपत्तियों तथा प्रशासन द्वारा शोषण के कारण किसान भाई मजदूरों के पास इतनी क्रय शक्ति नहीं रह गई थी कि कारखानों में बनी चीजें खरीद सकें। भारतीय उद्योगों की स्थिति सुब्रह्ण्यम् के कथन से स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने 1902 ई0 में कांग्रेस अधिवेशन में कहा था-- "इंग्लैण्ड की सुविधा के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जानबूझकर भारत के हितों का बलिदान किया है और यहाँ के उद्योग धन्धों को हतोत्साहित करके प्रोत्साहन दिया गया है। जिससे इंग्लैण्ड के कारखानों के लिए हिन्दुस्तान कच्चा माल पैदा करते रहें। इस नीति ने भारतीय उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया है।"[2] प्रथम महायुद्ध के पश्चात उद्योग धन्धों के लिए स्थिति अनुकूल हो गई। ब्रिटिश शासन वालों को आर्थिक नीतियों में परिवर्तन करना पड़ा । ब्रिटिश पूंजीपति भारत में पूँजी लगाने लगे और देश में औद्योगीकरण तेजी से आरम्भ हुआ।

---

1. कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभिसीता रमैया; पृष्ठ 247
2. कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभिसीता रमैया, पृष्ठ 39

दूसरे महायुद्ध काल में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में फ्रांस के पतन, ब्रिटिश जहाजी बेड़े की क्षति के कारण इंग्लैण्ड के कारखानों तक कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में ही पहुंच पाता था। भारतीय सीमा पर जापानी आक्रमण और इससे पहले भारतीय बाजार में जापानी माल के आक्रमण से आवश्यक हो गया था कि भारत में ही उद्योगों का विकास हो। भारतीय पूँजीपतियों ने इस सुनहरे अवसर का लाभ उठाया। अतः इस काल में तीव्र गति से औद्योगीकरण हुआ और भारत में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। पूँजीपतियों ने 2000% तक लाभ कमाया, किन्तु मजदूरों की स्थिति बद से बदतर होती गई। उनके लिए वेतन, आवास, स्वास्थ्य और कार्यकुशलता सम्बन्धी समस्यायें भीषण रूप धारण कर गई। मजदूरों का शोषण अब स्वदेशी पूंजीपति करने लगे।

इस समय तक शिक्षित नया वर्ग अभिजन वकील, डाक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, क्लर्क आदि का मध्यम वर्ग भी अस्तित्व में आ चुका था। अतः आर्थिक जीवन में वर्ग संघर्ष की स्थिति बन गई थी। युद्ध सामग्री तैयार करने वाले कई कारखाने युद्ध समाप्त होने पर बन्द किये गये। लगभग 41 प्रतिशत मजदूर बेकार हो गये। 1942 ई0 तक मजदूर संघ काफी विकसित हो चुका था। इसने मजदूरों के हित में आन्दोलन भी किए।

ब्रिटिश साम्राज्य का पूरा शासन तन्त्र शोषण के आधार पर टिका हुआ था। उनका देश मालामाल हो रहा था, इस कारण अन्याय शोषण और लूट के प्रति विद्रोह उभरा है। संभवतः इसका कारण यही रहा होगा कि व्यवस्था द्वारा नियन्त्रित न्यायपालिका से न्याय पाना लगभग असम्भव था। चण्डीप्रसाद जोशी के शब्दों में-- ''एक अजेय निर्भीक किसान इतना अपमान और अन्याय इसलिए सह जाता है क्योकि पुलिस तथा न्याय व्यवस्था इतनी जटिल तथा निकम्मी है कि उसमें व्यक्ति को न्याय नहीं मिलता, बल्कि वह शोषण में फंस जाता है।''[1] इस प्रकार इस अवस्था में निर्धन मनुष्य

---

1. हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन : डा0 चण्डी प्रसाद जोशी, पृ0 205

इतना असहाय है कि अपने अपमान और जमींदार के अत्याचार का प्रतिकार वह मरकर प्रेत बनकर ही करता है। किसान और मजदूर ही नहीं, अपितु प्रशिक्षित बेकारों की समस्या भी भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की ओर सभी का ध्यान आकर्षित करती है।

आर्थिक संघर्ष तो पहले ही विकट थे। अब तो उसने गम्भीर संकट का रूप धारण कर लिया। कई आर्थिक प्रश्न उलझते ही गये। देश में फैली अराजकता, देशी रियासतों की समस्या, करोड़ों शरणार्थियों के लिए आवास, भूमि और रोजगार की समस्याओं से निबटने के लिए पूर्व निर्धारित कोई योजना सरकार के पास नहीं थी। सेना का व्यय भी बढ़ा परिणाम यह हुआ कि भारतीय जीवन का आर्थिक संघर्ष और भी कठिन हो गया।

प्राचीन भारत में शहर राजनीतिक, पारिवारिक, धार्मिक या व्यापारिक महत्व के थे। शासन व ज्ञान के केन्द्र भी नगर ही होते थे। बनारस मथुरा, पुरी, नासिक जैसे शहर मुख्यतः उपासना या तीर्थ स्थलों का महत्व रखते थे। ये नगर आवागमन के उपयुक्त नदियों के किनारे व वाणिज्यिक भागों के संगम पर या समुद्र तट पर बने थे।

अंग्रेजों ने भारत से व्यापार करने के लिए जो कम्पनी बनाई, उसका नाम था ईस्ट इण्डिया कम्पनी। उन दिनों भारत में अकबर बादशाह का राज्य था अंग्रेज व्यापारी ऊनी कपड़ा तथा तांबे और लोहे की बनी चीजें अपने देश से लाते और हमारे देश से कालीमिर्च, चावल, रूई, नील, अदरक, मसाले, गन्ना, नारियल तथा अफीम आदि भी ले जाते थे। वे हमारे देश से मलमल तथा सूती और रेशमी वस्त्र भी बहुत सा ले जाते थे। उन दिनों भारत की मलमल संसार में प्रसिद्ध थी। क्योंकि '[illegible] तीव्र बुद्धि और सूक्ष्य योग्यता तथा सृजनात्मक प्रतिभा के योग से भारतीय उद्योग पाश्चात्य देशों से अपेक्षा-कृत आगे बढ़े हुए थे। वस्त्र निर्माण भारत का प्रमुख उद्योग था। यहॉं के सूती रेशमी वस्त्रों की सर्वत्र धूम थी। धातु कार्य, प्रस्तरशिल्प, शक्कर और कागज के उद्योग भी

पन्द्रहवी शताब्दी में ही विकसित हो गये थे। गजदन्त से भुजदण्ड तथा अंगूठी, पाँसे, मलका, पलंग, चीनी, मिट्टी के बर्तन और भी अनेक वस्तुंए भारत में बनती थीं तथा विश्व के तमाम देशों में विशेषतः यूरोप में इनकी भारी मांग होती थी।"[1]

प्राग ब्रिटिश भारत का नागरिक हस्तशिल्प अति ही विकसित था। यहाँ की उच्च कला की गुण सम्पन्न विविध कृतियाँ चारों ओर मशहूर थी। लड़ाई के हथियार, सेना के अन्य सरंजाम, सैनिक दुर्ग, विशाल मन्दिर, भव्य राज प्रासाद, ताजमहल, कुतुबमीनार जैसे अभियन्त्रण नैपुण्य के स्मारक और खेतों को अभिसिंचित करने वाली नहरों का तथा जो कह रहे हैं। कैलबर्टन ने उसे इन शब्दों में व्यक्त किया है – "प्राचीन काल में जब रोम के निजी और सार्वजनिक भवनों में भारतीय कपड़ों, दीवार दरी, तामचीनी, मुजक, हीरे, जवाहरात आदि का निर्माण होता था उस वक्त से औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ तक आकर्षक और उद्दीपक वस्तुओं के लिए सारा संसार भारत का मोहताज रहा।"[2]

जहाँगीर के शासन काल में अंग्रेजों ने सम्राट की आज्ञा से सूरत में एक व्यापार की कोठी बनवाई कोठी में चारों ओर उन्होंने सुदृढ़ दीवार बनवाई और उनमें तोपें रख दी। अब वे अपना व्यापार बढ़ाने में लग गये। धीरे--धीरे उन्हें कलकत्ते में भी जमीन खरीदने की स्वीकृति मिल गई। अब अंग्रेजों के पैर भारत में जमने लगे और बम्बई, मद्रास, कलकत्ता तथा अन्य नगरों में उनकी कोठियाँ बनने लगी। भारत की आर्थिक और सामाजिक संरचना शहर और गाँव की आत्मनिर्भरता अंग्रेजों के पूंजीवादी फैलाव के लिए बाधा बन गई थी। बाद में इंग्लैण्ड की अग्रबर्ती बर्जुआ ने भारत में सामन्तवादी रजवाड़ों की राजनीतिक शक्ति का ह्रास किया और यहाँ की ग्रामीण एवं नागरिक

---

1. द अवेकनिंग आफ अमेरिका: 1939, बी0एप0कैलबर्टन, पृष्ठ 16–17
2. द अवेकनिंग ऑफ अमेरिका : 1939, बी0एप0कैलबर्टन, पृष्ठ 18

अर्थव्यवस्था की इस आर्थिक आत्मनिर्भर व्यवस्था क़ो चकनाचूर कर दिया। भारतीय समाज का पुरातन आधार तोड़कर उसके स्थान पर पूँजीवादी बीज बोकर भारत को आर्थिक गुलाम बना लिया। पहले तो उनका विचार केवल व्यापार करने का था, पर जब उन्होंने देखा कि भारत के राजा परस्पर लड़ते हैं और दिल्ली का राज्य निर्बल हो गया है तो उन्होंने यहाँ अपना राज्य बनाने की बात सोची।

अग्रेजों ने सेनायें तैयार कर लीं। वे भारत के राजाओं की लड़ाईयाँ लड़ने लगे, उन्हें फ्रांसीसियों से भी लड़ना पड़ा, जबकि हमारे देश में वीरों की कमीं न थी। राजपूत, मराठे, सिक्ख, मुसलमान, गोरखे एक से एक बाँकेवीर थे। किन्तु परस्पर फूट के कारण हमारे देश को अंग्रेज की दासता सहनी पड़ी, धीरे--धीरे सारा देश अंग्रेजों के अधीन हो गया। अब देश में कम्पनी का राज्य भी स्थापित हो गया, लोग कम्पनी को ''कम्पनी बहादुर'' कहकर पुकारते थे। कम्पनी के अधिकारी जैसा चाहते थे वैसा करते थे। देशी राजाओं और रानियों का धन लूटा गया। देश में घोर असंतोष फैलने लगा। कम्पनी की स्थिति अनेक बार डॉवाडोल हुई किन्तु उसके चतुर अधिकारियों ने उसे संभाल लिया अन्त में सन् 1857 के ई0 असन्तोष ने जो उग्ररूप धारण किया उससे कम्पनी की तथा उसके राज्य की नींव हिल गई। इस तरह कम्पनी के शासन का अन्त हो गया।

सन् 1857 ई0 का राष्ट्र व्यापी विद्रोह अंग्रेजों ने अपनी शक्ति और कूटनीति से दबा दिया था परन्तु भारतीय जनता की दबी हुई चिंगारी भारतीय प्रायद्वीप के किसी न कसी भू-भाग में समय--समय पर अपनी चमक दिखाती रहती थी।

राजा किसी भी प्रकार का हो, दयालू या क्रूर, परोपकार या निरंकुश, हिन्दू बौद्ध या मुस्लिम पर कभी यह कोशिश नहीं हुई कि ग्राम समुदाय की जमीन से वंचित कर दिया जाय या जमींदारों का कोई वर्ग स्थापित किया जाय, न ही भारत में भूमिपर किसी भी प्रकार का व्यक्तिगत

स्वत्व माना गया। अंग्रेजों ने पहली बार भू व्यवस्था में परिवर्तन कर दिया लगान व्यवस्था ने गांव की जमीन पर लोगों की जमाने से चली आ रही मल्कियत खत्म कर उसकी जगह भू स्वामित्व के वर्गों को जन्म दिया। पहला देश के कुछ भागों में जमीदारी दूसरी अन्य भागों में किसान की निजी मल्कियत कायम कर दी। कार्नविलास ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमीन के स्थाई बन्दोबस्त के जरिये। जमीदारों को पैदा किया बन्दोवस्त की शर्तो के अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अब निश्चित रकम देना होती थी।

अंग्रेजों का परिवर्तन के नाम पर यह पहला आर्थिक प्रहार था इस आर्थिक नीति से उन्हें कई लाभ थे। लाखों किसानों की अपेक्षा कुछेक हजार जमींदारों से लगान की वसूली के कर आसान और आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभदायक थी। नवजात अंग्रेजी राजा के अस्तित्व की रक्षा के लिए राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टि से देश में सामाजिक सामर्थ्य की आवश्यकता थी। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यह नया वर्ग अवश्य ही शासन की मदद करेगा 1828 से 1835 तक रहे भारत के गवर्नर जनरल लार्ड वैदिक ने कहा है--

"यद्यपि स्थाई बन्दोवस्त कई अर्थों में असफल रहा फिर भी व्यापाक जन विद्रोह या क्रान्ति के विरूद्ध सुरक्षा की दृष्टि से इसका यह बहुत बड़ा लाभ रहा कि इसके द्वारा भूमिधरों का ऐसा बड़ा दल तैयार हो गया जिसको ब्रिटिश शासन के स्थायित्व से फायदा था और जिसका जन सामान्य पर अंकुश था।[1] रैयतवाड़ी प्रथा में भी जमीन का निजी बन्दोवस्त किया गया भूमि कर फसल के बदले भूमि को आधार बनाकर निर्धारित किया। इस प्रथा ने भी भारतीयो का वैसा ही हनन किया। जमींदारी प्रथा ने इन व्यवस्थाओं में जमीन की निजी मल्कियत फली--फूली और भूमि अब माँ न होकर पुण्य की वस्तु हो गई जिसे रहन किया जा सकता था, जिसका क्रय विक्रय हो

---

1. अकांस्टिट्यूशनल हिस्ट्री आफ इण्डिया : 1936 ए0वी0कीथ : खण्ड 1 पृष्ठ 215

सकता था। इस प्रकार अंग्रेजों ने शोषण का शिकंजा कृषि आश्रित जनता पर फैला दिया। इस व्यवस्था के दुष्परिणाम अवश्यम्भावी थे। जमीन रहन रखने और क्रय विक्रय करने की शुरूआत हो गई।

अतः विदेशी शासन भारत पर अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए फूट और विभाजन की नीतियों द्वारा भारतीय जनता की राष्ट्रीयता को खण्डित करने के लिए प्रयत्नशील रहता था, सन् 1885 ई0 का वह दिन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है, जिस दिन सर्वश्री ए0ओ0 ह्यूम दादा भाई नौरोजी, सुरेन्द्र नाथ वनर्जी आदि के नेतृत्व में भारतीय कांग्रेस की नींव पड़ी। यह संस्था इसलिए बनाई गई कि भारत के शिक्षित लोग ब्रिटिश सरकार की नीति के सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकट कर सकें। इसका प्रथम अधिवेशन बम्बई में हुआ जिसमें सत्तर प्रतिनिधियों ने भाग लिया कांग्रेस को भारत में सब चाहने लगे वह भारत में लोकप्रिय हो गई। उसका अधिवेशन प्रतिवर्ष होता था। कुछ ही समय में कांग्रेस को बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल, कृष्ण गोपाल गोखले और मदन मोहन मालवीय जैसे नेता मिल गये। सबने मिलकर स्वराज्य की मांग की जब मोहन दास करमचन्द गांधी अफ्रीका से लौटे तो उन्होंने भी इस मांग को दोहराया। 1905 ई0 में लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन कर दिया तो बंगाल में हिंसा भड़क उठी। विप्लववादियों ने कुछ अंग्रेजों की हत्यायें कर दीं। भारत की जनता राष्ट्रीय एकता एवं स्वतन्त्रता के लिए हर प्रकार के त्याग और बलिदान के लिए तैयार हो रहे थे। इसी सम्बन्ध में मोतीलाल राय लिखते हैं कि --

''राष्ट्रीयता की भावना अपने पूर्ण यौवन पर पहुँच गई थी। राष्ट्र की मुक्ति के लिए त्याग और बलिदान जनजीवन में सबसे ऊँचे मूल्य बन गये थे। निरूपाय जाति के प्रति अन्याय करने वाले का वध ही उचित था।''[1] प्रफुल्ल कुमार खुदीराम बोस और कन्हाई जैसे अनेक युवक

---

1. स्वाधीनता के पुजारी : सं0 सुरेन्द्र शर्मा, पृष्ठ 08

विदेशी शासन को अपनी जागृति का परिचय देने के लिए कफन बॉधकर स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े।

बंग भंग विरोधी आन्दोलन को कुचलने के लिये सरकार ने जो नीति अपनाई उससे कांग्रेस की नीतियों में विशेष परिवर्तन हुआ। लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्र पाल, लाला लाजपत राय कांग्रेस में उग्र विचाराधारा का नेतृत्व करने लगे। राष्ट्रीय आन्दोलन में दो शब्द ''बहिष्कार'' और ''विदेशी'' बंग भंग विरोध के साथ ही आये और भारतीय समाज के लिये जीवन मूल्य बन गये थे। मोतीलाल राय के शब्दों में -- ''बंगालियों ने सोच लिया था कि घोर अन्याय का प्रतिकार करके ही रहेगें। अस्त्रहीन जाति अब चुप नहीं रहेगी। हम अंग्रेजों को यदि हाथों न मारेगें तो क्षुधातुर करके मारेगें। वणिक अंग्रेजों का व्यवसाय नष्ट कर देगें। विलायती वस्तुओं का व्यापार न करेंगे ---------- हिन्द महासागर से लेकर हिमालय तक वन्दे मातरम् की ध्वनि गूँज रही थी। जागरण के उस नूतन प्रभात में बंगाल के प्राणों में अग्नि लग चुकी थी। उस अग्नि की चिगारी देश के अन्य प्रान्तों में भी जा पड़ी।''[1]

बंगाल में सम्प्रदायिक दंगें शुरू हो गये। स्वदेशी का प्रवाह अवरूद्ध हो गया। 1914 ई0 में प्रथम विश्वव्यापी युद्ध आरम्भ हो गया। गाँधी जी को पूरी आशा थी कि युद्ध के बाद अंग्रेज भारत को स्वराज्य देगें। उन्होनें हृदय से अंग्रेजों की सहायता की किन्तु जब युद्ध में इंग्लैण्ड की विजय हो गई तब वहाँ के शासकों ने भारत की आशा पूरी न की। भारत को स्वराज्य न मिला, बल्कि अंग्रेजों ने ऐसा कार्य करना आरम्भ कर दिया जिससे भारत का अपमान होता था। गाँधी जी देश का यह अपमान सह न सके।

गाँधी जी ने सरकार की नीति के विरोध में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। सरकार

---

1. स्वतन्त्रता के पुजारी : सं0 सुरेन्द्र शर्मा, पृष्ठ 12

की बुरी नीति के विरोध में जालियांवाला बाग में शासन की दमन नीति के कारण क्रूरता से नरसंहार हुआ। जलियांवाला बाग में एक विशाल सभा भी की गई। सभा शान्तिमय थी परन्तु सरकार ने बिना सूचना दिये गोली चलवा दी, सैकड़ों स्त्रिओं, बच्चों और पुरूषों की जाने गई। देश भर में क्षोभ फैल गया। सन 1919 ई0 में भारत का राजनैतिक जीवन फिर नई--नई परिस्थितियों से जूझने लगा।

1919 ई0 में माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड बिल के नाम से सुधारों को कानून का रूप दिया गया, इसमें भारतीयों को भी कुछ मंत्री पद सौंप दिये गये। कुछ सुविधायें देकर रोलेट एक्ट के विरोध में गांधी जी के आह्वान पर देश व्यापी आन्दोलन आरम्भ हो गया तथा शासन का दमन चक्र भी शुरू हो गया। देश में जगह--जगह हिंसा काण्ड हुये। जलियांवाला बाग के नरसंहार से सरकार को भारतीय जीवन और जनता की एकता तथा बलिदान की शक्ति का अनुमान हो गया था। अतः इसके विरूद्ध सामन्तों को संगठित करने के लिये 1922 ई0 में "नरेश संरक्षण बिल" पास हुआ। भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष के दमन के लिये सरकार देश के ही लोगों को प्रयोग में लाने लगी। 1919 ई0 में माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड बिल की कानूनी सहायता से जातियों एवं सम्प्रदायों को पृथक निर्वाचन और संरक्षण भी प्रदान किया गया। उदार नेताओं ने योजना का स्वागत किया, किन्तु कुछ राष्ट्र भक्त देश नेता इस चाल को बड़ी दूरदर्शिता से देख रहे थे। मुंशी प्रेमचन्द्र, दया नरायण निगम को लिखे गये इस पत्र से उदार नेताओं की सुविधा भोग की नीति का पता चलता है-- "मेरे ख्याल से भीतदिल पार्टी इस वक्त जरूरत से ज्यादा नॉजा है, हालांकि इस्लाहों में अगर कोई खूबी है तो सिर्फ यह कि तालीम याफ्ता जमाअत वकील बनकर रियाया का खून पी रही है। उसी तरह हाकिम होकर आइन्दा रियाया का गला काटेगी। "[1] इस प्रकार उदार दल अपने लिये अधिकाधिक सुविधाओं का रास्ता बना रहा था।

---

1. चिट्ठी पत्ती : सं0 अमृतराय, पृष्ठ 931

अपना राज्य वापस पाने के लिये भारतीय लोग सरकारी नौकरियां छोड़ने लगे। पं0 मदनमोहन मालवीय, पं0 मोतीलाल नहेरू, पं0 जवाहरलाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, गोविन्द बल्लभ पंत जैसे कर्मवीर कांग्रेस में आ चुके थे और इस समय तक कांग्रेस की शक्ति बढ़ चुकी थी। भारतीय जनता राष्ट्रवादी नेताओं की उग्र प्रतिक्रिया नागपुर कांग्रेस 1920 ई0 अधिवेशन में प्रकट हुई सरकार को मजबूरन गाँधी इर्विन समझौते तक झुकना, अगस्त 1932 ई0 में सरकार ने पृथक निर्वाचन की घोषणा कर दी। गाँधी जी ने जेल में ही आमरण अनशन की घोषणा करके विरोध प्रकट किया। अंग्रेज अब समझ गये कि भारत की स्वतन्त्रता की माँग को एक दिन पूरा करना पड़ेगा। उन्होनें प्रान्तों की सरकार बनाने का अधिकार भारत वासियों को दे दिया था। सन् 1936 ई0 में सरकारें बनी, किन्तु दो वर्ष बाद ही सन् 1939 ई0 में दूसरा विश्वव्यापी युद्ध छिड़ गया। ब्रिटिश सरकार ने बिना भारतवासियों से पूँछे ही भारत को भी युद्ध में शामिल कर लिया। कांग्रेस इस अपमान को सह न सकी, और उसके सदस्यों ने प्रान्त की सरकारों से त्याग पत्र दे दिया। अब कांग्रेस ने निश्चय किया कि सत्याग्रह आरम्भ किया जाये, फलस्वरूप पूना पैक्ट हुआ और अछूतों को सुरक्षित स्थान दे दिया गया। इसके पश्चात गांधी जी की राजनीति अछूतोद्धार भी एक उद्देश्य बन गया।

स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष राजाओं, युवराजों, और उनके कारकुनों की क्रिया प्रतिक्रिया से व्यक्ति का और समाज के जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध था। ब्रिटिश सरकार जनता के शोषण के लिये इनको माध्यम के रूप में प्रयोग करती थी। कठपुतली राजाओं, महाराजाओं पर रेजीडेन्ट का कड़ा नियन्त्रण रहता था। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों में इन राजाओं ने सरकार की दमन नीति में सहयोग दिया। रियासतों की प्रजा दोहरे शासन में पिस रही थी। सच तो यह है कि यह देश अपने ही हाथों विदेशी हथकण्डों से मारा गया क्योंकि लगातार बढ़ती हुई गरीबी के कारण अधिकांश कारीगर अपना पुश्तैनी कारोबार छोड़ने लगे। लाखों, कराड़ों

बर्बाद कारीगरों, जुलाहों, सूत कातने वालों, कुम्हारों, चर्मकारों, लुहारों, बढ़ईयों आदि के पास चाहे वे शहर के हो अथवा देहातके सिवा इसके कोई चारा नही था। वे या तो खेती पर निर्भरता बढ़ावे या यहां--वहां बसकर मजदूर बन जावें।

"अंग्रेजों की शासन व्यवस्था और आर्थिक शोषण की भूमिका ने ही जमीदार और महाजन वर्ग को जन्म दिया। इस वर्ग में इतना अधिक शोषण किया कि आर्थिक दासता सी कायम हो गई। बिहार और उड़ीसा की कमजोरी प्रथा की शर्मनाक कहानी का जीवनन्त उदाहरण है। जिसका वास्तविक अर्थ है आर्थिक दासों द्वारा खेती की प्रथा कमियॉ लोग अपने मालिक के बॉधे हुये नौकर थे। ऋण के रूप में जो ब्याज आता था उसके बदले में उन्हें सारे काम करने पड़ते थे। जमींदार को निजी भूमि पर खेती के लिये जो मजदूर बहाल होते थे। उन्हें सबसे पहले जमीदार के यहॉ हाजिर होना पड़ता था। उन्हें अग्रिम राशि इसी शर्त पर दी जाती थी कि कृषि सम्बंधी काम के लिये मजदूर जमींदार के बुलाने पर तुरन्त आ जायें। ऐसे मजदूर जिन दिनों अपने साहूकार के लिये काम करते थे। उन दिनों उनके लिये अन्न राशि उन्हे मजदूर के रूप में मिलता था। इससे कमियॉ लोग अपने मजदूरी के लिये मोल तक नहीं कर सकता था। ठेकेदार की सड़क की मरम्मत के लिये निबैध मजदूरी की जो मजदूरी देता था उसका एक तिहाई मजदूरी ही कर्मियों को दी जाती थी। जो समय बच जाता था उसमें काम कर वह कभी--कभी कुछ पैसे जमाकर लें तो और कभी उसे पैसे देखने को भी नहीं मिलते ऐसे किसी अवसर या साधन की कोई उम्मीद नही रहती कि वह अपने कर्जे की मूल राशि चुकाकर स्वतन्त्र हो सके। कमेटी का शर्तनामा जैसे सारी जिन्दगी के लिये ही दण्डाना हो।" [1]

सूदखोर महाजन वर्ग ने बेबसी में जकड़े किसान भाइयों का खूब शोषण किया। सूद

---

1. रायल कमीशन ओन एग्रीकल्चर : पृष्ठ 433--34

की दर 2% से लेकर 200% और 300% तक के रिकार्ड देखे गये। किसानों से पैसे चूसने के लिए जमींदार महाजन साहूकार कानूनी तरीकों के अलावा जालसाजी से भी काम लेते थे। जैसे मूल से भी अधिक का शर्तनामा लिखवाना, हिसाब में गलत कलमें अंकित करना, ब्रिटिश सरकार को देखने दिखाने के लिए कुछ कानून बनाये गये। पर रायल कमीशन ओन एग्रीकल्चर ने निष्कर्ष दिया है कि ऋण ग्रस्तता समस्या के समाधान के लिए वैधानिक प्रयास अपेक्षाकृत असफल रहे। इस शोषण की ओर साफ तस्वीर एन0एस0 सुलमून की रचना दक्षिण भारत के एक गॉव का अध्ययन (1936 में प्रकाशित) में दिखती है; लेखक ने लिखा है कि --

"गॉव का प्रत्येक निवासी हर साल में औसतन 38 रू0 कमाता था सरकार की माल गुजारी जमींदार का लगान और साहूकार का सूद देने के बाद उसके पास 13 रू0 बचते थे। जिनके सहारे उसे साल भर जीना पड़ता था यानि जो कुछ वह कमाता उसका केवल एक तिहाई उसके पास बचता था और दो तिहाई उसके हाथ से निकल जाता था।" यहाँ कालाईन ने उस लेखक का उल्लेख किया है जिसमें फ्रांसीसी क्रान्ति के पूर्व किसान की गिरती दशा का चित्रण है--

"विधवा अपने बच्चों का पेट भरने के लिए जंगल में जड़े चुन रही है और होटल के बरामदे में नजाकत के साथ लेटे हुए चिकने चुपड़े (तथाकथित) भद्र पुरूष के पास एक ऐसा जादू है जिससे वह बुढ़िया की हर तीसरी जड़ छीन लेगा और कहेगा, यह लगान और कानून का जादू है। जमींदारी महाजनों और साहूकारों के माध्यम से अंग्रेजो ने इससे भी बड़ी जादूगरी दिखाई यहाँ किसान के पास तीन में से केवल एक जड़ बचती है और दो जड़े उन भद्र पुरूषों के पास पहुंच जाती थी।"[1]

भारतीय किसानों को गरीबी और ऋणगस्तता के कारण, किसान की जमीन,

---

1. भारत : वर्तमान और भावी जीवन, रजनी पामदत्त, पृष्ठ 97

जमींदार, महाजन और बनिया के हाथ में पहुंचने लगी। जमीन धीरे--धीरे गिने चुने लोगों के हाथों में आने लगी। भारतीयों की ऐसी दुर्दशा देखकर गाँधी जी को बड़ा दुख हुआ गाँधी जी ने परिश्रम को ही सिक्का बनाया जिससे लाभ में लिपटा विष छूट जाय। रास्किन के इस कथन ने लाभी की क्रूरता व्यक्त की है। महात्मा गांधी के चिन्तन में भी लाभ की इसी क्रूरता को समाप्त करने के प्रयत्नों में भी निहित की है--

"दोष पूँजी में नहीं उसके दुरूपयोग में है। इसी नीति वाक्य को सुनाते हुए गाधी जी ने आर्थिक शोषण के रोग को इस तरह स्पष्ट किया कि वर्तमान स्थिति में तो अमीर--गरीब सभी समान रूप से असन्तुष्ट है, गरीब लखपति बनना चाहता है और लखपति करोड़पति बनना चाहता है।"[1]

भारतीय समाज का जीवन मुक्ति आन्दोलन के विविध पक्षों से प्रभावित हुआ विदेशी शासन से मुक्ति मिले भारत की जनता और नेताओं का एक ही प्रमुख राजनैतिक ध्येय था इस आन्दोलन के विरोधी तत्व विदेशी ही नहीं स्वदेशी भी थे। सम्पूर्ण राष्ट्र वाह्य और आन्तरिक संघर्षों में उलझा हुआ था। अतः राजनैतिक संघर्ष के साथ--साथ सामाजिक बुराइयों को सुधारने के लिए सुधार आन्दोलन भी चलाये। स्वतन्त्रता के पूर्व के सामाजिक जीवन को देखते हुए अंग्रेज प्रोफेसर रशब्रक ने सन् 1930 ई0 में कहा था--

"इन ताकतवर और वफादार देशी रियासतों के इस जाल के कारण यह बहुत मुश्किल होगा कि अंग्रेजों के खिलाफ कोई आम विद्रोह पूरे देश में फैल जाये।"[2] किन्तु कालान्तर में देश गांधी जी के देश व्यापी आन्दोलनों और जनता के त्याग, उत्सर्ग एवं दृढता ने देशी

---

1. बापू कथा : सं0 हरिभाऊ उपाध्याय, पृष्ठ 193

2. प्रेम साहित्य में व्यक्ति और समाज : सं0 डा0 रक्षापुरी, पृष्ठ 68

रियासतों की नींव हिला दी।

द्वितीय महायुद्ध ने ब्रिटेन साम्राज्य को कठिन स्थिति का सामना करना पड़ा था। ऐशिया में भारत का विशाल भू खण्ड भी अंग्रेजों को एक बड़ा महत्वपूर्ण औपिनी--वेश था। इस देश की पूर्वी सीमा पर जापान और आजाद हिन्द फौज का दबाव था। आन्तरिक राजनीति में भी काग्रेस से सहयोग नहीं मिल रहा था। गॉधी जी ने अंग्रेजों से कहा ''भारत छोड़ो'' उनका ''भारत छोड़ो आन्दोलन'' जोरों पर था। इसका तात्पर्य यह था कि अंग्रेज भारतीयों को शासन दे दें। देश व्यापी आन्दोलन हुआ गॉधी जी तथा देश के बड़े--बड़े नेता जेल भेज दिये गये। क्रिप्स मिशन की योजना के विरूद्ध भी जनता और देश नेताओं का आक्रोश एवं असन्तोष भड़क उठा था। कुल मिलाकर भारतीय प्रायद्वीप में अंग्रेजों की स्थिति बड़ी कठिन थी। अंग्रेजों की भेदनीति से मुस्लिम अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना और नेताओं की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं ने देश को साम्प्रदायिक दगों में झोंक दिया। मुस्लिम लीगी नेताओं ने पाकिस्तान के लिए जेहाद का नारा लगाया। मुस्लिम लीग की इस नीति ने अग्नि में घी का काम किया।

अतः दूसरे विश्व व्यापारी युद्ध में भी अंग्रेजों की विजय हुई अब ब्रिटिश सरकार को निश्चय करना पड़ा कि भारत का शासन भारतीयों को सौप दिया जाय।

अर्ध रात्रि का समय था विधान सभा का अधिवेशन चल रहा था। विधान भवन खचाखच भरा था। भवन के बाहर लाखों नागरिकों की भीड़ एकत्र थी। सब यह बाट जोह रहे थे कि कब भारत के भाग्याकाश में स्वतन्त्रता का सूर्य उदय हो। घड़ी ने बारह बजाये। ''भारत माता की जय' और ''गॉधी जी की जय'' के नारों से आकाश गूंज उठा। ठीक बारह बजकर एक मिनट पर जवाहर लाल नेहरू ने जय--जय ध्वनि के बीच स्वतन्त्र भारत के शासन की बागडोर ग्रहण की। वे भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने। भारत स्वतन्त्र हुआ।

यह पन्द्रह अगस्त सन् 1947 ई0 का स्वर्ण दिवस था। इस दिन मानव रक्त रंजित स्वतन्त्रता भारत को मिली, और भारतीय प्रायद्वीप दो राजनैतिक भू खण्डों में विभाजित हो गया। इसके तीन वर्ष बाद 26 जनवरी, सन् 1950 ई0 में भारत को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। भारत में गणतन्त्र की स्थापना हुई और राष्ट्रपति ने पद ग्रहण किया।

भारत ने राजनैतिक स्वतन्त्रता पा ली थी। अब आर्थिक स्वतन्त्रता और आर्थिक समानता के लिए संकल्पित होने का समय आ गया था।

****

अध्याय द्वितीय (ब)

प्रेमचन्द्र और उनके समकालीन हिन्दी कहानियों में स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष के निरूपण की विवेचना

प्रेमचन्द और उनके समकालीन हिन्दी कहानियों में स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष के निरूपण की विवेचना"

प्रेमचन्द व उनके समकालीन हिन्दी कहानियों मेआर्थिक सघर्ष का निरूपण गहरे रंगों में उभरा हैं- सुदर्शन, विश्वम्भर शर्मा, कौशिक, ज्वालादत्त, चण्डी प्रसाद, हृदयेश, पहाड़ी, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा, यज्ञेय, यशपाल, बैचेन शर्मा उग्र तथा अमृतराय जैसे आदि अनेक कहानीकारों ने समाज के आर्थिक सघर्ष को अपनी-अपनी दृष्टि से अपनी-अपनी कहानियों में विभिन्न प्रकार से चित्रित किया है। परन्तु समाज के आर्थिक संघर्ष का व्यापक और बहुपक्षीय चित्रण प्रेमचन्द की ही कहानियों में अधिक हुआ है। प्राचीन संस्कृति की गौरवगाथाओं के माध्यम से राष्ट्रीयता के पौधे को जयशंकर प्रसाद जी अपने तन, मन से सीचते रहे हैं।

जयशंकर प्रसाद जी की भावपूर्ण समस्त कहानियो में यही अनुगूँज है उन्होने भारत के बारे में पुष्टि करते हुये कहा है कि-तुम वही राष्ट्र महान हो जिसकी महान प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा है। प्रेमचन्द जी ने अपनी कहानियों में अनेकों पात्रों को हर संघर्ष में इस तरह दर्शाया है कि पाठकों की ऑखे तक नम हो जाती हैं। वे सृजन की सारी निर्माणकारी सम्भावनाओं की पहचान रखते हैं। उन्होने भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष को चित्रित ही नहीं किया, बल्कि उसका परिष्करण और परिमार्जन करके दिशा बोध भी दिया है।

भारतीय जीवन में आर्थिक संघर्ष दर्शाते हुये मंशी प्रेमचन्द ने "बलिदान"[1] कहानी में नायक गिरधर की आर्थिक स्थिति यही बताई है कि 'गिरधर' जमींदार के खेत

---

1. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 63

के लिये नजराना नहीं दे सकता। खेत हाथ से निकल गये अतः विवश होकर उसने आत्महत्या कर ली। गिरधर के भूत के भय से खेत बिना बोये ही पड़े रहे। खेत गिरधर के हो गये, किन्तु गिरधर नहीं है, कैसी बिडम्बना है। इस कहानी का वर्णन करते हुये मुशी प्रेमचन्द्र ने लिखा है–

"कि हरखू के खेत गाँव वाले की नजर पर चढ़े हुये थे। पाँचो बीधा जमीन कुँये के निकट खाद–पाँस से लदी हुई मेड़ बाँध से ठीक थी। उनमें तीन–तीन फसलें पैदा होती हैं। हरखू के मरते ही उन पर चारों ओर से धावे होने लगे। गिरधारी तो क्रियाकर्म में फँसा हुआ था। उधर गाँव के मनचले किसान लाल ओकारनाथ को चैन न लेने देते थे, नजराने की बड़ी–बड़ी रकमें पेश हो रही थीं। कोई साल भर का लगान पेशगी देने पर तैयार था, कोई नजराने की दूनी रकम का दस्तावेज लिखने पर तुला हुआ था : लेकिन ओंकारनाथ सबको टालते रहते थे। उनका विचार था कि गिरधारी का हक सबसे ज्यादा है। वह अगर दूसरों से कम भी नजराना दें तो खेत उसी को देने चाहिये। अस्तु, अब गिरधारी क्रिया–कर्म से निवृत हो गया और चैत का महीना भी समाप्त होने आया, तब जमींदार साहिब ने गिरधारी को बुलाया और उससे पूछा– खेतों के बारे में क्या कहते हो ? गिरधारी ने रोकर कहा– उन्हीं खेतों का ही तो आसरा है जोतूगाँ नही तो क्या करूँगा। ओंकारनाथ– नहीं जरूर जोतो, खेत तुम्हारे है। मै तुम्हें छोड़ने को नहीं कहता हूँ। हरखू ने उन्हें बीस साल तक जोता। उन पर तुम्हारा हक है। लेकिन तुम देखते हो अब जमीन की दर कितनी बढ़ गई है। तुम आठ रूपये बीघे पर जोतते थे, मुझे दस रूपये मिल रहे हैं और नजराने के सौ रूपये अलग। तुम्हारे साथ रियायत करके लगान बढ़ी रखता हूँ, पर नजराने के रूपये तुम्हें देने पड़ेगें।

गिरधारी– मेरे घर में इस समय रोटियों का भी ठिकाना नहीं है। इतने रूपये कहाँ से लाऊँगा ? जो कुछ जमा–थमा थी। दादा के काम में उठ गई, अनाज खलिहान में है लेकिन दादा के बीमार हो जाने से उपज भी अच्छी नही हुई है। रूपये कहा से लाऊँ ?"[1]

अतः वह अन्त तक रूपये नहीं दे पाता और खेत चले जाने का गम उसे सालता रहता है, और वह बीमार हो जाता है तथा बीमारी की ही हालत मे प्राण त्याग देता है। अतः मुंशी प्रेमचनन्द जी ने अपनी अनेकों कहानियों में इस प्रकार का चित्रण करते हुये गरीबी और विवशता का इतने व्यापक और सुन्दर रूप से वर्णन किया है जिसको भुलाया नहीं जा सकता। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में नायक की विवशता के साथ ही साथ नायिकाओं की विवशता का भी बखूबी ढंग से चित्रण किया है। प्रेमचन्द ने ''विध्वंस'' कहानी में एक ऐसी ही नायिका का चित्रण करते हुये कहानी को उत्कृष्ट और उत्साहिक बनाया है। इस कहानी में बीरा नाम की एक गोड़िन रहती थी। वह वृद्ध तथा विधवा थी। उसका नाम भुनगी था। उसके जीवन का कोई सहारा नहीं था। सहारा है तो एकमात्र भाड़ ही उसका सहारा है। वर्षो से वह उदयभानु पाण्डेय की जमीन में छोटे से कोने में रहती थी। वह प्रातः उठती और चारों तरफ से भाड़ झोकने के लिये सूखी पत्तियाँ बीन लाती। दोपहर बाद भाड़ झोंकती और जो कुछ चवैना आदि मिलता उसी से निर्वाह कर उसी कोने में पड़ी रहती--

"लेकिन जब कभी पूर्णमासी या एकादशी के दिन प्रथानुसार भाड़ न चलता या गाँव के जमींदार के दाने भूनने पड़ते उसे उस दिन भूखा ही सोना पड़ता था"[2]

---

1. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 65

2. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 179

उदयभानु और उसके कारकुन बेगार लेना अपना अधिकार समझते थे। एक दिन उदयभानु के कारकुनों ने अति कर दी। भुनगी उबल पड़ी उसने क्रोध में भरकर कहा– "पण्डित जी कौन मेरी रोटियाँ चला देते है। कौन मेरे आँसू पोंछ देते हैं। अपना रक्त जलाती हूँ तब कही दाना मिलता है, लेकिन जब देखों तब खोपड़ी पर सवार रहते हैं, इसीलिये न क्योंकि उनकी चार अँगुल भर धरती से मेरा निस्तार हो रहा है।"[1] भुनगी के इस प्रकार से कहने पर उदयभानु के कारकुन उदयभानु से जाकर कहते है। यह सुनकर उदयभानु क्रोध में आगबबूला हो जाता है। इसके बाद कई दिनों तक भुनगी को भूखा रहना पड़ता है। इधर उदयभानु भुनगी का भाड़ भी खुदवा देता है, वह भाड़ दुबारा बनाती है तो गीले भाड़ में पैर से ठोकर मार देता है। जिससे उसके भाड़ की गीली मिट्टी बैठ जाती है। तथा वह पत्तियों के ढेर में आग लगवा देता है। इस कहानी का वर्णन करते हुये मुंशी प्रेमचन्द लिखते है कि–

"एक क्षण में हा–हाकार मच गया। ज्वाला शिखर आकाश से बाते करने लगा। उसकी लपटें किसी उन्मत्त की भाँति इधर–उधर दौड़ने लगी। सारे गाँव के लोग उस अग्नि पर्वत के चारों ओर जमा हो गये। भुनगी अपने भाड़ के पास उदासीन भाव से खड़ी यह लंकादहन देखती रही। अकस्मात् वह वेग से आकर उसी अग्निकुण्ड में कूद पड़ी। लोग चारों तरफ से दौड़े, लेकिन किसी की हिम्मत न पड़ी कि आग के मुँह में जाये। क्षण मात्र में उसका सूखा हुआ शरीर अग्नि में समाविष्ट हो गया।"[2] इस कहानी से हमें देखने को मिलता है कि अपमान का प्रतिकार और अत्याचार का प्रतिशोध कितना

---

1. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 180
2. मानसरोवर भाग आठ : मुंशी प्रेमचन्द, पृ0 183

भयानक होता है। कितना करूण, कठोर और अमानवीय होता है कि व्यक्ति व्यवस्था का जब कुछ नहीं कर सकता तो अपना विध्वंश कर लेता है। अत्याचारी और आर्थिक गरीबी के कारण निर्धन व्यक्ति इतना असहाय, और बेबस है कि उसे जीवन का विकल्प मृत्यु ही मिलता है। यह बात केवल भुनगी की ही नही, वरन भारत् की हर गरीब की यही कहानी है।

मुंशी प्रेमचन्द्र जी के समकालीन कहानीकार श्री जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी कहानी "बेड़ी"[1] में तो तत्कालीन अर्थव्यवस्था की शोषण मूलक प्रवृत्ति और गरीबी का और भी भयानक चित्रण प्रस्तुत किया है, कि पिता भीख मंगवाने के लिए पुत्र के पाँव में बेड़ी डालकर निश्चिन्त हो जाता है। पिता का तात्पर्य यह है कि अब वह भाग नहीं सकता, पर इसका अंजाम तो देखिए कि एक बार वह सड़क पार करते समय कार के नीचे आ जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। अतः उसे बेड़ी से मरकर ही मुक्ति मिलती है। इसके पहले नहीं। बताईये पिता ही पुत्र का किस प्रकार शोषण करता है। अर्थात् पिता पुत्र जैसे सम्बन्ध भी आर्थिक अभाव से विगड़ने लगते हैं। इस तरह गुलामी, दमन और शोषण में जीने वालों की नियति और क्या हो सकती है। मनुष्य मात्र धन के लिए क्या से क्या बन जाता है। अतः मुंशी प्रेमचन्द जी की ही कहानी को लीजिए-- "कफन"[2] कहानी में मुंशी जी ने शोषण मूलक विषमता पूर्ण अर्थ प्रणाली में सामान्य जनक की ओर कामचोर प्रवृत्ति का किस प्रकार वर्णन किया है। कहानी के आब्बारे कामचोर घीसू और माधौ उन किसानों की अपेक्षा अधिक दूरदर्शी थे। जो कि दिन रात कठोर परिश्रम

---

1. जयशंकर प्रसाद : पृ0 37
2. कफन : प्रेमचन्द, पृ0 7

करके भूखे व नंगे रहकर ऋण में दबे अपमानजनक जीवन जीते थे। इधर घीसू साठ साल तक के अनुभव में घिसकर अमानवीय हो गया। उसे आदर्शो मूल्यो, धर्म, लोक, परलोक और अमानवीय करूणा पर कोई विश्वास नहीं रह गया है, किन्तु माधौ में अभी भी प्रेम, विश्वास, धर्म और सामाजिक व्यवहार की साधुता जीवित है, पर परिस्थितियाँ और परिवेश उसे भी घीसू जैसा काहिल, मुफ्तखोर, चटोरा, स्वार्थी और कामचोर बना रहे हैं। ऐसी भयानक स्थिति को देखते हुये कहानीकार मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है कि

"जिस समाज में कठोर परिश्रम करने वाले भी भूखे मरते हैं और काम करने वाले भी, उस समाज में काम न करने की और शोषण करने की प्रवृत्ति होगी, इसमें क्या आश्चर्य है।"[1] मन्मथ नाथ ने प्रेमचन्द की इस कहानी की तुलना को स्पष्ट कर दिया है क्योकि उनके शब्दों के अनुसार ही कफन कहानी में बेचारी माधौ की स्त्री, मरने से पूर्व कुटाई, पिसाई, सब कुछ करती थी और अपनी मेहनत से इन दोनो बाप--बेटे का पेट भी भरती थी, परन्तु पति और ससुर पर उसकी श्रमशीलता का कोई फर्क नहीं पड़ता था। कारण कि पूरी आर्थिक व्यवस्था शोषण मूलक थी। माधौ की स्त्री प्रसव पीड़ा में अन्दर तड़फती है और बाहर दोनों बाप--बेटे अलाव के पास बैठे आलू निकाल कर जल्दी-जल्दी छीलते हुए खा रहे हैं। पिता पुत्र से अन्दर जाने को कहता है और पुत्र पिता से। परन्तु दोनों में से कोई भी अन्दर जाकर नहीं देखता। पत्नी की प्रसव पीड़ा के कारण चीखे निकलती हैं पर माधौ और घीसू दोनो बैठे सुन रहे है किसी पर भी उसकी चीखो की प्रतिक्रिया नहीं होती। दोनों आलू खाने में मस्त है, और अन्दर स्त्री प्राण त्याग देती है। गॉव के लोग उसके क्रियाकर्म के लिए जो पैसे देते हैं उन पैसो से वह दोनों पेट भर भोजन करने के बाद शराब पीते हैं। यह दुदर्शा स्त्री की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण

---

1. प्रेमचन्द व्यक्ति और साहित्यकार : मन्मथ नाथ गुप्त, पृ0 430

देश की भी है, जैसे– विदेशी सरकार जमींदार का शोषक, जमींदार किसान का, पूजीपति मजदूर का और पुरूष स्त्री का शोषक था। फिर घीसू और माधौ भी इस कठोर यथार्थ से अलग कैसे रहते। प्रेमचन्द की "कफन" कहानी का एक–एक शब्द ऐतिहासिकता को समेटे हुए हैं, उन्होंने लिखा है–

"कैसा बुरा रिवाज है, जिसको जीते जीतन ढकने को चिथड़े न मिले उसे मरने पर नया कफन चाहिए।"[1] किसी को अधिक कष्ट देना अच्छी बात नहीं। यह जानते हुए भी लोग उससे अच्छा व्यवहार नहीं करते, परन्तु गरीबों पर जब बहुत अधिक जुल्म होता है तो उसका अन्त तो निश्चित है ही साथ ही वह कभी--कभी सताने वालों को भी नहीं छोड़ता। किसी ने सच ही कहा है कि गरीबों को मत सताओ, गरीबों की बद्दुआ मत लो, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखने के लिए प्रेमचन्द की कहानी 'गरीब की हाय"[2] नामक कहानी में दर्शाया गया है कि गरीब के साथ विश्वासघात करने वाला आजन्म सुख नहीं पाता। इस कहानी में निर्धन और विधवा मूँगा की कुलपूँजी लेकर रामभरोसे मूँगा के साथ विश्वासघात करता है, बेचारी मूँगा बिबस और असहाय है। वह प्रतिशोध के लिए तड़फ रही है और अन्याय का प्रतिकार भी करना चाहती है किन्तु उसके पास इतनी शक्ति नहीं, वह पैसों के लिए पागल हो गई है। और हमेशा दिन रात गालियाँ बकती रहती है। मूँगा रामभरोसे के घर के बाहर धरना दे देती है। यह समाचार पूरे गॉव में फैल जाता है। लोग रामभरोसे के घर के बाहर मूँगा को देखने के लिए इकटठे हो जाते हैं और अच्छी खासी भीड़ लग जाती है मूँगा अत्यन्त दुर्बल, काली, और भयानक प्रतीत होती है; वह हमेशा रामभरोसे से यही कहती है कि "तेरा लहू पीऊँगी" और जोर से

---

1. कफन : प्रेमचन्द, पृ0 10

2. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 16

ठहाका लगाकर हँसती है उसकी हँसी बड़ी ही भयानक है उसकी हँसी सुनकर अच्छे--अच्छों का दिल डर से बैठ जाता है। फिर भला रामभरोसे का परिवार इससे कैसे अलग रहता। उसके परिवार के डरे हुए सदस्य घर के भीतर बैठकर उसे बाहर से इस बला को टालने की योजना बनाते हैं, और सोचते हैं कि इस आपत्ति से किस प्रकार छुटकारा पाया जाय। प्रेमचन्द ने तो यहाँ तक लिखा है कि --

"देवी आती है तो बकरे का खून पीकर चली जाती है; पर डायन तो मनुष्य का खून पीने आयी है। वह खून, जिसकी अगर एक बूंद भी कलम बनाने के समय निकल पड़ती थी, तो अठवारों और महीनों सारे कुनवों को अफसोस रहता और यह घटना गाँव के घर-घर फैल जाती थी। क्या यही लहू पीकर मूँगा का सूखा शरीर हरा हो जायेगा।"[1] मूँगा ने खाना पीना सब कुछ छोड़ दिया है। और वही पर पड़ी है। रामभरोसे का लड़का उसे हटाने के लिए गाय का गोबर घोलकर उस पर डाल देता है और कोई कुछ नहीं कहता। उलटे रामभरोसे अपने लड़के की पीठ ठोकता है क्योकि उसके दरवाजे से भीड़ छँट गई है। बेचारी मूँगा गोबर मे लथपथ वहीं पड़ी रही। दोपहर हुई, मूंगा ने कुछ नहीं खाया, साँझ हुई। हजार कहने सुनने से भी उसने कुछ नहीं खाया। गाँव के चौधरी ने बड़ी खुशामद की यहाँ तक कि मुंशी जी ने हाथ तक जोड़े। पर देवी प्रसन्न न हुई। निदान मुंशी जी उठकर भीतर चले गये। वह कहते थे रूठने वाले को भूख आप ही मना लेती है। मूँगा ने यह रात भी बिना दाना पानी के काट दी। लाला जी और लालाइन ने आज फिर जाग-जाग कर भोर कर दी। आज मूँगा की गरज और हँसी बहुत कम सुनाई पड़ती थी। घरबालों ने समझा बला टली। सबेरा होते ही दरवाजा

---

1. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 21

खोलकर देखा, तो वह अचेत पड़ी थी। मुँह पर मक्खियाँ भिनभिना रही है और उसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे। वह इस दरवाजे पर मरने ही आई थी जिसने उसके जीवन की जमा पूँजी हर ली थी, उसी को अपनी जान भी सौप दी। अपने शरीर की मिट्टी तक उसे भेंट कर दी।धन से मनुष्य को कितना प्रेम होता है। धन अपनी जान से भी ज्यादा प्यारा होता है। विशेषकर बुढ़ापे में। ऋण चुकाने के दिन ज्यों-ज्यों पास आते जाते है, त्यो--त्यों उसका ब्याज बढ़ता जाता है।"[1] मूँगा के मरने के बाद से मुशी जी के यहाँ कोई नहीं आता क्योकि ब्रम्ह्य हत्या गौहत्या से भी बढ़कर है। लोग उनसे दूर रहते है अब हर समय मूँगा की यादें उनका पीछा करती रहती है। अन्त में वे ---- "खाना खाकर तीनों आदमी सोने के कमरे में आये; परन्तु मूँगा ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा; बाते करते थे, दिल को बहलाते थे। नागिन ने राजा हरदौल और रानी सारन्धा की कहानियाँ कही। मुंशी जी ने फौजदारी के कई मुकद्दमों का हाल कह सुनाया। परन्तु तो भी इन उपायों से भी मूँगा की मूर्ति उनकी आँखों के सामने से न हटती थी। जरा भी खटखटाहट होती कि तीनों चौंक पड़ते। इधर पत्तियों में सनसनाहट हुई कि उधर तीनों के रोगटें खड़े हो गये ? रह-रहकर एक धीमी आवाज धरती के भीतर से उनके कानों में आती थी- "तेरा लहू पीऊँगी।"

आधी रात को नागिन नींद से चौंक पड़ी। वह इन दिनों गर्भवती थी। लाल-लाल आँखों वाली, तेज और नोकीले दातों वाली मूँगा उसकी छाती पर बैठी हुई जान पड़ती थी। नागिन चीख उठी। बावली की तरह आंगन में भाग आई और यकायक धरती पर चित्त गिर पड़ी। सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया। मुंशी जी भी उसकी चीख

---

1. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 22

सुनकर चौकें; पर डर के मारे ऑखे न खुली। अन्धों की तरह दरवाजा टटोलते रहे। बहुत देर के बाद उन्हें दरवाजा मिला। ऑगन मे आये। नागिन ऑगन में हाथ पॉव पटक रही थी उसे उठाकर भीतर लाये, पर रात भर उसने ऑखे न खोली। भोर को अकबक बकने लगी। थोड़ी देर में ज्वर हो आया। बदन लाल तबा सा हो गया। सॉझ होते--होते उसे सन्निपात हो गया और आधी रात के समय जब सन्नाटा छाया हुआ था नागिन इस संसार से चल बसी। मूँगा के डर ने उसकी जान ले ली। जब तक मूँगा जीती रही, वह नागिन की फुँफकार से सदा डरती रही। पगली होने पर भी उसने कभी नागिन का सामना नहीं किया, पर अपनी जान देकर आज उसने नागिन की जान ले ली। अतः भय मे बड़ी शक्ति है। मनुष्य हवा में एक गिरह भी नहीं लगा सकता, पर इसने हवा मे एक संसार रच डाला है।''[1]

जब कोई गरीब, बेवस और असहाय अपनी शक्ति से लाचार हो जाती है और अपनी सम्पत्ति रखने वाले का कुछ नहीं बिगाड़ सकती, तो उसकी बद्‌दुआये किसी का यहाॅ तक अनिष्ट कर डालती है कि वह मरकर अपना बदला प्रेत बनकर सम्पत्ति रखने वाले का सर्वनाश कर डालती है जैसा कि मूँगा ने किया।

वास्तव में जमींदार, महाजन, सेठ, साहूकार आदि किसानो तथा श्रमिकों का अत्यधिक शोषण करते हैं। जबकि सिंचाई के लिये किसानो को वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है। और खेती में खाद तथा बीज के लिये, सेठ से पैसे के लिये इतने पर भी अनावृष्टि के कारण खेत सूखे पड़े रहते थे। बीज और खाद के लिये सेठ साहूकारों से

---

1. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 25

लिया गया ऋण भी व्यर्थ हो जाता था। आर्थिक शोषण के कारण "शस्य श्यामला" धरती के बेटे भयंकर अकालों और निरन्तर भुखमरी के कारण मुक्त भी न हो सके। तत्कालीन कहानीकारों ने सामयिक कृषक जीवन के बहुत से पहलुओं को कहानी मे उतारा है। सम्राट मुंशी प्रेमचन्द तो इस जीवन को निकट रूप से देख चुके थ भोग चुके थे।

किसान और मजदूर की पीड़ा, चेतना, सम्वेदना, क्षोभ, विद्रोह, आशा, निराशा, त्याग, उत्सर्ग और संहिष्णुता को मुशी जी से ईमानदार एव गाढ़ी सम्वेदना मिली, वर्षा न होने पर किसान की दुर्मिक्ष जैसी स्थिति हो जाती है। "खून सफेद"[1] नामक कहानी में मुंशी जी ने इसी बात का वर्णन करते हुये लिखा है कि– "सारा चौमासा बीत गया पानी की एक बूँद न गिरी। जेठ में एक बार मूसलाधार वर्षा हुई थी। किसान फूले न समायें, खरीफ की फसल बो दी, लेकिन इन्द्रदेव ने अपना सर्वस्व एक बार में ही लुटा दिया। पौधे उगे, बढ़े और फिर सूख गये। गोचर भूमि मे न जमीं। बादल आते घटाये उमड़ती, ऐसा मालूम होता कि जल थल एक हो जायेगा। परन्तु वे आशा की नही दुख की घटायें थी। किसानों ने बहुतेरे जप–तप किये, ईट और पत्थर देवी--दवताओं के नाम से पुजाये, बलिदान किये, पानी की अभिलाषा में रक्त के पनाले बह गये, लेकिन इन्द्रदेव किसी तरह न पसीजे। न खेतों में पौधे थे, न गोचरों में घास, न तालाबों में पानी, बड़ी मुसीबत का सामना था। जिधर देखिये धूल उड़ रही थी। दरिद्रता और क्षुधा पीड़ा के दारूण दृश्य दिखाई देते थे।"[2]

किसानों के पास इतना अनाज भी न होता था, कि अतिवृष्टि या अनावृष्टि के समय कुछ दिन पेट भर सकें। भुखमरी और गरीबी भारत के 'अन्नदाता' की नियति

---

1. मानसरोबर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 5
2. वही पृ0 5

बन गई थी। वह अपना प्रत्येक सपना मिट्टी मे उपजाते और मिट्टी में समाते जीवन भर देखता रहता था। पैदावार हो जाती तो दिन मजे से कटते और न होती तो भूखों मरने की नौबत आ जाती। बच्चों का पेट भरना मुश्किल हो जाता, पानी गले के नीचे न उतरता था, सारे जेवरात, गहने, बर्तन, भाड़े, बेचने के बाद भी नौबत यहाँ तक आ जाती, कि किसान घर छोड़कर मजदूरी के लिये शहरों मे भटकने लगे, इसी कहानी का एक और दारूण क्षुब्ध दृश्य को मुंशी जी ने इस प्रकार से दर्शाया है--

"वैशाख की जलती धूप थी। आग के झोखे हरहराते हुये चल रहे थे। ऐसे समय में हडिडयों के अनगिनत ढॉचे जिनके शरीर पर किसी प्रकार का कपड़ा न था, मिट्टी खोदने में लगे थे। मानों वह मरघट भूमि थी जहा मुर्दे अपनी कर्बे खोद रहे थे। वे बूढ़े और जवान, मर्द और बच्चे, सबके सब ऐसे निराश और विवश होकर काम में लगे हुये थे। मानों मृत्यु और भूख उनके सामने बैठी घूर रही है।"[1] ऐसी स्थिति मे पैसे कहाँ से आते ? दवा--दारू, जीना, मरना भाग्य और भगवान की इच्छा थी। "अमावस्या की रात्रि" कहानी में गिरजा दवा के अभाव में मर गई। "पूस की रात"[2] कहानी भारतीय अर्थव्यवस्था और उसके कारण किसान के जीवन पर छाये अवसाद पीड़ा और निराशा का चित्र प्रस्तुत करती है कि हल्कू सर्दी--गर्मी में कठोर परिश्रम करता है, फिर भी वह अपनी आय से लगान भी चुकता नहीं कर पाता। बड़ा हिस्सा फसल का साहूकार ले लेता है। पेट भरने के लिये मजदूरी करनी पड़ती है। फिर भी सर्दी में सिकुड़ता फिरता है कैसी विवशता है। कम्बल के लिये जुड़े पैसे जब साहूकार को देने पड़ते है तो हल्कू की स्त्री

---

1. मानसरोवर भाग आठ, प्रेमचन्द, पृ0 7

2. आधुनिक कहानियाँ, सं0 भगवतस्वरूप मिश्र, पृ0 81

मुन्नी कहती है-- "मैं कहती हूँ तुम खेती क्यों नहीं छोड़ देते ? उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुटटी हुई। बाकी चुकाने के लिये ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिये मजदूरी करो ऐसी खेती से बाज आये। मै रूपये न दूँगी--न दूँगी।"[1] हल्कू उदास हो जाता है और अपनी स्त्री से रूपये लेकर साहूकार को देने बाहर जाता है उसकी इस प्रकार की दीन-दशा का चित्र मुंशी जी ने बड़ी ही बखूबी से दर्शाया है-- "हल्कू ने रूपये लिये और इस तरह बाहर चला, मानों अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काटकर तीन रूपये कम्बल के लिये जमा किये थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।"[2] बाद में जब हल्कू पूस की रात्रि में खेत की रखवाली करता है तो शीत उसे निष्पंद बना देता है खेत चरे जाने की आहट पाकर भी वह नहीं उठता। फसल बर्बाद हो जाने पर भी वह आश्वस्त हो जाता है, कि ठन्डी रातो में उसे वहा सोना नही पड़ेगा। कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने इसके अलावा आपसी फूट और द्वेष का विध्वंसक रूप भी अनेक कहानियों में दिखाया है जैसा कि कहानी "मुक्ति मार्ग"[3] मे देखा जा सकता है। झीगुंर और बुद्धू का वैमनस्य पूरे गांव को विपत्ति में डाल देता है। बुद्धू बदले के लिये झीगुर के खेत में आग लगा देता है और गांव की ऊँख जलकर राख हो भस्म हो जाती है। प्रेमचन्द जी कहते है- "केले का काटना भी इतना आसान नहीं जितना किसान से बदला लेना। उसकी तो सारी कमाई खेतों में रहती है या खलिहानों मे।"[4] ऐसी स्थिति मे छुटकारा पाने के लिये लोग गांव छोड़कर शहरो की ओर भागते है, इसी संदर्भ में एम0एन0 श्रीवास्तव

---

1. आधुनिक कहानियॉं, सं0 भगवतस्वरूप मिश्र, पृ0 82
2. वही पृ0 82
3. मानसरोवर भाग तीन, प्रेमचन्द, पृ0 233
4. वही पृ0 235

जी लिखते है– "पिछले पचास वर्षो में सचार साधनों में सुधार के कारण भी स्थानीय जीवन शैलियों की प्रतिष्ठा कम हुई है। देहाती नेताओं में कम से कम उनके बेटो में प्रतिष्ठित शहरी जीवन पद्धतियों को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ी है।"[1] इस प्रवृत्ति का प्रभाव गाव के शिक्षित जमींदारों पर भी पड़ा। वे गाव छोड़कर शहरों में रहने लगे, और लगान वसूली का पूरा काम कारिन्दों को मिल गया।

यह नये कारिन्दे हाकिम बनकर के निरीह, निर्बल, निर्धन किसानों पर मनमानी और अत्याचार करने लगे। जैसा कि "उपदेश"[2] कहानी मे देखने को मिलता है इस कहानी में देवरत्न शर्मा शहर में रहता है। अपने किसी भी आसामी से उसका कोई परिचय नही है। शहर में प्लेग फैलने के कारण वह गांव जाता है तब उसे मालूम होता है, कि उनके कारिन्दे किस प्रकार पुलिस के साथ मिलकर गरीब आसमियों का गला दबाते हैं। और वह गरीब असहाय, बेचारे किस प्रकार उनके कारिन्दों का शिकार होते है। प्रसिद्ध कहानीकार जैनेन्द्र की कहानी "चोरी"[3] में महाजन की मनमानी और धन लोलुपता की क्रूरता का चित्रण मिलता है। लेखू ने कभी महाजन से बीज के लिये एक सेर आलू लिये थे। उसने फसल आने पर कुछ आलू और गल्ला महाजन को भिजवा दिया था। फिर भी वह तीन साल बाद 50/– रू0 का कर्ज बन गया। चोरी उसके परिवार के भूखे पेट की विवशता थी। महाजन ने पैसे की शक्ति से पुलिस की सहायता ली। लेखू को जेल भिजवा दिया और उसकी बूढ़ी माँ, विधवा भाभी और बच्चों को बेघर कर दिया। झोपड़ी की नीलामी करवा के पैसा वसूल लिया। इस कहानी में लेखक का व्यंग्य बड़ा ही पैना पड़ा है।

---

1. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, एम0एन0 श्रीवास्तव, पृ0 27
2. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 276
3. जैनेन्द्र की कहानियाँ, भाग 6, जैनेन्द्र, पृ0 152

अतः इस प्रकार की अनेकों ऐसी कहानियाँ है जिनमें महाजन, जमीदार, और कारिन्दे आदि अपने--अपने ढंग से इन गरीबों का किस प्रकार से खून निचोड़ते है।" "लोक सम्मान"[1] का बेचू धोबी कारिन्दों और चपरासियों से तंग आकर गाँव छोड़ देता है। सबसे दारुण कथा तो "सवा सेर गेहूँ" नामक कहानी की है। कहाँ जाता है कि यह सच्ची कहानी है। सवासेर गेहूँ के बदले कई सेर गेहूँ खाने के बाद भी साहूकार का गेहूँ 5 सालों में 60/- रू0 का हो जाता है। साहूकार उसके बदले नायक के खून के एक-एक कतरे का मालिक बन जाता है। गाँव के साहूकार के ऋण मे ही किसान का जन्म होता है। ऋण में ही जीता है, और ऋण मे जीवन ढोता हुआ ऋण की विरासत अपनी सन्तान को देकर मर जाता है।

पूँजीवादी आर्थिक संघर्ष ने सरकार और जमीदार के दो पाटों के बीच किसान को बुरी तरह पीसा। रही सही कमी साहूकार ने पूरी कर दी। गेहूँ की कमी बढ़ी तो लगान में भी वृद्धि कर दी गई, आर्थिक मन्दी के समय बढ़ा हुआ लगान, उनकी झोपड़ी, बर्तन तथा पशुओं को बेचकर पूरा किया गया जो नृशंस अत्याचार सरकार के लिये जमीदारों और पुलिस ने किया उनका एक चित्र प्रेमचन्द की कहानी 'जेल'[2] में मिलता है। मृदुला कहती है--

"देहातों में आजकल संगीनों की नोक पर लगान किया जाता है। किसानो के पास रूपये तो है नहीं, दे तो वह कहाँ से दें। अनाज का भाव दिन व दिन गिरता जा रहा है।...... अधिकारियों को अपनी कारगुजारी दिखाने की पड़ी है। वह चाहे

---

1. मानसरोवर भाग सात, प्रेमचन्द, पृ0 280
2. मानसरोवर भाग सात, प्रेमचन्द, पृ0 8

प्रजा को चक्की पीस ही क्यों न डाले ......इन छोटे--छोटे आदमियो को इसीलिए तो इतने अधिकार दिये गये हैं, कि उनका दुरूपयोग करें। आधे गॉव का कत्ल कर पुलिस नगाड़े बजाती हुई लौट गई।''[1] अपने ही देशवासियों का रक्त निचोड़ने मे देशी पुलिस अधिकारी और जमीदार बढ़ चढ़कर अत्याचार करते थे और अपना स्वार्थ पूरा करते थे। अतः किसान को खेती के अभाव में मजदूरी करना जोखिम का काम था। प्रेमचन्द की कहानी ''बलिदान'' में गिरधारी के खेत भी जमींदार ने छीन लिए क्षोभ, अपमान और विवशता के कारण उसने आत्महत्या कर ली। भूख और बेकारी की विवशता में उसका लड़का मजदूरी करने लगा। अच्छा खाना, कपड़ा, परिवार को मिलने लगा किन्तु समाज की दृष्टि मे बह गिर गया--

''गॉव में उसका कुछ भी आदर नहीं, वह अब मजूरा है, सुभागी अब पराये गॉव में आये हुए कुत्ते की भॉति दुबकती फिरती है वह अब मजूरा की मॉ है।''[2] इससे गांव मे सामाजिक जीवन में नवनिर्माण या परिवर्तन की सम्भावना और भी कम हो जाती है। पहाड़ी की कहानी ''सभ्यता की ओर''[3] में इस समस्या का अंकन हुआ है, और भविष्य में शहरीकरण से ग्रामीण जीवन की हानि से राष्ट्रव्यापी समस्या की ओर इंगित किया गया है।

पूँजीपति की समस्या धन से धन पैदा करने की है। इस वर्ग को ऊँची महत्वाकांक्षाओं के कारण आर्थिक तनाव में घोर मानसिक क्लेश और सामाजिक परिवेश की यातनाओं से गुजरना पड़ता था। आय बढ़ाने के लिए यह वर्ग भ्रष्टाचार भी अपनाता

---

1. मानसरोवर भाग सात, प्रेमचन्द, पृ0 8
2. मानसरोवर भाग आठ, प्रेमचन्द पृ0 71
3. सड़क पर : पहाड़ी, पृ0 77

था। रिश्वत देना, रिश्वत लेना, सरकारी वस्तुओ की चोरी और काले बाजार का धन्धा भी करने लगता था। प्रेमचन्द की कहानी "सज्जनता का दण्ड"[1] मे एक सरकारी अफसर को भ्रष्ट होते देखा जा सकता है। मध्यम वर्ग में कुठायें भी अधिक है। अतः बाहरी दिखावे में वह अपनी पूरी शक्ति लगा देता है।

यशपाल की कहानी "चार आने"[2] मे यह स्थिति देखी जा सकती है। इस वर्ग का अपना कोई संगठन नहीं है। यह सदैव आर्थिक सामाजिक असुरक्षा की स्थिति भोगता है। आधुनिक सांस्कृतिक और सभ्यता के निर्माण में इस संघर्ष की सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका रहीं है। प्रेमचन्द की कहानी "उपदेश"[3] "विषम समस्या"[4] और "झूठ"[5] में मध्य वर्ग की यह मनोवृत्ति चित्रित हुई है कि नारी सम्बन्धी समस्याये इस वर्ग में अपेक्षाकृत अधिक रहीं है। यशपाल की कहानी "रोटी का मोल"[6] में व्यापारी वर्ग का अत्यधिक सम्पन्नता, जमाखोरी, मुनाफाखोरी का प्रभाव सामान्य वर्ग पर कितना भयानक होता है। यशपाल की कहानी "अभिशप्त"[7] में गरीबी और भूख और त्रासदी का चित्रण हुआ है। बड़ा बच्चा अपने नवजात भाई का इसलिए गला दबा देता है, क्योकि उसकी माँ आटे का घोल उसे पिला देती है। लेखक मानवीय नैतिकता अनैतिकता का मानदण्ड अर्थतत्व को मानता है। उपेन्द्र

---

1. मानसरोवर भाग सात : प्रेमचन्द, पृ0 5
2. अभिशप्त : यशपाल, पृ0 66
3. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 281
4. वही, पृ0 238
5. वही, पृ0 118
6. अभिशप्त : यशपाल, पृ0 47
7. वही, पृ0 22

नाथ अश्क की कहानी "दो आने की मिठाई"[1] में भी पूँजीवादी मनोवृत्ति का चित्रण है। धनवान मालिक अपने गरीब नौकर पर अत्याचार करना ही अपना अधिकार मानता है और नौकर केवल सहने के लिए अभिशप्त है। "नमक हलाल"[2] कहानी में नौकर और मालिक होने की मनोवृत्ति पर गहरा व्यंग्य है। इस कहानी में भदई की स्वामि-भक्ति का उसके मालिक को भरपूर फायदा होता है। वह मालिक के अपराध को अपने सर लेकर भदई फाँसी पर भी लटकने को तैयार है। पहाड़ी की कहानी "सड़क पर"[3] में श्रमिकों की समस्याओं आवास, भोजन और अशिक्षा के कारण अन्धविश्वासों आदि का चित्रण हुआ है। रागेय राघव की कहानी "आवाज घुटने लगी"[4] में पूँजीपति वर्ग द्वारा शोषण श्रमिक की दुर्दशा और विवशता की कटु अभिव्यक्ति हुई है लेखक का कथन है--

"कितना विकृत हो गया है यह जीवन। पहाड़ी, पहाड़ी मजबूरियो और गरीबी के बीच में घिरकर आज बुद्धि, ईमान, सुध और सन्तोष सब भीच दिये गये है। पहले अंग्रेज इसे सैण्डबिच पुकार कर खाता था। अब देशी सेठ इसे भाग्य का जोर कहकर कचर--कचर चबाकर खाता है।"[5] इसी लेखक की कहानी "यह ग्वालियर है"[6] मे श्रमिक वर्ग का आक्रोश और विद्रोह अभिव्यक्त हुआ है।

इन कहानियों पर रूसी, समाजवादी विचारधारा का प्रभाव व्यापक और

---

1. बैंगन का पौधा : उपेन्द्र नाथ अश्क, पृ0 110
2. अभिशप्त : यशपाल, पृ0 112
3. सड़कपर : पहाड़ी, पृ0 108
4. इंसान जब पैदा हुआ : रांगेय राघव, पृ0 38
5. वही, पृ0 42
6. वही, पृ0 130

गहरा है। रांगेय राधव "मेहनतकशों के राज" का खुला समर्थन करते हैं। प्रेमचन्द की कहानी में "पशु से मनुष्य"[1] में भी समाजवादी, आर्थिक सघर्ष का समर्थन खुले शब्दों में हुआ है। प्रेमचन्द की "चकमा"[2] और "नमक का दरोगा"[3] और यशपाल की "रोटी का मोल" आदि कहानियों में व्यापारी वर्ग की लोभी, स्वार्थ और समाज दुश्मन अमानवीय मनोवृत्ति का परिचय मिलता है। प्रेमचन्द जी हृदय परिवर्तन करके उसे मानवीय बनाते है, किन्तु यशपाल उसकी जड़ पर प्रहार करते हैं।

विवेच्यकाल की कहानी में भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की समस्याओं और स्थितियों का प्रेमचन्द के पारवर्ती कहानी साहित्य में व्यापक चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द की प्रगतिशील परम्परा ने अनेक युवाकारों और लेखको को सर्वहारा वर्ग के आर्थिक भारतीय जीवन के यथार्थ से जोड़ दिया। आर्थिक संघर्ष के कारण, वर्ग संघर्ष, किसानो मजदूरों का अर्थव्यवस्था के प्रति आक्रोश और विरोध मध्यवर्ग की आर्थिक समस्यायें, पूँजीपति वर्ग की एकाधिकार की मनोवृत्ति, गाँधी दर्शन तथा राजनैतिक आन्दोलनो का आर्थिक जीवन पर प्रभाव और पचास--पचास हजार के अस्वाभाविक अन्तर का द्वन्द्व आदि अनेक कहानियों में विविध अर्थच्छवियों में चित्रित हुई है।

आर्थिक विषमता की समस्यायें विशेष रूप से सर्वहारा वर्ग के जीवन की यातनाओं के सन्दर्भ में आर्थिक सघर्ष प्रतिफलित हुआ है। ऊषा देवी मित्रा की कहानी "समझौता"[4] में कुसुम शिक्षित नारी है। ग्रामीण जमीदार के घर में उसे वहाँ की संस्कृति

---

1. मानसरोवर, भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 115
2. मानसरोवर, भाग छः, प्रेमचन्द पृ0 220
3. मानसरोवर, भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 276
4. प्रतिनिधि कहानियाँ : सं0 पहाड़ी, पृ0 270

से घृणा होती है। दया, करूणा एव सहृदयता वह नही जानती, किन्तु अन्ततः हृदय परिवर्तन होता है और वह बद्धमूल भारतीय नारी के आदर्श मे लौट आती है, किन्तु उपेन्द्र नाथ अश्क की कहानी "पाप का आरम्भ"[1] तक आते–आते दाम्पत्य सम्बन्ध पूर्णतः टूटने और स्वतन्त्र वरण की स्थिति में आ गये हैं, अब समझौता, सन्तुलन अथवा समन्वय की कोई गुंजायश शेष नहीं रही। स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय जीवन मे जो गतिशीलता आई उसका प्रमुख कारण भारतीय संस्कृति पर शासक वर्ग की स्थिति का सघात था।

पं0 जवाहरलाल नेहरू के शब्दो में "हिन्दुस्तान पर पशिचमी सस्कृति का आघात एक गतिशील समाज और आधुनिक चेतना का एक ऐसे गतिहीन समाज पर आघात था जो मध्यकालीन विचारधारा में बँधा हुआ था।"[2] एक ओर निर्धन किसान इतना असहाय है, कि अपने अपमान और जमींदार के अत्याचार का प्रतिकार भरकर प्रेत बनकर ही करता है। प्रेमचन्द्र की कहानी "जूलूस" मे दरोगा बीरबल एक ऐसा ही पात्र है। वह अपने डी0एस0पी0 पर अपना प्रभाव बनाने के लिये स्वराज्यीयों को घोड़ों से कुचलवा देता है। उसकी अमानवीय क्रूरता साम्राज्यवादी शासन की भक्ति और अपने स्वार्थ की परिचायक है। प्रेमचन्द जी लिखते है–

"उसने डी0एस0पी0 को घोड़े से आते देखा। अब सोच का समय नही था। यही मौका था कारगुजारी दिखाने का। उसने कमर से बेटन निकाल लिया, और घोड़े को ऐड़ लगाकर जूलूस पर चढ़ाने लगा। उसको देखते ही अन्य सवारो ने भी घोड़ो को

---

1. बैंगन का पौधा : स0 उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ0 38
2. हिन्दुस्तान की कहानी : पं0 जवाहरलाल नेहरू, पृ0 357

जूलूस पर चढ़ाना आरम्भ कर दिया।"[1] जिनके पास न रिश्वत देने के लिये धन है, न प्रतिशोध लेने का बल। वे मान--अपमान की बात तो सोच भी नहीं सकते। यदि कुछ सोच पाते हैं तो केवल रोटी के लिये। मेहनतकश मजदूर की मनोवृत्ति मजदूरी पाने की नही, बख्शीश मॉगने की है। रांगेय राघव की कहानी "इन्सान' में एक पात्र कहता है--

"हर शहर में उन्होने यही देखा, यहॉ हिन्दुस्तानी परिश्रम करके भी अपने को वेतन का हकदार नहीं समझता। जो मॉगता है वही साव :बख्शीश साब' बख्शीश।"[2]

प्रेमचन्द्र ने "नमक का दरोगा" कहानी में वंशीधर अपने सिद्धान्तों और दृढ़ चरित्रों के विश्वास से रिश्वत नहीं लेता और अलोपीदीन को नमक का काला धन्धा करते हुये पकड़ लेता है, किन्तु अलोपीदीन धन, वकीलो और गवाहों के बल पर मुकद्‌दमा जीत लेता है। न्याय का फैसला था। "यह बड़े खेद की बात है कि उनकी उद्‌दण्डता के कारण एक भले मानुष को कष्ट झेलना पड़ा।"[3] वशीधर मुअत्तल हो गया और अपने धन्धे में अलोपीदीन ने उसे अपना मैनेजर बना लिया। यशपाल अपनी कहानियो मे आर्थिक चित्रण प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानी "नमक हलाल"[4] मे जहॉ परिवेश और परिस्थितियो का चित्रण है, वहॉ रचनात्मक चेतना का ऊष्मस्पन्दन भी है। इस कहानी से राजा या सामन्त कहे जाने वाले लोगों के चरित्र का परिचय मिलता है। व्यवस्था में भ्रष्टाचार इतना, कि, धन के बल पर यह लोग अपहरण, बलात्कार और हत्या जैसे अपराधों से भी मुक्त हो

---

1. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 51
2. इन्सान जब पैदा हुआ : रागेय राघव, पृ0 11
3. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 276-277
4. अभिशप्त : यशपाल, पृ0 112

जाते थे। निम्नवर्ग के आश्रितों और नौकरों के धार्मिक, अन्धविश्वासों, सादगी और ईमानदार स्वामिभक्ति का भरपूर फायदा उठाया करते थे। इस प्रकार की स्थिति का चित्रण यशपाल की "नमक हलाल" नामक कहानी में हुआ है। "भदई चौकीदार ने बंजारन नासिया का अपहरण अपने स्वामी के लिये किया। उसे तो स्वामी का नमक हलाल करना था, हत्या या झूठा आरोप भी अपने सिर ले लिया, फाँसी की सजा पाई।" रामजी की यही इच्छा थी" ऐसा उसका विश्वास था।"[1] मरने से पहले अपने पुत्र को भी नमक हलाली का पाठ पढ़ा गया। यशपाल की कहानी "काला आदमी"[2] में सघर्ष व्यक्ति स्तर पर अभिव्यक्त हुआ है।

प्रेमचन्द्र की कहानी "मृतक भोज"[3] की विधवा की आर्थिक नैतिक सीमाओं और समाज में पुरूष वर्ग की स्वच्छन्दता का क्रूरतम अन्तर्विरोध चित्रित हुआ है। प्रौढ़ सेठ झाबरमल कोठरी का किराया न दे पाने की स्थिति में विधवा नायिका की बेटी खेती जिसकी आयु ग्यारह वर्ष है– को माँगने में भी संकोच नहीं करता। सुशीला समाज के अत्याचारों का बोझ ढोते–ढोते मर गई। रेवती ने गंगा की गोद में शरण लेकर समाज से मुक्ति पाई।

ग्रामीण जीवन में पति–पत्नी रूप मे स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों के सन्दर्भ में सामान्यतः पत्नी सहनशीलता, त्यागमयी, कठोर परिश्रमी, और सदगृहणी है। छोटे–छोटे झगड़े पैदा होते है और सुखद घटना पर समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार दाम्पत्य जीवन कहानी में सामान्यतः मिलता है, किन्तु कई कहानियो में ग्रामीण दम्पति के बीच गहरा वैषम्य

---

1. अभिशप्त : यशपाल पृ0 34
2. अभिशप्त : यशपाल, पृ0 36
3. मानसरोवर भाग आठ · प्रेमचन्द, पृ0 4

भी है। दूसरे विवाह की पत्नी पति की कम आय और पत्नी का चटोरा स्वभाव और आभूषण-- प्रेम सम्बन्धों में कटुता का कारण बना है। प्रेमचन्द की कहानी ''दफ्तरी'[1] मे यह स्थिति देखी जा सकती है। दूसरे विवाह की पत्नी से निर्बाह करने वाला दफ्तरी ''गृहदाह में जलने वाला वीर रणक्षेत्र में लड़ने वाले वीरो जैसा महत्वपूर्ण हो गया है।

''गृहदाह''[2] में दूसरे विवाह की पत्नी का विमाता के रूप में भयानक रूप अंकित हुआ है। विमाता की स्वार्थपरता, घृणा, ईर्ष्या और अज्ञानता समूचे पारिवारिक जीवन के लिये अभिशाप बन जाती है। परस्पर विश्वास का अभाव अपने प्रति पत्नी अथवा पति की हीनभावना भी सम्बन्धों में द्वन्द का कारण बनती है, और दाम्पत्य जीवन विंश्रखलित हो जाता है। प्रेमचन्द्र की ही कहानी ''सती''[3] मे इस समस्या का दु खद अन्त पति की मृत्यु के रूप मे हुआ है। अत पत्नी वैधव्य और सतीत्व से लदा बोझिल जीवन जीने को अभिशप्त है।

अतः मार्कण्डेय, अज्ञेय, यशपाल, जैनेन्द्र, नन्द दुलारे, बाजपेई, उपेन्द्रनाथ अश्क, रांगेय राघव, भगवत्स्वरूप मिश्र व अमृतराय जैसे कहानीकारो ने भारत के आर्थिक शोषण व आर्थिक संघर्ष को अपनी-अपनी कहानियों मे भली-भांति चित्रित किया है। स्वतंत्रता के पूर्व भारत के आर्थिक शोषण और आर्थिक उत्पीड़न की वेदना को कलम के मसीहा मुंशी प्रेमचन्द जी ने अधिक गहरी सम्बेदना से समझा है। प्रेमचन्द की कहानिया पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि भारत की आर्थिक दुर्दशा का साहित्यक दस्तावेज उनकी कहानियों में अंकित सा हो गया है।

---

1. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 176
2. नारी जीवन की कहानियॉ : प्रेमचन्द, पृ0 152
3. वही पृ0 222

अध्याय तृतीय (अ)

स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक नियोजन और जनता के आर्थिक उत्थान पर इसका प्रभाव

स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक नियोजन और जनता के आर्थिक उत्थान पर इसका प्रभाव

स्वतन्त्रता के पश्चात् नवोदित स्वतन्त्र भारत के सामने आर्थिक पिछड़ापन भयानक चुनौती थी। विदेशी शासन से स्वतन्त्रता प्राप्त करके इसकी सुरक्षा और सुदृढ़ता के लिए राष्ट्रीय स्तर पर, आर्थिक मोर्चों पर भी सामरिक स्तर के संघर्ष की भी आवश्यकता थी। के0ए0एन0 शास्त्री लिखते हैं कि -- "सत्ता के हस्तान्तरण के पश्चात् भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विश्वास था कि देश की गरीबी ब्रिटिश शासन के कारण थी और देश स्वतन्त्र होकर शीघ्रता से इससे मुक्त हो जायेगा।"[1]

आर्थिक दृष्टि से भारत के प्राकृतिक साधनों का शोषण ही ब्रिटिश शासन का उद्देश्य था। जो भी उद्योग धन्धे रेलें आदि ब्रिटिश शासन काल में बनी हैं। उनके निर्माण का उद्देश्य भी इंग्लैण्ड का आर्थिक लाभ ही था।डा.उमाकान्त का मत है कि-- आर्थिक दृष्टि से भी अंग्रेजों की नीति भारत के लिए अहित कर थी। यहाँ से कच्चा माल बाहर जाता था और वहां से पक्के माल की खपत भारत में होती थी। देश का धन निरन्तर बाहर जाने से देश निर्धन हो गया। यहाँ उद्योग धन्धे के बिकास की ओर सरकार का ध्यान नहीं गया। ऊपर से एक पर एक पड़ने वाले दुर्भिक्षों ने तो देशवासियों की कमर ही तोड़ दी।"[2]

भारत ने 1 अप्रैल 1951 को आर्थिक नियोजन के युग में प्रवेश किया, और 31 मार्च, 1998 को 47 वर्ष पूरे कर लिए हैं। आर्थिक नियोजन का मुख्य लक्ष्य उत्पादन में वृद्धि कर रहन–सहन के स्तर को बढ़ाना तथा देश को आत्म निर्भर होना है। साथ ही बेरोजगारी तथा निर्धनता जैसी मौलिक एवं आधारभूत समस्याओं का अन्त करना है।

---

1. इण्डिया ऐ स्टोरिकल सर्वे: के0ए0 नीलकान्त शास्त्री जी, निवासाचारी, पृ0 155
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं0 डा0 नगेन्द्र, पृ0 157

आस्कर लांगे के शब्दों में-- आज अनेक अल्प विकसित देश विश्वास करते हैं कि उनके पिछड़ेपन का एक मात्र समाधान आर्थिक नियोजन है।" रोबिन्स ने आर्थिक नियोजन के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है-- "नियोजन हमारे युग की रामबाण औषधि है। इन कथनों से स्पष्ट है कि आधुनिक युग में आर्थिक नियोजन को शीघ्र विकास का साधन माना जाता है और वे सभी राष्ट्र जो विकास की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, आर्थिक नियोजन का सहारा विकास की गति को तीव्र करने के लिए लेते हैं। आर्थिक विकास का उद्‌देश्य उन सभी चरों को क्रियाशील बनाना है जो आर्थिक विकास की गति को तेज करने में सहायक होते हैं। आर्थिक विकास की गति को तेजकर अल्पविकसित देश स्वयं संचालित विकास की स्थिति को शीघ्र से शीघ्र प्राप्त करना चाहते हैं। इस स्थिति पर पहुंचकर देश आत्म निर्भर हो जाता है। आत्म निर्भरता अपने आप में पर्याप्त लक्ष्य नहीं है। भारत जैसे जनतान्त्रिक देश स्वभाव से लोक कल्याणकारी राज्य होते हैं। इनका एक महत्वपूर्ण कारण धन और आय के वितरण में विषमता है। इसलिये आर्थिक उद्‌देश्यों के अतिरिक्त आय और धन के वितरण की विषमता को दूर करना आर्थिक नियोजन का महत्वपूर्ण लक्ष्य है।

आर्थिक विकास, आत्म निर्भरता, रोजगार एवं असमानताओं तथा निर्धनता में कमीं। ये सभी उद्‌देश्य आपस में एक दूसरे से जुड़े हुये हैं। पहली योजना के अनुसार-- "अधिकतम् उत्पादन, पूर्ण, रोजगार, आर्थिक समानता व सामाजिक न्याय की प्राप्ति, जो वर्तमान दिशाओं में नियोजन के स्वीकृत उद्‌देश्य है, एक दूसरे से पृथक विचार नहीं है बल्कि परस्पर सम्बद्ध उद्‌देश्य हैं। इस प्रकार से छठी योजना में कहा गया है, -- "सामान्य रूप से भारत में योजना के मूल उद्‌देश्यों को चार शीर्षो में रखा जा सकता है; संवृद्धि, आधुनिकीकरण, आत्म-निर्भरता और सामाजिक न्याय।"[1]

---

1. छठी योजना (1980--85)

सातवीं योजना के लक्ष्यों को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि-- सातवीं पंचवर्षीय योजना के मार्गदर्शी सिद्धान्तों में विकास समानता व सामाजिक न्याय, आत्म निर्भरता, उन्नत कार्य कुशलता और उत्पादकता को जारी रखना है।"[1]

भारत जैसे सभी अल्पविकसित देशों के लिये आर्थिक दृष्टि से आर्थिक विकास और आत्म निर्भरता के लक्ष्य सर्वोपरि हैं। इसलिये रोजगार और असमानताओं को दूर करना भी आर्थिक नियोजन का महत्वपूर्ण तत्व है। जैसे --

(1) भारत में लोक कल्यापकारी राज्य की स्थापना के सिद्धान्त को संविधान में स्वीकार करना;

(2) संविधान के अंग के रूप में राज्य के नीति निर्देशक तत्व के रूप में लिखी बातों पर बल देना;

(3) समाजवादी ढंग से समाज की रचना करना। इसे दूसरी योजना के बाद सभी आर्थिक नीतियों का लक्ष्य मान लिया गया।

भारत में आर्थिक विकास की दर बड़ी असन्तोष जनक रही है। जनसंख्या के प्रतिवर्ष 2.5% वृद्धि दर के कारण राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि का फल प्रति व्यक्ति के रूप में बहुत कम मिल पाया है। इसी-लिये अब भी लगभग 35% जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे आती है।

बीसवीं शताब्दी में आजादी से पूर्व 1900--01 से 1945--46 तक के काल में राष्ट्रीय आय की औसत वार्षिक वृद्धि दर केवल 1.2% थी तथा प्रति व्यक्ति आय वृद्धि की दर तो ऋणात्मक थी।इसी काल में कृषि उत्पादन और औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दरें क्रमशः 0.3% और 2.0% थी। इससे स्पष्ट है कि आर्थिक दृष्टि से इस काल में अर्थव्यवस्था स्थैतिक थी।

---

1. सातवीं योजना (1985--90)

"इधर हम आजादी की वर्षगांठ मना रहे हैं पर जरा ऑखे खोलकर इधर–उधर झांके तो पता चलता है कि देश के ढेर सारे नागरिक आज भी गुलाम की जिन्दगी जी रहे है। गांव के किनारे बसा हरिजन, चूल्हे के धुएँ में उलझी ऑखें मिचमिचाती औरत अपनी स्वायत जिन्दगी खोकर नागरिक शोषण का शिकार बनी जन-जातियाँ, ये वे लोग है, जिन्हें आज भी आजादी सपना बनी हुई है।"[1]

नेहरू जी ने अपनी एक भाषण माला (1953–1957) में अपने आर्थिक नियोजन की जो बार--बार घोषणा की उसमें भी उन्होनें देश के औद्योगीकरण और समाजवाद की ही अधिक चर्चा की, और उनका अटूट विश्वास था कि, औद्योगिक विकास के बिना देश की प्रगति नहीं हो सकती। जबकि गाँधीवादी विचारकों का मत था कि इससे भारत का समाज सामाजिक बुराइयों का शिकार हो जायेगा। अतः कुटीर उद्योग का विस्तार और विकास किया जाये। नेहरू जी का मत था-- विशाल उद्योगों के विकास के बिना देश की गणना आधुनिक संसार में नहीं हो सकती।"[2]

नेहरू जी एक ओर समाजवाद की तथा दूसरी ओर पूंजीवाद की बात करते हैं। उनकी आर्थिक नीति में अन्तर्विरोध थे। उन्होनें एक बार घोषणा की कि-- "मैं नहीं जानता कि लोग मुझे समाजवाद को रूढ़ रूप में परिभाषित करने के लिये क्यों कहते हैं। मैं जानता हूँ कि भारत में सबको उन्नति करने का समान अवसर तथा अपनी क्षमता अनुसार काम करने का अवसर मिले।"[3]

स्वतन्त्र भारत के नियोजन के योजनाबद्ध के बारे में तो यहाँ तक कहा गया है। कि जीवन के विभिन्न आदर्शों के कारण ही नहीं, देश और काल की भिन्न परिस्थितियों के कारण भी हमारे आर्थिक नियोजनों का मार्ग पश्चिम से भिन्न होना चाहिये। किन्तु हम मार्शल और मार्क्स

---

1. रविवार 13 से 19 अगस्त 1978 पृ0–10
2. इण्डिया ए हिस्टोरिकल सर्वे, के0ए0एन0 शास्त्री, जी0 निवासाचारी, पृ0--157
3. जवाहरलाल नेहरू, स्पीच (1953--57) पृ0--52

से बुरी तरह बंध गये है। अर्थशास्त्र के जिन नियमों ने उनकी विवेचना की। उन्हें हम शाश्वत मानकर चल रहे है। पश्चिम के आर्थिक समृद्धि ने उसकी अर्थोत्पादन पद्धति के विषय मे हमारे मन में निरपवाद रूप से हमारे मन में श्रद्धा उत्पन्न कर दी है।..........किन्तु खरे और खोटे की परख कोई पारखी ही कर सकता है। हमारी शिक्षा और दीक्षा इन पारखियों को उत्पन्न नहीं कर सकी। हमारे अर्थशास्त्री पश्चिम के अर्थशास्त्र में पारगत हो सकते हैं। किन्तु वे उस अर्थशास्त्र के विकास में कोई ठोस योगदान नहीं दे सके हैं, क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था उस दृष्टि से उनके लिये न तो विचार प्रवण हो सकती है, और न प्रयोग भूमि ही। स्वतन्त्र भारतीय अर्थशास्त्र की या तो उन्होंने आवश्यकता ही नहीं समझी या उन्होनें उसमें अपने आपको असमर्थ पाया। गांधीवादी तथा सर्वोदय वादी विचार धाराओं में जिस अर्थशास्त्र की चर्चा की गई है वह इस आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर पाता।"[1]

नेहरू जी एक ओर समानता की बात करते हैं तो दूसरी ओर कहते हैं कि " मैं सोचता हूँ कि पूँजीवाद ने संसार को बहुत कुछ दिया है। निःसन्देह इसमें लोगों के लिये बहुत सी यातनायें भी पैदा की है फिर भी सदैव पूँजीवाद को कोसते रहना एब्सर्ड लगता है।"[2]

भूखे नंगे ऋणग्रस्त पिछड़े देश के प्रधानमन्त्री का स्वप्न कितना हास्यास्पद प्रतीत होता है। आप कहते है कि– "सामान्यतः हम प्रगति विश्वास करते है कि भारत की औद्योगिक प्रगति उद्योगों के विकास पर निर्भर करती है।.......आधुनिक सभ्यता की समस्या शक्ति पर केन्द्रीकरण है। जिसका कारण औद्योगीकरण है जो देश अणुबम्ब रखते है। उनके पास सारी शक्ति है उनकी शासन व्यवस्था किस प्रकार की है। यह प्रश्न कोई औचित्य नहीं रखता।"[3]

---

1. भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा : दीनदयाल उपाध्याय, पृ0--4
2. जवाहर लाल नेहरू, स्पीच (1953–57) पृ0–78
3. जवाहर लाल नेहरू, स्पीच (1953--57) पृ0–78

इतना ही नहीं नेहरू जी कुटीर उद्योगों को भी जीवित रखने की बात करते हैं। जबकि होता यही है कि बड़े पैमाने पर उत्पन्न हुआ मशीनी माल बाजार पर छा जाता है। और कुटीर उत्पादन अमीरों का शौक मात्र रह जाता है। औद्योगीकरण के साथ कुटीर उद्योग जीवित रह सकते हैं। कुटीर कला जीवित रखी जा सकती है। किन्तु ग्रामीण धन्धे का समापन निश्चित रूप से हो जाता है। गॉंधी जी ने कहा था --

"ग्रमों का रक्त वह सीमेन्ट है जिससे शहरों का भवन निर्मित होता है।"[1] "भारत जैसे देश में विकास का कार्य का सारा बोझ सरकार पर आता है। यह सत्य है कि हम निजी पूँजी और इण्टरप्राइज का स्वागत करते हैं, किन्तु विकास का उत्तरदायित्व सरकार का है। .... यदि हम अपनी नींव मजबूत बनाकर प्रगति करना चाहते है तो सार्वजनिक क्षेत्र आवश्यक हो जाता है।"[2]

"योजना काल के आरम्भ (1950-51) से 1978--79 के 28 वर्षो के काल में राष्ट्रीय आय की औसत बार्षिक वृद्धि 3.5% और प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर 1.3% रही है।[3] इस काल में कृषि उत्पादन की वृद्धि दर 2.7% और औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर 6.1% रही है। इससे स्पष्ट है कि आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया आरम्भ होने के बाद से आर्थिक विकास की गति काफी तेज हुई है, परन्तु यह अब भी सन्तोषजनक नहीं है। तीसरी योजना काल को छोड़कर सभी योजना काल में राष्ट्रीय काल में राष्ट्रीय आय की औसत वृद्धि वार्षिक वृद्धि पर इस 5% के बीच रही है। जो एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पहली, पॉंचवी और छठी योजनाओं को छोड़कर शेष सभी योजनाओं में वास्तविक वृद्धि दर परिलक्षित वृद्धि दर से कम रही है; यह बात अगले प्रष्ठ पर दी गई तालिका से स्पष्ट होती है। पिछले पैतींस वर्षो में आत्मनिर्भरता की दिशा में काफी वृद्धि हुई है।

---

1. इण्डिया ए हिस्टोरिकल सर्वे केoएoएनo शास्त्री, जीo निवासाचारी, पृo 158
2. जवाहर लाल नेहरू स्पीच-- (1953--1957) पेo 62
3. छठी योजना (1980--85) पृo 1

खाद्यान्नों के क्षेत्र में भारत आत्मनिर्भर सा हो गया है। भारी मशीनों के क्षेत्र मे भी आयात से काफी सीमा तक छुटकारा मिला है। परन्तु स्थिति में अब भी उतार चढाव आते रहते है। पेट्रोलियम तेल के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य में वृद्धि के कारण भारत की लगभग 85% निर्यात आय तेल के आयात भुगतान के लिये दे दी जाती है। आवश्यक वस्तुओं का भी आयात करना पड़ जाता है। 1986-87 में 7517 करोड़ रूपये के आयात निर्यात से अधिक किये गये। यह व्यापार शेष (घाटा) 1980-81 तक के किसी भी अकेले वर्ष की कुल निर्यात राशि से अधिक रहा है।

राष्ट्रीय आय की वास्तविक एवं परिलक्षित वृद्धि दरें

योजना	लक्ष्य	वास्तविक
1-- पहली योजना	2.1	3.1 (एन. आई.)
2-- दूसरी योजना	4.5	4.0 (एन. आई.)
3-- तीसरी योजना	5.6	2.2 (एन. आई.)
4-- चौथी योजना	5.7	3.3 (एन. डी. पी.)
5-- पांचवी योजना	4.4	5.2 (जी. डी. पी.)
6-- छठवीं योजना	5.2	5.2 (जी. एन. पी.)
7-- सातवी योजना	5	-- (जी. एन. पी.)

आर्थिक नियोजन का दूसरा महत्वपूर्ण आर्थिक लक्ष्य है आत्म निर्भरता। आत्म--निर्भरता के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुये छठी योजना (1980-85) में निम्न बातें कही गई हैं।

विदेशी सहायता पर निर्भरता में कमीं।

घरेलू उत्पादन में विविधता और इसके परिणाम स्वरूप कुछेक महत्वपूर्ण वस्तुओं के आयात में कमी।

निर्यात को प्रोत्साहित करना ताकि हम अपने साधनों से आयातों का भुगतान कर सकें।

"आत्म निर्भरता के क्षेत्र में सबसे बड़ी कमी घरेलू साधनों के सीमित होने के कारण योजनाओ के लिये विदेशी साधनों पर निर्भरता है। पहली योजना में योजना के कुल व्यय मे विदेशी सहायता का योगदान 9.1% प्रतिश्त था, जो बढ़कर वार्षिक योजनाओं के काल (1966-69) में 33.9% प्रतिशत हो गया और फिर घटकर पॉचवी योजनाकाल में 9.0% प्रतिशत रह गया। विभिन्न योजनाओं में विदेशी सहायता के योगदान की स्थिति तालिका में दी गई है।"[1]

योजना काल में शुद्ध विदेशी सहायता

योजना	शुद्ध सहायता करोड़ रूपये	विदेशी सहायता कुल योजना व्यय का प्रतिशत	विदेशी सहायता कुल आयात का प्रतिशत
1-- पहली योजना	178	9.1	4.9
2-- दूसरी योजना	1311	28.1	26.9
3-- तीसरी योजना	2325	27.2	37.5
4-- वार्षिक योजना	2247	33.9	37.5
5-- चौथी योजना	1739	11.2	17.6
6-- पांचवी योजना	3539	8.9	12.8

बाहरी सहायता के अन्त: प्रवाह में ऋण सेवा भुगतान कुल निर्यात मूल्य का 1

---

1. छठी योजना (1980--85) पृ0 14, शुद्ध सहायता मे ब्याज आदि के रूप मे लौटाई गई राशि शामिल नहीं है।

प्रतिशत भाग था जो चौथी योजना काल में बढ़कर 27 प्रतिशत हो गया। 1978--79 में निर्यात में भारी वृद्धि के कारण यह भाग घटकर 15.4 प्रतिशत रह गया। ऊपर दिये गये विश्लेषण को देखकर आत्म निर्भरता का लक्ष्य हमें कोसों दूर नजर आता है।

आर्थिक नियोजन का तीसरा महत्वपूर्ण लक्ष्य है कि भारत में बड़े स्तर पर बेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगारी फैली हुई है। प्रत्येक योजना में नये रोजगार के अवसर उत्पन्न किये जाते हैं। परन्तु योजना के अन्त में बेरोजगारी की संख्या योजना के आरम्भ की संख्या से अधिक होती है।

प्रथम से तृतीय तथा चतुर्थ योजना तक समाजवाद लाने की दिशा में अग्रसर होने का यह सतत् प्रयास होता रहा। कांग्रेस और कांग्रेस सरकार के प्रधानमन्त्री ने सदैव अग्रगामी योजनाओं के द्वारा भारत के गरीब से गरीब व्यक्ति के स्तर को सुधारने का संकल्प किया। पूर्ण आर्थिक स्वराज्य का नारा देकर आत्म निर्भरता और समाजवादी आर्थिक नियोजन को अपनाकर ही किया जा सकता है। नेता श्री मोरार जी देसाई ने भी कहा है कि-- "हमारा देश गरीब है। करीब 95 प्रतिशत लोगों की आमदनी इतनी कम है कि उनके जीवन स्तर को देखकर तरस आये हमने प्रतिज्ञा की है कि, इन गरीब देशवासियों के जीवन स्तर को ऊँचा उठायेंगें, और उनकी आर्थिक दशा सुधारेंगें।"[1]

प्रारम्भ में ही सरदार ने देश के धनिकों से कहा था। बहुत दिन जिन लोगो ने पैसा कमाया है उन्हे अब देश की इन्डस्ट्री बढ़ाने के काम में अब अपना रूपया लगाना चाहिये।[2] इसी क्रम में 13 मार्च 1962 के ससद के बजट अधिवेसन मे राष्ट्रपति डा0 राजेन्द्र प्रसाद के अभिभाषण का उल्लेख कराना चाहूंगी। हमारा उद्देश्य केवल अनाज में आत्म निर्भर होना ही नहीं है

---

1. मेरी दृष्टि में: मोरार जी देसाई : पृ0 139
2. दिनॉक 30.10.48 को नई दिल्ली में दिये गये सरदार पटेल के एक भाषण से (भारत की एकता का निर्माण पुस्तक में संकलित पटेल के 27 भाषण) पृ0 132

बल्कि निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा संग्रह करने तथा बढ़ते हुये उपयोगों के लिये कच्चा माल उपलब्ध कराने के लिये व्यापारी पैदावार को बढ़ाना भी है। .... दूसरी पंचवर्षीय योजना का आधार वर्ष इन्डेक्स की तुलना में 1960''61 के उत्पादन इन्डेक्स 19--1 प्रतिशत अधिक है। .....हमें आशा है राष्ट्रीय आय में वृद्धि योजना में निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप होगी।

''समाजवाद का ध्येय वर्गहीन समाज की स्थापना है समाजवाद प्रचलित समाज का इस प्रकार का संगठन करना चाहता है, कि वर्तमान परस्पर विरोधी स्वार्थो वाले पोषक और शोषित, पीड़क और पीड़ित, वर्गो का अन्त हो जाये, वह सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का ऐसा समूह बन जाये जिसमें एक सदस्य की उन्नति का अर्थ स्वभावत: दूसरे सदस्य की उन्नति हो।''[1]

''देश में दरिद्र, निर्धन, श्रमिक अधिक हैं। महाजन और पूंजीपति कम है। जो सरकार साहस और निष्ठा के साथ समाजवादी नीति को बरतेंगी, पूंजी शाही और अनर्जित वृद्धि को बन्द करेगी। शिक्षा का प्रसार और लोगों की आय बढ़ाने का उद्योग करेगी उसका आसन दृढ़ रहेगा''[2]

अपने अध्यक्षीय भाषण में नये दल के आधारों की व्याख्या आचार्य कृपलानी ने करते हुये कहा है। सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक शोषण से मुक्त वर्गहीन और जातिहीन समाज की स्थापना समाजवादी स्वर की शानदार अगवानी और आर्थिक कार्यक्रम का उद्घोष डा0 राममनोहर लोहिया कर रहे थे। मिली जुली मुख्य आर्थिक नीति इस प्रकार निर्धारित की गई -

1- भूमि की साम्या के आधार पर पुनर्वितरण इसके लिये भूमिहीन श्रमिकों को कोई मुआवजा नहीं देना पड़ेगा। वे ही इसके मुख्य लाभ गृहण करने वाले होगें।

2- विकेन्द्रीकृत उद्योगों का विस्तार।

---

1. समाजवाद : लक्ष्य तथा साधन : आचार्य नरेन्द्र देव ; पृ0 1
2. समाजवाद : डा0 सम्पूर्णानन्द, पृ0 294

3-- ऐसे उद्योगो का सामाजिक संगठन और नियन्त्रण करना।

4-- स्वतन्त्र श्रमिक आन्दोलन।

5-- राजनैतिक सत्ता की समाप्ति।

6-- प्रान्तों का अधिक तर्क संगत और वैज्ञानिक आधारों पर पुनर्गठन।

पहली दिसम्बर 1953 में इलाहाबाद सम्मेलन हुआ। महासचिव डा0 लोहिया ने आर्थिक पहलुओं की विवेचना की। नीति सम्बन्धी वक्तव्य को दो भागों में विभाजित किया गया।

1-- समाजवादी सरकार के कार्यक्रम की पहली व्यवस्था।

2-- राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और कार्यक्रम।

पहले भाग समाजवादी सरकार के समक्ष पांच उद्‌दश्य रख गये --

(1) पैदावार बढ़ाना (2) रोजगार के अतिरिक्त अवसर जुटाना। (3) पूँजी निर्माण मे सुधार (4) सामाजिक आर्थिक सुधार समता बढ़ाना। (5) राज्य को सबल बनाना।

छोटे संयन्त्रों पर अधिक बल --

1-- बिजली तेल अन्य साधनों से चलने वाले।

2-- सिंचाई बीज खाद की सुधरी व्यवस्था इसमें वयस्क लोगों के स्वैच्छिक श्रम से नहरें खोदने, बांध बनाने जलाशय तैयार करने में वृद्धि।

3-- पॉंच वर्ष में भूमि का पुनर्वितरण करना।

4-- भूमि की अधिकतम सीमा उस भूमि की इकाई से तिगुनी तक निर्धारित करना। जिस पर पॉंच व्यक्तियों का परिवार किराये के मजदूरों अथवा मशीनो के बिना खुद कास्तकर सकता हो।

5-- ग्रामीण क्षेत्रों में बहुउद्‌देशीय सहकारी समितियों का गठन।

6-- कृषि और औद्योगिक मूल्यों में समता बढ़ाना।

7-- सभी बड़े पैमाने के उद्योगों का राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण।

8-- 200% प्रतिमास की अधिकतम आय निश्चित करना।"[1]

"विकेन्द्रीकरण तथा स्वदेशी जनसघ का आर्थिक नारा है। चुनाव में जनसघ ने नारा लगाया था हर हाथ को काम। हर खेत को पानी।"[2]

जनसंघ ने छः उद्देश्य नियोजित किये--

1-- राष्ट्र की सुरक्षा सक्षम बनाना।

2-- पूर्ण रोजगार।

3-- प्रत्येक कुटुम्ब की न्यूनतम जीवन आवश्यकता पूर्ति कर उसके स्तर को उठाना।

4-- राष्ट्र को मूलभूत, उपयोग एवं उत्पादक वस्तुओं में आत्मनिर्भर बनाना।

5-- आय व सम्पत्ति की विषमता में कमी करना।

6-- सभी क्षेत्रों और जनों का सन्तुलित विकास।

विकास दर और रोजगार की वृद्धि के लिये भी जनसंघ के सुझाव है--

1-- स्वदेशी भावना को विकसित कर उपभोग में संयम और स्वावलम्ब के साथ बचत को प्रोत्साहित करना।

2-- कर प्रणाली में ऐसे सुधार जिससे कर चोरी न हो।

3-- प्रशासन के अनुत्पादक व्यय पर भारी कमी की जाय।

4-- कृषि और उससे सम्बन्धित ग्रामीण उद्योगों को प्राथमिकता दी जाय।

5-- श्रम प्रधान सार्वजनिक केन्द्र कार्यों को एवं श्रम प्रधान उद्योगों को महत्व दिया जाय।

---

1. भारत के राजनैतिक दलः नीतियाँ और कार्यक्रम : संविधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान के लिए प्रकाशित रिसर्च दिल्ली।
2. भारतीय राजनीतिक दल : नीतियाँ और कार्यक्रम पृ0 133--34,
(भारतीय जनसंघः सुन्दर सिंह भण्डारीः प्रधान सचिव भारतीय जनसंघ)

"विशाल जन समुदाय के लिए जनतंत्र की व्यवस्था और जनता के शोषकों और उत्पीड़नों का बल पूर्वक दमन अर्थात जनतंत्र से उनका वहिष्कार यही मुख्य परिवर्तन है जो पूँजीवादी व्यवस्था से कम्युनिस्ट व्यवस्था तक के संक्रमण काल में जनपद में घटित होता है।"[1]

कम्युनिस्ट विचार ने दर्शन मार्क्स से ग्रहण किया है। मार्क्स की मान्यता के अनुसार-- "सर्वहारा एकाधिपत्य के स्वरूप जिस वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी उसमे प्रत्येक व्यक्ति के जीविकोपार्जन का एक ही आधार होगा और वह होगा उसका श्रम।"[2]

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के सामान्य अनेक उद्देश्य रहे हैं -

1. प्रति व्यक्ति और राष्ट्रीय आय में वृद्धि।
2. कृषि उत्पादन में वृद्धि और खाद्यानों में आत्म निभरता।
3. औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि एवं आधुनिकीकरण।
4. रोजगार के स्तर में वृद्धि।
5. क्षेत्रीय विषमता में कमी।
6. निर्धनता का निवारण।
7. सामाजिक न्याय तथा आय का समान वितरण।
8. मूल्य स्तर का स्थायीकरण।
9. जनसंख्या पर नियंत्रण।
10. निर्यात में वृद्धि।

ऊपर दिये गये सामान्य उद्देश्यो को प्रत्येक पंचवर्षीय योजना मे प्राथमिकता दी

---

1. वी0आई0 लैनिन-- मार्क्स ऐंजित मार्क्सिज्म, पृ0 348
2. जान स्ट्रेची : द थ्योरी एण्ड पैरिन्टस ऑफ सोसी आलिज्म, पृ0 402

गई है, परन्तु इनके साथ प्रत्येक योजना में कुछ विशिष्ट उद्‌देश्य भी रहे हैं, जैसे-

प्रथम पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्‌देश्य निम्न थे -

1. दूसरे विश्व युद्ध तथा देश के विभाजन से भारत की अर्थ व्यवस्था को जो क्षति पहुंची, उसकी पूर्ति करना।
2. खाद्यान्नों की कमी को दूर करना तथा कच्चे माल के उत्पादन में वृद्धि करना।
3. योजना काल के पांच वर्षों में राष्ट्रीय आय मे 11% वृद्धि करना।
4. देश में मुद्रा में प्रसार की प्रवृत्तियों को रोकना।
5. उत्पादन क्षमता में वृद्धि तथा आर्थिक विषमता को यथा-सम्भव कम करना।
6. यातायात के साधनों, बिजली घरों तथा सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार करना।
7. आर्थिक व्यवस्था को इस प्रकार से सबल बनाना जिससे कि भविष्य में द्रुत गति से विकास सम्भव हो सके।

दूसरी पंचवर्षीय योजना :--

1. देश में लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए राष्ट्रीय आय में 25% और प्रति व्यक्ति आय में 18% वृद्धि करना।
2. देश का शीघ्र औद्योगीकरण करना, विशेषकर मौलिक और आधारभूत उद्योगो का विकास करना ताकि इस के आधार पर भविष्य में और भी तेजी से वृद्धि हो सके।
3. देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना जिससे 120 लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें।
4. देश में आय और धन की असमानताओं को कम करके समाजवादी समाज की स्थापना करना और प्रत्येक को विकास के लिए समान अवसर प्रदान करना।

तीसरी पंचवर्षीय योजना :--

1. अर्थ व्यवस्था को "आत्मनिर्भर विकास" की ओर तेजी से ले जाना।

2. राष्ट्रीय आय में प्रति वर्ष 5% से अधिक वृद्धि करना तथा विनियोग के आकार को इस प्रकार व्यवस्थित करना कि भविष्य की योजना में यह विकास की दर बनी रहे।

3. खाद्यान्नों में आत्म निर्भर होना तथा उद्योगों और निर्यात की आवश्यकता के लिए कृषि उत्पादन को बढ़ाना।

4. देश के जन साधनों को अधिकतम उपयोग करना तथा राजगार के अवसरो मे वृद्धि करना।

5. आधारभूत लोगों उद्योगों और ईंधन तथा शक्ति के साधनों का विस्तार करना।

6. आय तथा धन की असमानताओं को कम करना।

चौथी पंचवर्षीय योजना :--

तीसरी योजना के बाद तीन वर्षों के लिए तीन वार्षिक योजनायें बनाई गई। इसलिए चौथी योजना 1 अप्रैल, 1969 से प्रारम्भ हुई इस योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. इस योजना का प्रमुख उद्देश्य स्थिरता के साथ आर्थिक विकास करना था। सामाजिक न्याय व समानता, विकास में क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने एवं आत्म निर्भरता की ओर अग्रसर होने पर बल दिया गया।

2. कृषि क्षेत्र में 5% और औद्योगिक क्षेत्र में 8 से 10% की वार्षिक वृद्धि करना था।

3. राष्ट्रीय आय में $5\frac{1}{2}$% प्रतिवर्ष और प्रति व्यक्ति आय में लगभग 3% वार्षिक वृद्धि करना था।

4. योजना के आखिरी साल में विदेशी सहायता की आवश्यकता की वर्तमान स्तर से आधा करना था।

5. योजना काल में देश को आत्म निर्भर बनाना था।

6. घरेलू बचत की 9% से बढ़ाकर योजना के अन्त तक 13.2% करना था।

पांचवी पंचवर्षीय योजना :-

एक अप्रैल, 1974 से भारत में पांचवी योजना आरम्भ की गई। अन्य योजनाओं की अपेक्षा इस योजना का आकार बहुत बड़ा था। इस योजना की कुल राशि 69451 करोड़ रूपये थी।

1. योजना के दो मत्वपूर्ण उद्‌देश्य हैं-- गरीबी हटाना और आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बनाना।
2. वार्षिक विकास की दर 4.37% निर्धारित की।
3. उत्पादन बढ़ाने वाले रोजगार का विस्तार करना।
4. कृषि ऐसे बुनियादी और लघु उद्योगों के विस्तार पर जोर देना, जो जन साधारण के उपभोग की चीजें बनाते हैं।
5. सामाजिक, आर्थिक और क्षेत्रीय असमानतायें हटाने के लिए संस्थागत वित्तीय तथा अन्य उपाय।
6. रोजगार के स्तर में वृद्धि करना।

पांचवी योजना का श्री गणेश एक बहुत ही धूमिल और विषम परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में हुआ। योजना का प्रारम्भ बहुत ही हतोत्साही था। इस-लिए सफलता मिलने की कोई सम्भावना नहीं थी। कृषि और औद्योगिक उत्पादन में कोई सन्तोषजनक वृद्धि नहीं हुई थी। परन्तु बीस सूत्रीय कार्यक्रम तथा अनुकूल प्राकृतिक दशाओं के कारण योजना के दूसरे वर्ष (1965-76) मे अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादन और निष्पादन के नये अभूतपूर्व कीर्तिमान स्थापित हुए। इसलिए सितम्बर 1976 में योजना का मूल्यांकन किया गया और 26 सितम्बर, 1976 को पांचवी योजना का

एक संशोधित रूप प्रस्तुत किया गया। यद्यपि इस रूपरेखा में कुल व्यय (53411 से 69451 करोड़ रूपये) अधिक है। परन्तु निर्धारित लक्ष्य पहले की अपेक्षा बहुत वास्तविक एवं व्यवहारिक है।

छठीं पंचवर्षीय योजना :-

पांचवी योजना 31 मार्च, 1979 को समाप्त हुई, परन्तु छठी योजना का आरम्भ 1 अप्रैल, 1980 से हुआ। इस प्रकार 1979--80 का एक वर्ष का काल किसी भी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत नहीं आता। ऐसा केन्द्र में सरकार बदल जाने के कारण हुआ। पहली सरकार द्वारा बनाई गई छठी योजना का काल (1978--83) था, परन्तु नई सरकार ने इसका काल (1980-85) निर्धारित किया।

जनवरी 1980 में केन्द्रीय सरकार के पुनः परिवर्तन से छठी योजना 1 अप्रैल, 1980 से आरम्भ हुई। योजना की कुल राशि 172210 करोड़ रूपये हैं, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की राशि 97500 करोड़ रूपये है। योजना में सफल घरेलू उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय की औसत वार्षिक वृद्धि दर क्रमशः 5.2% और 3.3% की परिकल्पना की गई है।

योजना के प्रमुख उद्देश्य :-

1. विकास दर में वृद्धि, कार्य क्षमता में वृद्धि तथा उत्पादिता में सुधार।
2. तकनीकी आत्म निर्भरता की प्राप्ति तथा आधुनिकीकरण को बढ़ावा देना।
3. निर्धनता और बेरोजगारी में तेज गति से कमी।
4. घरेलू साधनों का तेज गति से विकास।
5. आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े व्यक्तियों के जीवन में सुधार।
6. वितरण की विषमता में कमी।

7. जनसंख्या नियन्त्रण।

8. देश के आर्थिक विकास में सबको शामिल करना।

योजनाकाल के लिए खाद्यान्नों का लक्ष्य 149 से 154 मिलियन टन तक निर्धारित किया गया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना :-

एक अप्रैल 1985 से सातवीं योजना (1985-90) आरम्भ हुई सातवी योजना के सार्वजनिक क्षेत्र की कुल राशि 180000 करोड़ रूपये है तथा योजना की कुल राशि 348148 करोड़ रूपये निजी क्षेत्र है। योजना के लिए 5% से थोड़ी अधिक विकास की दर की आवश्यकता होगी। खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्म निर्भरता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कृषि उत्पादन में 4% वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

1. योजना का विकेन्द्रीकरण और विकास में पूर्ण जन सहभागिता।

2. उत्पादक रोजगार का अधिकतम संभव सृजन।

3. गरीबी दूर करना।

4. खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता।

5. शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई और आवास में सार्वजनिक उपभोग का उच्च स्तर।

6. निर्यात संवृद्धि और आयात प्रतिस्थापन द्वारा आत्म निर्भरता में वृद्धि करना।

7. छोटे परिवार के विचार को स्वैच्छिक रूप से अपनाने की गति प्रदान करना।

8. संरचनात्मक कमियों को दूर करना।

9. उद्योग में कार्यकुशलता, आधुनिकीकरण और प्रतियोगिता।

10. ऊर्जा संरक्षण।

11. विकास योजनाओं में विज्ञान और तकनीक का एकीकरण।

12. पर्यावरण संरक्षण।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में 2676 करोड़ रूपये का व्यय करने का अन्तिम रूप से निर्णय लिया गया था, लेकिन वास्तविक व्यय 1960 करोड़ रूपये ही हो सका। अतः प्रथम योजना पर व्यय इस प्रकार रहा –

प्रथम योजना का वास्तविक व्यय

विवरण	व्यय करोड़ रूपये	प्रतिशत
1. कृषि तथा समुदायिक विकास	291	15
2. सिंचाई तथा शक्ति	570	29
3. उद्योग तथा खनिज	117	6
4. यातायात तथा संवादवाहन	523	27
5. सामाजिक सेवायें व अन्य	459	23
योग	1960	100

[1]

इस प्रकार प्रथम योजना व्यय देखने से पता चलता है कि इस योजना में कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। ''प्रथम योजना के अन्तर्गत सन् 1956 तक समुदायिक विकास योजना तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा कार्यक्रम लगभग 1,40,147 गांवों में आरम्भ किये गये। ये गांव 988 विकास खण्डों में विभाजित थे और इनकी कुल जनसंख्या 77.5 लाख थी। विभिन्न विकास कार्यों पर कुल 4602 लाख रूपये व्यय किया गया।[2]

---

1. स्रोत-- एच0सी0 शर्मा व आर0एन0 सिंह– भारतीय अर्थव्यवस्था, 1977, पृ0 307
2. पी0सी0 जैन– भारत की आधुनिक आर्थिक प्रगति, पृ0· 31

दूसरी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 4800 करोड़ रूपये व्यय करने का प्रावधान था, जबकि वास्तविक व्यय 4672 करोड़ रूपये ही हो सका। जैसा कि नीचे प्रदर्शित कर रहे हैं :--

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत व्यय

विवरण	व्यय (करोड़ रूपये)	प्रतिशत
1. कृषि तथा सामुदायिक विकास	549	12
2. सिंचाई तथा विद्युत शक्ति	882	19
3. उद्योग तथा खनिज	1125	24
4. यातायात तथा संवादवाहन	1261	27
5. सामाजिक सेवायें तथा विविध	855	18
योग	4672	100 [1]

कांग्रेस के आवड़ी अधिवेशन में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने इस सम्बन्ध में कहा था कि-- "योजना का अर्थ यह है कि भारत के लोगों की भौतिक जरूरतों का अन्दाजा लगाया जाय, कि उन्हें कितने स्कूल, कितना कपड़ा, कितने मकान तथा कितनी स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं की आवश्यकता है।"[2]

इस योजना में 80 लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार मिला जिससे जनता के उत्थान पर इसका विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। इसके अलावा "पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए

---

1. स्रोत-- इण्डिया, 1976 पृ0 172

2. दूसरी पंचवर्षी योजना– संक्षिप्त रूपरेखा, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, पृ0 6

पहली योजना में 30 करोड रूपये की व्यवस्था की गई थी जबकि दूसरी योजना मे यह राशि 79 करोड़ रूपये थी। तीसरी योजना के इन कार्यक्रमों के लिये 114 करोड़ रूपये रखे गये।"[1]

चौथी योजना के प्रारूप में लिखा है-- "सामाजिक न्याय और समानता देश के आयोजन के मुख्य लक्ष्यों में से एक है। विकास के लाभ सभी वर्गो में समान रूप से बॉटना और आर्थिक विषमताओं को कम करना। चौथी योजना के कार्यक्रमों में इसका विशेष ध्यान रखा जायेगा कि इनके लाभ समाज के निर्धन और निम्नतम वर्गो और देश को अविकसित प्रदेशों को भरपूर मिले।"[2]

"बेरोजगारी की समस्या से छुटकारा पाने हेतु 1971 से ग्रमीण रोजगार त्वरित कार्यक्रम 3 वर्ष की अवधि के लिये 50 करोड़ रूपये की लागत से चलाया गया।"[3]

चौथी योजना के अन्त में आर्थिक संकट पैदा हो गया। वैसे तो लोगों के रहन सहन का स्तर बढ़ा। स्वयं योजना आयोग द्वारा यह अनुभव किया गया कि चौथी योजना में साधनों व लक्ष्यों में समन्वय का अभाव रहा। इसलिये योजना आयोग ने कहा था- "आयोजन का अर्थ है- अनेक उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में प्रयत्न करना। अतः इसके लिये साधनों व लक्ष्यों के मध्य समन्वय लाना जरूरी है। इस प्रकार की नीति ढॉचे के अभाव में हम विगत वर्षो के दौरान पूरी तरह से लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल रहे।"[4]

चार योजनायें बीत जाने के बाद "पॉचवी योजना आरम्भ होने के समय योजना आयोग की राय में लगभग 30 प्रतिशत लोग गरीबी के नीचे स्तर पर जीवन व्यतीत कर रहे थे।

---

1. तीसरी पंचवर्षीय योजना, योजना आयोग, भारत सरकार, पृ0 6
2. चौथी पंचवर्षीय योजना, संक्षिप्त प्रारूप, (1969-74) सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय. पृ0 6
3. प्रगति मंजूषा-- पत्रिका, अप्रैल, 1985 पृ0 45
4. पांचवी योजना, प्रारूप, भाग 1, भारत सरकार, पृ0 16

1972--73 के मूल्य स्तर पर न्यूनतम वांछनीय उपयोग स्तर के लिये एक व्यक्ति को प्रतिमास 40.60 रूपये मिलने चाहिये थे। जबकि चौथी योजना में 1960--61 के मूल्यों पर इस स्तर के लिये 20 रू0 की प्राप्ति जरूरी मानी गई थी।"[1] कृषि विकास कार्यक्रमों के साथ ही साथ गैर कृषि कार्यक्रम भी शामिल हैं। "इस योजना के बेकारों की पंजीकृत संख्या 4.25 करोड़ तक पहुँच गई थी। जिनमें से 1.38 करोड़ व्यक्तियों को संगठित रोजगार प्रदान किया गया।"[2]

इस प्रकार बेरोजगारी दूर करने हेतु आई0आर0डी0पी0 योजना अच्छी साबित हुई। "पांचवी योजना की अवधि (74--78) के कमाण्ड क्षेत्र के समन्वित विकास के लिये एक कार्यक्रम बनाया गया। 50 वृहद सिंचाई की परियोजनाओं में 38 कमाण्ड क्षेत्र विकास प्राधिकरण स्थापित किये गये। वर्तमान समय में फॅण्ड कार्यक्रम 76 चालू प्रोजेक्टों पर जारी है।"[3]

सन् 1975 में एक विशेष कार्यक्रम हाथ में लिया गया जो था नया बीस सूत्री कार्यक्रम। इससे हमारे देश के आर्थिक विकास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। छठी योजना के एक आयोग के अनुसार जहां 1980 में गरीबी का प्रतिशत 51.1 प्रतिशत था। वहां योजना के "दूसरी वर्ष घटकर 41.5 प्रतिशत और उनकी संख्या 28.2 करोड़ हो गई।"[4] अतः "छठीं योजना की अवधि में 10.05 लाख युवक प्रशिक्षित करने के बजाय 9.4 लाख युवकों को वास्तविक प्रशिक्षित किया गया जो कि लक्ष्य का 93.3 प्रतिशत होता है।"[5] जैसा कि एस0पी0 सिह की पुस्तक से पता चलता है- छठी योजना की मध्याविधि समीक्षा में सकल राष्ट्रीय उत्पादन में 5.27 प्रतिशत वृद्धि मापी गई, इस सम्बन्ध में बड़े विश्वास के साथ कहा गया कि छठी योजना के दौरान औसत वृद्धि दर 5.2 प्रतिशत

---

1. एस0के0 मिश्र,-- भारतीय अर्थव्यवस्था, चतुर्थ संस्करण, 1981. पृ0 184
2. प्रगति मंजूषा-- पत्रिका अप्रैल, 1985 पृ0 46
3. प्रतियोगिता दर्पण-- पत्रिका जुलाई, 1985, पृ0 631--32
4. योजना 10--31 सितम्बर, 1985. पृ0 22
5. सेवेन्थ फाईब ईयर प्लान, 1985--90, वाल्यूम सैकिण्ड, पृ0 54

लक्ष्य के बराबर पहुंच जायेगी। 3 प्रतिशत वृद्धि होगी।"[1] इस प्रकार से योजनायें गरीबी दूर करने हेतु एक महत्वाकांक्षी योजना थी। जिसमें गरीबी दूर करने व रोजगार का विस्तार करने पर विशेष महत्व दिया गया --

"योजना आयोग की राय में 1979-80 में चालू कीमतो के आधार पर वे सभी लोग गरीब थे।" छठीं योजना में 1620 करोड़ रूपये व्यय करने का प्रावधान किया गया। इस प्रवधान के अन्तर्गत 1980-81 में 42.1 करोड़ श्रम दिवस का काम उत्पन्न किया गया, जबकि 1982-83 में 33.8 करोड़ श्रम दिवस का काम उत्पन्न किया जा सका।'[2] 1981-82 मे 2.8 और 1982-83 में 3.3 मिलियन लोगों को इस योजना के अन्तर्गत लाभ पहुँचाया जा सका है। अतः ये कार्यक्रम अपनी प्रगति पर है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के समान ही एक अन्य योजना "स्पेशल कम्पोंनेन्ट प्लान" के अन्तर्गत "छठी योजना मे कम से कम 50 प्रतिशत हरिजन परिवारों की गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने का प्रवधान है।"[3] लेकिन यह माना जा रहा है कि सकल राष्ट्रीय उत्पादन मे यह वृद्धि बढ़ाकर बताई गई है। आर्थिक समीक्षा 1984-85 में औद्योगिक क्षेत्र की धीमी वृद्धि को इन शब्दों में व्यक्त किया। "छठी योजना के दौरान उद्योग की वृद्धि पर छ. प्रतिशत रहेगी जोकि पिछले 5 वर्षो की 5.3 प्रतिशत थी, औसत दर से थोड़ी सी अधिक है।"[4]

इस प्रकार से स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक नियोजन हुये और इसमें जनता के आर्थिक उत्थान पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

---

1. एस0पी0 सिंह-- आर्थिक विकास एवं नियोजन 1986, पृ0 231
2. प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई, 1985, पृ0 732
3. प्रगति मंजूषा अप्रैल, 1985 पृ0 46
4. एस0पी0 सिंह-- आर्थिक विकास एवं नियोजन, 1986, पृ0 231

अध्याय तृतीय (ब)

आधुनिक हिन्दी कहानियों में स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक नियोजन और जनता के आर्थिक उत्थान के प्रतिफलन की विवेचना

"आधुनिक हिन्दी कहानियों में स्वतंत्रता के पश्चात् आर्थिक नियोजन और जनता के आर्थिक उत्थान के प्रतिफलन की विवेचना"

शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'खैरा पीपर कभी न डोले'[1] में कहा गया है कि खैरा पीपर सनातन सांस्कृतिक गॉव है और वह सवर्था अपरिवर्तनीय है परन्तु देखते--देखते गॉव की आकृति--प्रकृति चूड़ान्त बदल गई कहानी का एक चित्र दृष्टव्य है--

"कैरा चला तो उसके सामने आज कहीं बूढ़ा पीपल नही था चाय की दुकान थी, जहॉ कुछ देर खड़े होकर वह गॉव को देखता रहा, फिर बस आई कैरा ने पहली बार सबको हाथ जोड़ कर नमस्ते किया और बस में बैठ गया।"[1]

"नयी कोयल'[2] में गॉव की आटा चक्की एक ऐसा ही प्रतिष्ठान है लेखक की दूसरी कहानी "बदलाव"[3] में नलकूप भी नये युग के नये पूजाग्रह के रूप में अन्यतम महत्वपूर्ण प्रतिष्ठान बनता जा रहा है। नवपरिवर्तित स्थितियॉ अत्यन्त तीव्रता के साथ गांवों को नगरों के निकट करती जा रही हैं।

नारी अब पहले की अपेक्षा आर्थिक रूप से स्वतन्त्र है। नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता दाम्पत्य जीवन में आने वाले परिवर्तन की शुरूआत थी। राजेन्द्र यादव ने लिखा है-- 'नारी यों ही आदिकाल से सौन्दर्य को और (उसके शास्त्र) तथा कला का केन्द्र रही है। फिर आत्मनिर्भर स्वयं समर्थ अकेली नारी तो पुरूष के लिए सबसे बड़ा प्रलोभन

---

1. "इन्हें भी इन्तजार है", पृ0 226
2. "धर्मयुग" 21 नवम्बर, सन् 1965
3. "धर्मयुग, 13 जुलाई, सन् 1969

और नियन्त्रण भी है। इस नियन्त्रण को प्रायः हर पुरूष कथाकार को स्वीकार करना पड़ा है और अपनी--अपनी सीमाओं, संस्कारों के साथ प्रत्येक ने उनकी शक्तियों मजबूरियों और कमनीयताओं को कथादृष्टि दी है। पुराने सस्कारों और नई परिस्थितियों के बीच नारी किस प्रकार पुरूष के अनेक टूटे सन्दर्भों के बीच अकेली होती है। उसके मानसिक गठन और मनोविज्ञान में कैसे दिलचस्प परिवर्तन आते जाते हैं। इसे आज की कहानी अधिक वास्तविक भूमि, अनेक सूक्ष्म संश्लिष्ट धरातलों और विविध सवेदनशील पक्षो से चित्रित करती है।''[1]

नारी के इस बदलते हुए चरित्र के बारे में चित्रा मुद्गल लिखती है-- कल तक पुरूष सत्तात्मक समाज में बहुधा मजूदर जैसा पशुत्व जीवन व्यतीत करने वाली स्त्री अपने को घर बाहर सभी जगह पुरूष के मुकाबले बराबरी का सिर्फ दर्जा ही नहीं चाहती, हिस्सेदारी भी चाहती है और स्वाभिमान पूर्वक अपनी प्रतिष्ठा भी।'[2] आज की नारी आत्मनिर्भर है। वह पुरूष का आधिपत्य स्वीकार करने वाली अबला नहीं है। मन्नू भण्डारी की ''इन्कम टैक्स और नीन्द'' कहानी की महिमा डाक्टर है। लड़कियों को ऊँची शिक्षा देने के सम्बन्ध में डा0 दयाल का कहना है--

''भाई साहब ने इस लड़की की जिन्दगी खराब करके रख दी है। 26 बरस की बिन ब्याही लड़की घर में बिठाकर रख ली। कितना--कितना समझाया मैने बाप--बेटी दोनों को। बस सेमिनार बेमिनार में ही डोलती फिरो घर ठिकाना तो कोई होना नहीं है इनका। पता नहीं साला कया जमाना आ है।''[3] जमाने का बदलाव ही

---

1. राजेन्द्र यादव-- एक दुनियॉ समानान्तर'' पृ0 36
2. चित्रा मुद्गल-- ''आत्मनेपद'' असफल दाम्पत्य की कहानियॉ, पृ0 5
3. मन्नू भण्डारी-- ''इन्कम टैक्स की नीन्द'' --यही सच है और अन्य कहानियॉ, पृ0 105

इसका विषय है। जमाने के अनुसार नारी भी बदल गई है और उसके संघर्ष की जड़ भी है।

मेहरून्निसा परिवेज की "साल की पहली रात" जैसी कहानियों में आर्थिक एवं सामाजिक बन्धनों से मुक्त होकर अपने पैरों पर खड़ा होने और अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए संघर्षरत् नारी का चित्र है। पुरानी पीढ़ी के पूर्वाग्रह एवं नयी पीढ़ी के मुक्त विचारों के बीच टकराहट अनेक कहानियो मे स्पष्ट रूप से उभरी है। "साल की पहली रात" की नायिका का विचार दृष्टव्य है– "क्यों रेशमा, क्या औरत हमेशा आदमी के नाम से ही जानी जायेगी।"[1]

मन्नू भण्डारी की कहानी "रानी माँ का चबूतरा"[2] कहानी की नायिका गुलाबी हड्डी तोड़ मेहनत करके अपने बच्चों को पालती है। गाँव की अन्य महिलाये गुलाबी के मातृत्व और चरित्र पर कलंक लगाती है। गुलाबी की मृत्यु हो जाने पर उसकी अंगिया से प्राप्त कागज की पुड़िया को दिये के प्रकाश में काकी खोलकर देखती है तो उसमें – "काँच की दो छोटी–छोटी हरी चूड़ियाँ और शिशु, सुरक्षा केन्द्र की पाँच रूपये की रसीद थी।"[3] आर्थिक तंगी परिवारों में क्रोध का कारण बनती है और सम्बन्धों में शिथिलता लाती है। निरूपमा सेवती की "आतंक बीच" "माँ यह नौकरी छोड़ दो" आदि कहानियों में सम्बन्धों की शिथिलता उभरती है। "माँ यह नौकरी छोड़

---

1. मेहरून्निसा परिवेज -- साल की पहली रात-- "कहानी" नारी मनोविज्ञान विशेषांक, मार्च--अप्रैल, 1971
2. मन्नू भण्डारी–प्रतिनिधि कहानियाँ– पृ0 133
3. मन्नू भण्डारी-- "रानी माँ का चबूतरा"-- यही सच है और अन्य कहानियाँ पृ0 121

दो" का बेटा अपनी माँ की नौकरी नहीं पसन्द करता क्योकि साहब के घर से उसकी माँ देरी से लौट आती है-- "माँ, यह नौकरी अच्छी नही न।"-- "अच्छी बुरी क्या सोचूँ? पता नहीं कब तक चलेगी? इतनी उम्र हो गई साहब ने ब्याह नही किया। पर कभी तो करेगें। क्या पता मेम साहब हमें आकर हटा दें। फिर दूसरी नौकरी ढूढनी होगी।"[1]

इसी प्रकार से जैनेन्द्र की कहानी "अन्धे का भेद" मे पत्नी ने पति की ऑखे फोड़कर वेश्यावृत्ति को अपना लिया है। अन्धे सूरदास की यह अवस्था जिस आर्थिक अभाव के कारण उसकी पत्नी ने की और वैश्यावृत्ति को अपनाया। लेकिन अब उसे अपने कृत्य पर पश्चाताप हो रहा है। वह ईश्वर से प्रार्थना करती है कि उसके पापों को क्षमाकरों, उसे भी संसार से जल्दी उठा ले। "तुम्हें मैं नहीं जानती मुझे तो धरती पर मालिक मिला था, इसी की मैने अपने हाथों से इसकी ऑखे फोड़ दीं। हाय पर यह कहता है, तभी से मुझे सच्ची ऑखे मिलीं। तभी से इसने मुझे तुम्हे याद करना सिखाया। क्या तुम सब पापों को माफ कर देते हो? ऐसे पापों को भी? मुझे भरोसा नहीं होता पर यह कहता है, विश्वास करने से सब कुछ होता है..... तुम........... मुझे जल्दी उठा लो यही चाहती हूँ।"[2]

अन्धे सूरदास के परिवार की यह स्थिति बड़ी ही दयनीय तथा दर्दनाक आर्थिक स्थिति के कारण हो गई।

आज आर्थिक परिस्थिति खराब होने के कारण युवा पीढ़ी शिक्षा से

---

1. निरूपमा सेवती-- "माँ यह नौकरी छोड़ दो"-- आतंक बीज, पृ0 101

2. जैनेन्द्र कुमार--पॉचवा भाग-- अन्धे का भेद, पृ0 164--65 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1978

वंचित रह जाती है। इसका चित्रण जैनेन्द्र की 'यथावत' कहानी में देखने को मिलता है। जगरूप मैट्रिक की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास हुआ है, वह बुद्धिमान है इसलिये कालेज जाना चाहता है लेकिन प्रवेश लेने के लिये घर में पैसे नहीं है। अपनी आर्थिक स्थिति के कारण मनोरमा बहुत ही चिंतित है। अपने बेटे को वह कालेज में शिक्षा देना चाहती है। परन्तु उसके सामने पैसे की चिन्ता है। "आसपास लोगों मे उसके लिये अच्छे भाव हैं पर उस सबसे तो कुछ नहीं होता। होता सब पैसे से। और पैसे का सवाल आने पर चारों तरफ डोलकर मन उसका रूका रह जाता है।"[1]

मनोरमा की यह स्थिति है तो जगरुप को ऐसा लगता है, कि ईश्वर दयालू है। वह कहीं न कहीं पैसे छोड़ेगा, "और तकिए के नीचे वह रोज टटोलता रहता है।"[2] लेकिन पैसे तो नहीं मिलते। आर्थिक स्थिति के कारण जगरूप का हँसना खेलना बन्द हो जाता है। ज्यादातर वह घर में ही रह जाता है, उदास और मलिन।

"एक दिन" कहानी में बेटे की कोई इच्छा पूरी नहीं होती। न वह बीमार माँ के लिये डाक्टर को बुला पाता है, न घी--दूध आदि के पैसे दे पता है। न बच्चे के लिये स्लेट खरीदकर ला सकता है और न ही किताब के लिये उसे पैसे दे पाता है। उसके जीवन में ये समस्त घटनायें एक दिन मे घटित होती है। जिन आने वाले पैसों पर वह आस लगाये बैठा था इन्तजार कर रहा था, उस प्रकाशक से यों उसे उत्तर प्राप्त होता है-- "आपका पत्र यथा समय मिल गया। उत्तर में निवेदन है, कि अप्रैल के आरम्भ तक पारितोषिक आपकी सेवा में पहुँच जायेगा। व्यवसाय

---

1. जैनेन्द्र कुमार--दसवॉं भाग-- यथावत--पृ0 28 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1985
2. जैनेन्द्र कुमार--दसवॉं भाग--यथावत-- पृ0 31, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1983

की स्थिति ही ऐसी है। क्षमा करें।"[1] और उसका सारा जीवन ही निरुद्देश्य दिखाई देने लगा। आर्थिक परिस्थिति के कारण तंग हुये परिवार की समस्या इसी तरह की है।

जैनेन्द्र की "अपना पराया दिन' कहानी में पति फौज में चला गया। उसे गये पॉच साल गुजर गये। उसका न कोई अता--पता है। आर्थिक स्थिति के कारण वह बेघर हो गई है। रात्रि के समय आसरा लेने के लिये वह एक सराय में आश्रय लिये हुये है। भूख के कारण बच्चा ठीक तरह से सो नहीं पाता और जोर--जोर से रोता है। उसी सराय में एक सिपाही विश्रान्ति ले रहा है। बच्चे के जोर--जोर से चिल्लाने के कारण उसकी नींद टूटती है, और वह बच्चे को चुप कराने के लिये उस स्त्री से कहता है, लेकिन बच्चा चुप नहीं होता। बच्चे की मॉ विवश होकर तथा अपनी हालत की स्थिति से तंग आकर सिपाही के पैरों पर बच्चे को डाल देती है। और कहती है– "मैं चली जाती हूँ, बच्चे को तुम ठोकर मारकर जहॉं चाहे फेंक दो।"[2] और वह चलने लगती है। अपना -पराया में इस कहानी में जैनेन्द्र ने आथिंक परिस्थिति से विपन्न हुई बनी हुई माता का वह करुण चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है जिसके द्वारा आर्थिक विपन्नता के कारण माता भी अपने सर्वेसर्वा बालक को किसी के पैरों में रखकर यह कहती है– "लो इसे ले जाकर उनके पैरों मे डाल दो, वह जूते से इसका ढेर कर दें।"[3] सिर्फ आर्थिक परिस्थिति के कारण ही तो, मॉ का हृदय कितना निर्दय हो जाता है कि औसत मनुष्य के सम्मुख अर्थ के अभाव के कारण कितनी भयावह

---

1. जैनेन्द्र कुमार-- तृतीय भाग-- एक दिन– पृ0 16 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1983
2. जैनेन्द्र कुमार--द्वितीय भाग--अपना पराया दिन, पृ0 196, पूर्वोदय प्राकशन दिल्ली, 1983
3. वही, पृ0 194

समस्या निर्माण होती है। क्योकि पैसे के अभाव मे माँ का प्रेम भी सूखकर पत्थर हो गया है। यह इस कहानी की समस्या समाज में होने वाले निर्धनो का दु:ख चित्रित करती है।

"प्रियव्रत" इस कहानी का प्रियव्रत आर्थिक दयनीय परिस्थिति होने के कारण विमनस्क बना हुआ है। और वह निराश तथा हताश बन जाता है। आर्थिक विपन्नता उसे हताश तो बनाती ही है, साथ ही वह शराबी भी बन जाता है, तथा जवानी मे ही मर जाता है। आर्थिक स्थिति सुधर जाये, इसलिये उसका मित्र उसे कुछ लिखने के लिये कहता है। तब वह कहता है– "क्या तुम्हारा मतलब है, कि पैसे के लिये मुझे लिखना चाहिये ? पैसे के लिये मैं जूता तक साफ नहीं कर सकता। लिख तो सकता ही कैसे हूँ ? नीच से नीच काम मुझसे न होगा। उस पैसे के निमित्त लिखने जैसा काम करने को मुझसे कहते हो ?"[1] पैसे के अभाव में बनी विमस्क स्थिति मे वह शराब पीता रहता है और अपने जीवन का अन्त कर लेता है।

आर्थिक अभाव की स्थिति के कारण मनुष्य कैसे अपने जीवन का अन्त कर लेता है। और अच्छा इन्सान भी कैसे बिगड़ जाता है। इसका चित्रण करके एक समस्या को उद्‌भूत किया है।

"गॉव में साहूकार सूद पर पैसे देकर गरीबो को कैसे चूसते हैं, और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में धनिक कैसे धनिक और गरीब कैसे गरीब बन जाता है। इसका चित्रण करके जैनेन्द्र ने आर्थिक विषमता की समस्या को "चोरी" नामक कहानी मे चित्रित

---

1. जैनेन्द्र कुमार–छठा भाग–प्रियव्रत, पृ0 82, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1981

किया है– "लक्खू को अब चारों तरफ सूना–सूना दीखने लगा। दोनो जून रोटी के लाले थे ही, अब आसरे को झोपड़े में अपनी वह तीन बच्चे, बुढ़िया माँ और एक दूर की अनाथ विधवा भाभी को लेकर वह गुजारा करता था। वह आज नीलाम पर चढ़ा दिया गया है। तीन साल पहले बीज के लिये जो आलू उसने महाजन से उधार लिये थे। उनकी कीमत अब सूद–दर–सूद वसूल करने के लिये बेचारे महाजन को झोपड़ी को खाली करा लेना पड़ा है।"[1]

महाजनों के हाथों ऐसे कितने ही लक्खू अपने घरो को खोदते हैं। सूदखोरी से बनी आर्थिक समस्या कितनी कठोर है। गरीबी समाज में बराबर टिकी रही है। गरीबी के कारण पुत्र अपनी माँ का इलाज नहीं करा सकता। इतना ही नहीं उसके मृत्यु के पश्चात् क्रिया–कर्म नहीं कर सकता। और समाज से मुँह छुपाकर वह घर से भाग जाता है। पैसे के अभाव के कारण मनुष्य घर से समाज से भाग जाता है। गरीबी की इस समस्या को जैनेन्द्र ने "घुघँरू" कहानी में चित्रित किया है। माँ की मृत्यु के बाद दीनानाथ उसे कफन नहीं ला सकता, – "उनका क्रिया–कर्म सुना है पास पड़ोसियों ने किया। मरते वक्त की माँ की निगाह मुझे याद है। वह निगाह हर वक्त मुझे चुभती रहती है। उसमें अमित दैन्य, अमित याचना भरी थी, और मैं दो पैसे की दवा का उनके लिये बन्दोबस्त नही कर सका था।"[2]

एक ओर "अपना पराया" में माँ अपनी आर्थिक विपन्नावस्था के कारण सिपाही को कहती है, कि चाहे तो वह उस बच्चे को पैरों तले तुड़वाकर ढेर कर दे, और दूसरी ओर दीनानाथ है जो अपने मरी हुई माँ का क्रिया कर्म नहीं कर सकता. उसे

---

1. जैनेन्द्र कुमार–चोरी– पृ0 126, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1981
2. जैनेन्द्र कुमार चतर्थ भाग 'घुघँरु' पृ0 38, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1982

कफन तक नही ला सकता। समाज में अर्थ क़े कारण कितनी सोचनीय और दयनीय स्थिति आ गई ह। इसका विदारक चित्रण जैनेन्द्र ने करके-- एक ओर जो दूध पर पला हुआ बच्चा किसी गैर के पैरों तले कुचलता देख सकती है। इतनी निर्मम हो गई है। और दूसरी ओर जिसके दूध पर पला हुआ बड़ा हुआ लड़का मरी हुई माँ को कफन तक नही जुटा पता है। उसका क्रिया--कर्म करने के बजाय, समाज में मुँह छिपाने हेतु कहीं दूर भाग जाता है। मनुष्य को इतना कठोर बनाने वाली जो स्थिति बाध्य कर देती है उसका ही नाम गरीबी है।

मनुष्य को वज्र से भी सख्त कराने वाली स्थिति गरीबी, समाज के लिये एक शाप बनकर रह गई है जिसके कारण मनुष्य की स्वास्थ्य मानसिक स्थिति बिगड़ती है और वह धीरे--धीरे गल जाता है, और समाज तथा इस संसार से गया बीता बन जाता है। गरीबी के कारण वह बुरे से बुरे काम करने को उद्दीप्त हो जाता है। जिसके कारण समाज का ही नहीं वह अपना भी नुकासन कर लेता है।

गरीबी के कारण ही लक्खू चोरी करता है-- "रात के समय बाग से उसने कुछ आम तोड़े थे। आम ले जाने की तैयारी मे था, कि मालियों ने उसे घेर लिया और पकड़ लिया।"[1] और लक्खू का सारा परिवार अभाव के गर्त्त में दफनाया गया। ""अन्धे का भेद" कहानी की सूरदास की पत्नी भी वेश्या व्यवसाय करती है। आर्थिक अभावात्मक स्थिति के कारण कितनी विकट समस्या मनुष्य पर आती है। और वह समाज की कितनी विकट समस्या बन जाती है। एक ओर पैसा न होने के कारण मनुष्य पशु से भी बदतर

---

1. जैनेन्द्र कुमार : छठा भाग-- चोरी, पृ0 133 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1981

जिन्दगी जीता है और दूसरी ओर विपुल धन है। वह अपने पैसे के बल पर सब कुछ खरीदना चाहता है। वह प्रेम के बजाय पैसे के बल पर प्रेम को खरीदना चाहता है। "देखती तो हो मैं लखपति हूँ। करोड़पति होने की तरफ बढ़ रहा हूँ। ऐसा आदमी प्रेम खरीद सकता है।"[1] पैसे के बल पर हर चीज की खरीदने की चाह रखने वाला, व्यक्ति तथा वर्ग शोषक है। जो व्यक्ति का शोषण करता रहता है। जैनेन्द्र ने लिखा है--

"धनोपार्जन जिनका चिन्तन सर्वस्व है ऐसा वर्ग क्रमशः मान्यता से गिरता जा रहा है। कल करोड़ो में जो खेलता था आज चार सौ रूपये पाने वाले मजिस्ट्रेड के हाथों जेल भेज दिया जाता है। यह वर्ग शोषक है, असामाजिक है।"[2]

शहर में जाकर पैसा कमाने के लिये ब्राम्हण ठाकुर आदि उच्च जाति लोग भी अपना जातीय गर्व भूलकर मजदूरी करने के लिये विवश हो जाते है किन्तु उनका परिवार गॉव में रहता है। गॉव के पारम्परिक समाज में रहता है। एक ब्राम्हण नगर मे जाकर ठेला चलाये और ठेले पर मछलियां ढोने का काम करें। गॉव मे ब्राम्हण जाति उसे स्वीकार नहीं करती। उसकी प्रतिष्ठा ही कम नही होती, जाति मे सम्मान भी कम हो जाता है। जाति में सम्मान रक्षा के लिये उसे झूठ बोलना पड़ता है। कुछ ऐसी स्थिति लक्ष्मीनारायण लाल की कहानी "हंस राजा हसरानी"[3] मे चित्रित हुई है। कहानी का नायक तिवारी जी बम्बई में ठेले पर बर्फ ढोता है और समुद्र के किनारे ले जाकर बर्फ तोड़कर मछलियों की पैकिंग करते हैं। माल को ढोकर बाजार तक पहुंचाते है किन्तु गॉव मे उनकी

---

1. जैनेन्द्र कुमार--चतुर्थ भाग-- घुँघरू-- पृ0 33, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1982
2. जैनेन्द्र कुमार, आठवॉ भाग, घुँघरू, पृ0 92 पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1985
3. एक और कहानी : डा0 लक्ष्मीनारायण लाल, पृ0127

आर्थिक स्थिति की प्रतिष्ठा है, सम्मान है लोग यही जानते है कि तिवारी बम्बई मे दूध का व्यापार करते हैं। उनके मित्र मुंशी जी चोरी से उनका यह भेद जान लेते है, और ब्राम्हण की यह दुर्दशा देखकर उन्हे गहरा आघात लगता है। गॉव में उन्हीं के द्वारा तिवाराइन को यह भेद मालूम होता है। तो मुंशी जी की जुबान बन्द रहे। इसलिये वह उन्हे अपने गले की सोने की कंठी दे देती है। तिवारी ब्राह्मण ठेला ढोये। मछली का व्यापार करे इससे तिवाराइन को भी मानसिक पीड़ा होती है और अपनी अच्छी आर्थिक स्थिति मे भी उसे मानसिक असन्तोष, पीड़ा तथा हीनभावना का दुख होता है। इस कहानी में कहानीकार परिवर्तन के यथार्थ को स्वीकार करना ही आवश्यक मानता है। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि अर्थतत्व ने जातीय गर्व के मूल्य का अवमूल्य कर दिया है।

शिवप्रसाद सिंह अपने ग्रामीण जीवन को ग्रहण करते हैं उनका कथन है - "गॉव के जीवन की धड़कने जो अब भी सड़ी–गली परम्परा और कूटस्थ रुढियो का कचरा ढोती हुई कराह रही है मेरे कहानीकार के लिये सदा एक चुनौती रही है....... दिक् और कालकी अछोर सीमा में जीने वाली सस्कृति जो गावो मे बिखरी है। स्वभावत जिन्दगी की मरोड़ों से ज्यादा भरी--भरी होती है, क्योकि हजारो साल से चली आती हुई परम्परा का बोझ वहाँ जितना जटिल हो जाता है उतना शहरो मे नहीं है। वैज्ञानिक युग के धक्के शहर की तारकोली सड़को पर जिस तरह की रपटन पैदा करते हैं उससे कही अधिक पिछलता गॉव की उन गलियों में है जहाँ रुढियों के नाबदान निरन्तर आधुनिकता के रथ चक्रों को अपनी अंकिलता में डुबो लेते हैं।"[1]

---

1. मेरी प्रिय कहानियॉ -- शिवप्रसाद सिंह-- पृ0 6--7

स्वाधीनता परवर्ती ग्राम्य जीवन मे आने वाली यान्त्रिकता का सकेत मिरदगिया के इन शब्दों में मिलता है। "जेठ की चढ़ती दोपहरी में खेतो मे काम करने वाले भी अब गीत नहीं गाते है। कुछ दिन में कोयल भी कूकना भूलजायेगी ? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है। पॉच साल पहले तक लोगो के दिल में हुलास बाकी था। पिछली वर्षा में भीगीं हुई धरती के हरे भरे पौधों से एक खास किस्म की गन्ध निकलती थी। तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती थी रस की डाली।[1]

कुछ इसी प्रकार की यांत्रिकता से उपजा अकेलापन सामाजिक सम्बन्धो में भावनात्मक लेनेदेन के अभाव में बढ़ने लगा है। रामदरश मिश्र की कहानी एक और यात्रा" का पात्र दिनेश शिक्षित है। गॉव के समाज गॅवार--स्वार्थी आचरण का बोध उसे आतकित करता है। वह सन्तुलन खो बैठता है। एक खोखला अभिमान शिक्षित ग्रामीणों मे बजा रहा है। दिनेश कहता है कि-- "गॉव वाले बड़े चालाक हो गये हैं पता नही कौन अपने गिलाश में जहर मिलाकर पिला दे।"[2] कहानी का नायक गॉव की कच्ची आदिम गन्ध खोजता है। आत्मीयता ढूढ़ता है, किन्तु फालतू आदमी की तरह उनकी आत्मीयता के स्वप्न मे सोया हुआ जहॉ की तहॉ खड़ा रह जाता है।

यशपाल ने रूढियों, अन्धविश्वासो और आर्थिक अभावों मे लिथड़ी--लिपटी ग्रमीण कस्बाई समाज की देह से खोखली परम्पराओं और विश्वासों का परदा हटाया था। स्वातन्त्योत्तर काल में उभरने वाले कथाकरों ने उसका निरीक्षण, परीक्षण करके उपचार हेतु साधन एकत्र किये हैं। शिवप्रसाद सिंह की कहानी "कर्मनाशा की हार"[3] कहानी मे

---

1. ठुमरी : फणीश्वरनाथ रेणु, पृ0 12
2. खाली घर : रामदरश मिश्र, पृ0 143
3. मेरी प्रिय कहानियॉं -- शिवप्रसाद सिंह पृ0 24

ग्रामीण समाज के क्रूर रुढ़ आचरण पर लुहार के हथौड़े की चोट मारी है। कर्मनाशा की हार में सीधे साधे मानवीय प्रेम की उदारता को समाज पाप कहकर उगल रहा है। और कर्मनाशा नदी की बाढ़ के कारण विधवा फूलमती के मातृत्व को बताकर उसे और उसके बच्चे को नदी को बलि देने का फैसला कर दिया है-- "आज जैसे मनुष्य ने पसीजना छोड़ दिया था अपने--अपने प्रणों का मोह इन्हें पशु से नीचे उतार चुका था।[1]

सामूहिकता व्यक्ति के विरूद्ध सब अधिकारों का मनमाना उपयोग कर सकती है और व्यक्ति केवल सिसक सकता है। किन्तु मानव के इसी दरिन्देपन में से कथाकार की दृष्टि भैरो पाण्डेय के रूप में प्रकट हुई। अन्धविश्वास और रुढियो के पंक से उपजा है-- आधुनिक युगबोध। पाण्डेय कहता है - 'सुनो कर्मनाशा की बाढ़ दुधमुहे बच्चे और एक अबला की बलि दे देने से नहीं रूकेगी, उसके लिये पसीना बहाकर बाँधो को ठीक करना होगा।....... मैं आपके समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता, किन्तु मैं एक--एक पाप गिनाने लगूँ तो यहाँ बड़े सारे लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पड़ेगा.......।'[2] इसी प्रकार 'कलंकी अवतार' में भी कर्म को छोड़कर परम्परागत विश्वासों पर विश्वास के खोखलेपन को उघाड़ा गया है। 'ईश्वर के अवतार की प्रतीक्षा पर गहरी आस्था ने जिस अकर्मण्यता ने संस्कारों को गहरा दिया है, लेखकीय बोध उसे चुनौती देता है ; नये जमाने के लोग ही पुराने लोगों को ठीक करेगे दादा। गाँठ बाँध लो। हमें अवतार नहीं करतार चाहिये। करतार यानी अपना हाथ ही तारेगा हाँ।'[3] गाँवो में पीने के स्वच्छ जल भोज्य बस्तुएं तथा अच्छे आवास की आज भी कमी है। गाँव आत्मनिर्भर

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ -- शिवप्रसाद सिह पृ0 36
2. वही, पृ0 37
3. वही, पृ0 16

इकाई को रूप में विकसित हो गाँधी जी का यह सपना भी टूट गया। गाँव में स्थानीय साधनों के आधार पर छोटी योजनाये उनकी आवश्यकतानुसार विकसित करने के स्थान पर जो सामुदायिक विकास योजनओं का काल्पनिक एवं नकल किया गया कार्यक्रम अनपढ़ अशिक्षित, अभावग्रस्त और अंधविश्वासी ग्रामीणों पर लाद दिया गया था उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था जो हमारे हजारों वर्षो की गुलामी के बाद हमारी स्वतन्त्रता की देन है-- में बुद्धिजीवी, अनिश्चित असुरक्षित भविष्य, अस्थिर और आराजक वर्तमान किनारे खड़ा अपनी जिस नियति को देख रहा है उसका चित्र डा0 महीप सिंह के शब्दों में देखिये--

"भयंकर लूट खसोट के दौर हमने देखा। कल तक देश के तराने गाने वाला नेता, वर्ग सत्ता मिलते ही भूखे भेड़ियों की तरह धन और यश कमाने पर टूट पड़ा है। चारों तरफ अजीब सी अफरा--तफरी है। कोई भी मौका चूकना नहीं चाहता है। समय रहते सभी इतना एकत्र कर लेना चाहते हैं कि गद्दी न रहने पर कोई चिन्ता न रहे। इस काम में नौकरशाही की मिलीभगत ने उनकी पूरी सहायता की है। उसने बड़े--बड़े पूंजीधारी संस्थानों से उनका सम्बन्ध स्थापित करने के विचौलिए का काम किया है। परिणाम क्या हुआ.....उदासीन होकर हताश होकर।"[1] "युग परिबोध" में प्रकाशित 'एकोनोमिक एण्ड पोलिटीकल वीकली' के एक लेख का यह अंश महत्वपूर्ण है-- यों तो पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों पर इन महीनों में भूख की मार हर साल पड़ती है लेकिन 1943 ई0 के भ्यानक अकाल के बाद से अब तक के 50 वर्षों में इतनी भुखमरी कभी नहीं फैली थी। ....और इस के बीच लोग भीख माँग रहे हैं, अपने सगे सम्बन्धियों को लोग त्याग

---

1. साहित्य और विद्रोह-- सं0 डा0 नरेन्द्र मोहन देवेन्द्र इस्सर, पृ0 35

रहे हैं। अपनी स्त्रियों की आबरू बेंच रहे हैं। इस प्रकार 1974 मे 1943 की पुनरावृत्ति हो रही है।"[1] बंगाल में नक्सलवादी हिंसक आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे भी आर्थिक विषमता क्रियाशील थी। देश का गहराता हुआ आर्थिक सकट निरन्तर विस्तृत और भयानक हो रहा है।

पिछले कई वर्षों से बिहार में बाढ़ और सूखे जैसी दैवी विपत्तियों के कारण बिहार की आर्थिक स्थिति देश के लिए चिन्ता का विषय रही है। एक प्रान्त या कुछ प्रान्तों में सकट पूरे देश को प्रभावित करता है। देश की आर्थिक स्थिति का एक चित्र देखिये-- "पूँजीवादी सरकार की सामन्तवाद से साझेदारी और विदेशी पूँजी से गठबन्धन ने हमारी अर्थ व्यवस्था को अस्त--व्यस्त कर दिया है। रूपये की कीमत सौ से 27.6 पैसे रह गई है। .....मँहगाई के सही अनुपात में वेतन के न बढ़ने के कारण लोगो की हालत दिन पर दिन बदतर होती चली जा रही है आर्थिक मन्दी के इस दौरे में ढाई लाख कपड़े की गाँठे, साढ़े तीन लाख टन स्टील व पचास प्रतिशत इन्जीनियरिग का सामान गोदामों में पड़ा है, जिसके परिणाम स्वरूप चारों ओर "ले ऑफ" और छँटनी का बाजार गरम है। पिछले दो वर्षो में रजिस्टर्ड बेरोजगारों की संख्या 52--19 लाख से 86.4 होकर 65 प्रतिशत बढ़ गई। जिसमें लाखों विज्ञान और इन्जीनियरिग के ग्रेजुएट पोस्ट ग्रेजुएट भी शामिल है। मँहगाई और बेकारी ने गरीबों की संख्या 50 प्रतिशत से बढ़कार 70 प्रतिशत कर दी है। इस सबका नतीजा यह है कि हजारों व्यक्ति बेघर होकर शहरों की ओर दौड़ रहे हैं। लाखों जड़े, शाल, भरे हुये जानवरों का मॉस और पत्तियाँ खा रहे हैं। एक कटोरा चावल के मांड़ के लिये मीलो लम्बी लाइन लग जाती है। लाखों औरते अपने जिस्म की

---

1. युग परिबोध, जनवरी 1975 सं0 आन्नन्द प्रकाश, पृ0 8--10

तिजाहत कर रहीं है। करोड़ों लोग भीख माँग् रहे है। माँ बाप अपने बच्चों को बेंच रहे हैं तथा सामूहिक आत्मघात की घटनायें सैकड़ों से हजारो फिर लाखों तक पहुँचती जा रही है।"[1]

आर्थिक अभावों और हमारे उपलब्ध साधनो और मौलिक विकास तथा प्रतिस्पर्धात्मक उपभोग की प्रवृत्ति को ध्यान मे रखा है। उत्पादन बढ़ा। उपभोग के लिये धन की कमी। अतः आर्थिक संकट की स्थिति उत्पन्न हुई है और मानवीय सम्बन्धों में भी तनाव, संघर्ष और कटुता बढ़ी है। हमारी योजनाओ के लक्ष्यों पर आधार मानवीय सुख सुविधाओं का विकास न होकर वित्तीय उपलब्धि मानकर लिया गया है और इसका परिणाम श्रीकान्त मिश्र के शब्दों में– "इस देश में पूँजीवादी अर्थप्रणाली रुक गई है। जनसाधारण में इससे बहुत निराशा और असन्तोष है।"[2]

मुक्तिबोध की कहानियों में मध्यम वर्ग मे उस व्यक्ति या व्यक्तियो की पीड़ा का बोध होता है जो शिक्षित है : सभ्य है। वह मानवीय संवेदना और ऊँचे मानवीय मूल्यों से जुड़ा है। समझौता करना या अवसरवादी एवं सुविधाभोगी और अहं को बेचना संभव नहीं है और वह भौतिक सुखों की कीमत के रूप में अपनी मनुष्यता का सौदा नही कर पाता। आर्थिक स्थितियों के परिवर्तन के कारण अपने आपको 'मिसफिट' पाता हे। एक निराशा वेदना और अनकही व्यथा उसके परिवार के जीवन पर छा गई है। सम्बन्ध 'काठ' होकर रह गये हैं। आर्थिक अभाव में स्त्री--पुरूष एक--दूसरे को मूल शिकायतों भरी निगाह से देखते हैं। यह स्थिति मुक्तिबोध की कहानी "काठ का सपना" मे अभिव्यक्त

---

1. युग परिबोध, जनवरी 1975, सं0 आनन्द प्रकाश पृ0 14
2. वही पृ0 17

हुई है। आज की स्थिति में पिटा हुआ बुद्धिजीवी इस स्थिति का सामना करता है।[1] -- लेकिन उन दोनों में न स्वीकार है न अस्वीकार 'सिर्फ एक सन्देह है, यह सन्देह साधार है कि इस निष्क्रियता में एक अलगाव है। एक भीतरी अलगाव है। अलगाव में विरोध है, विरोध में आलोचना है, आलोचना में करूणा है। आलोचना पूर्णत स्वीकारणीय है, इसे इस पुरूष ने कभी पूरा नहीं किया। वह पूरा नहीं कर सकता।"[1]

"इसे न कर पाने" में व्यक्ति की निष्क्रियता या निठल्लापन नही है वरन् अमानवीय परिवेश और आर्थिक संस्कृति की क्रूरता का स्वीकार है, विरोध की पीड़ा मनुष्यता का संघर्ष है और संघर्ष की पीड़ा है। अपनी पत्नी को फटेहाल देखकर वह करूणा से भर उठता है और उसके विरोध को अन्जाना सम्मान देने लगा है-- "उसका हृदय एक अन्जानी गूढ़ करूणा की सूचना से भर उठा। ......हॉ उसका पेट उसकी त्वचा में तो घरेलू बास थी। उसने उसे अपनी बांहों में भर लिया, और वह मन ही मन उस पूरी गरम चिलचिलाती हुई पृथ्वी को याद करने लगा। जिस पर वह बेसहारा मारा--मारा फिरता है। क्या यह पृथ्वी उतनी ही दुखी रही है। जितना कि वह स्वय है।"[2] और दोनो का सम्बन्ध बस एक बच्ची के कारण है। वह भी ठहर गया है, जड़ हो गया है। दोनों स्त्री पुरूष आर्थिक कठिनाइयों के जल विप्लव में काठ की तरह बहते जाते है और पुरूष कभी आर्थिक आवश्यकतायें पूरी नहीं कर पाता।

मन्नू भण्डारी की कहानी "सजा" में भ्रष्ट राजनीति के कारण एक ईमानदार सभ्य सुसंस्कृत सरकारी कर्मचारी को चोरी के झूठे अपराध में जेल जाना पड़ता है।

---

1. काठ का सपना-- मुक्तिबोध, पृ0 53

2. वही, पृ0 53

उसके पास इतनी भी जमा पूँजी नहीं है और. न ही कोई अन्य व्यवस्था है कि वह माँग कर सके और अपनी पत्नी तथा बच्चों को आर्थिक संकट से बचा सके। अतः मुकद्दमे का खर्च तो है ही। बच्चे चाचा के पास भेज दिये गये हैं। बड़ी बेटी ने पढ़ना छोड़ दिया है। वह चाची को सब तरह से प्रसन्न करने का प्रयत्न करती है। छोटा मुन्नू भी चाचा से अकारण पिटता रहता है। डर से सहमा रहता है। वृद्ध पिता ने गाँव जाकर 25 रू0 की नौकरी कर ली है। हिसाब में गलती के कारण वह भी छूट गई। सही व्यक्ति को गलत व्यवस्था से ऐसा आघात लगा कि उसकी सोचने समझने और महसूस करने की मानो शक्ति ही चली गई। युवा पुत्री माँ की खाट पर पड़े और पिता को निस्पन्द, निष्चेष्ट, भावहीन, आत्मलीन सीलन भरी कोठरी में पड़ा देखती है, तो कहती है–

"इससे तो पापा सचमुच ही आफिस का रूपया मार लेते तो अच्छा होता। कम से कम मुन्नू को तो अपने पास रख लेते। इस उमस में तो चमड़ी जैसे उबली जाती है। ईमानदारी करके कौन सा बड़ा सुख पा लिया।"[1] इस प्रकार से यह सत्य प्रतीत होता है कि आर्थिक भार जीवन मूल्यों पर प्रहार करती है। इस कहानी में भी ईमानदारी जैसे उच्च जीवन मूल्यों को आर्थिक राजनीति ने रौंद डाला है। व्यक्ति की समाज में स्थिति का निर्धारण आर्थिक सामर्थ्य से होता है और आज का बुद्धिजीवी अपनी इसी स्थिति के प्रति संवेदनशील है।

महीप सिंह की कहानी "बेसुर" में भी कहानी का नायक बुद्धिजीवी है। लेखक भी है– जब उस व्यक्ति की तुलना में आता है। जो कभी उसके घर टाइप करता था और उसके पुराने जूते तथा पुराने कपड़े पहना करता था किन्तु वह अपनी हाथ की

---

1. यही सच है– मन्नू भण्डारी, पृ0 69

सफाई से और रूपया कमाने की कला से फ़िल्म प्रोड्यूसर बन गया है। उसने ''दो लाख रूपये का फ्लैट ले किया है .....और अब उसके पास इम्पोर्टिड गाड़ी है ......और नाज बिल्डिंग में उसका एयर कण्डीशण्ड आफिस है।''[1]

''मुझे बड़ी तिलमिलाहट हुई थी। जैसे मै उसके हाथों पिट गया था।''[2] यह पिट जाने का अहसास ही व्यक्ति को अर्थ लोभ के लिए भ्रष्टाचार तथा अन्य असामाजिक साधन अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। अथवा अवसाद निराशा घुटन के कारण निष्क्रियता को जन्म देते हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर आधुनिक कहानियों की इस विवेचना से यह तपन उभरती है कि आधुनिक हिन्दी कहानीकारों की अनेक कहानियों में स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक नियोजन और जनता के आर्थिक उत्थान की मनोदशाओं को सार्थक अभिव्यक्ति मिली है।

****

---

1. कुछ और कितना-- महीप सिंह, पृ0 34
2. वही

अध्याय चतुर्थ (अ)

ग्रामोद्योग तथा सहकारिता आन्दोलन का भारतीय जीवन के आर्थिक विकास पर प्रभाव

ग्रामोद्योग तथा सहकारिता आन्दोलन का भारतीय जीवन के आर्थिक विकास पर प्रभाव

स्वतन्त्रता के बाद गॉवों में कुटीर उद्योग की दिशा में कुछ प्रगति हुई। चरखे का सम्मान नि:सन्देह बढ़ा और घरों में इसका सादर प्रवेश हो गया। खादी ग्रामोद्योग का विशेष विकास हुआ है।

सहकारिता आन्दोलन ने जहॉ विकास को गति दी है। वहीं पर आर्थिक भृष्टाचार को भी अपनाया है। सहकारिता पर लोगों की टिप्पणी है कि --- "भारतीय सहकारी कांग्रेस का उदघाटन करते हुये 8 अक्टूबर 1971 में इन्द्रा गॉधी (प्रधानमंत्री) ने कहा था सहकारिता एक विशेष किस्म के स्वार्थी लोगों के निहित स्वार्थ का साधन बन चुका है। ये तो निर्धन लोगो की पर्याप्त मदद भी नहीं करते यद्यपि ये ऐसा करने का बस दावा करते है।"[1] अर्थात् इसने गरीब वर्गो की कोई महत्वपूर्ण सेवा नहीं की है।

गांव के सर्वसाधारण का साक्षात्कार स्वतन्त्रता के बाद पचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से हुआ है। सन् 1951--52 में अखिल भारतीय ग्राम साख सर्वेक्षण समिति द्वारा स्थिति के हुये सर्वेक्षण से पता चला कि ग्रामीण अनेक कारणों से ऋण आदि लेकर साहूकार महाजन के ही आश्रित रहे। केवल 3 प्रतिशत ऋण साख--समितियों से लिये गये इस दोष को दूर करने के लिये तृतीय पंचवर्षीय योजनायें किसान की आवश्यकता पूर्ति के परिप्रेक्ष्य में अपेक्षित सुधार किये गये। ऋण और विक्रय--व्यवस्था के अतिरिक्त चकबन्दी, सिंचाई, उन्नत बीज खाद, सुधरे औजार, पशुधन उद्योग धन्धे और गृह निर्माण आदि में किसान की सहायता के लिये भी समितिया और बहुउद्देशीय सहकारी समितियॉ बनी।

---

1. प्रधानमंत्री श्रीमती इन्द्रा गॉधी के भाषण से (सूचना प्रसारण, दिल्ली विभाग, नई दिल्ली)

बीज गोदाम गाँव के किसान का एक नया विश्वसनीय कृषि मन्दिर हो गया। सन् 1956 के बाद रिजर्व बैंक ने राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन) कोष का निर्माण कर लिया तो स्थिति में और उपयोगी बदलाव आया। 1959 के बाद सहकारी सेवा समितियाँ बन गई और उत्पादन आवश्यकता, खाद बीज आदि के लिये सुविधायें और बढ़ी। फसली जमानत की भी व्यवस्था हुई और महाजनों का एकाधिकार पूर्ण रूप से खत्म हो गया। सन् 1966 तक 5 लाख गाव साख समितियो में आ गये। 1965--66 में 345 करोड़ ऋण दिया गया, और इस अवधि में देश भर में 3200 विक्रय समितियों द्वारा 360 करोड़ की विक्रय व्यवस्था की गई।

इतना होते हुये भी अभी ग्रामीणों की उदासीनता और जड़ता का उन्मूलन पूर्ण रूप से नहीं हुआ। अशिक्षा, धनिकों के प्रभुत्व परम्परा, जातिवाद, जटिल नियम, गुटबन्दी, नौकरशाही, राजनीति और राजनीतिज्ञों के प्रवेश और हस्तक्षेप आदि से मुक्त होने पर ही प्रभावशाली लाभ सम्भव है। धीरे–धीरे इस दिशा में ग्रामीण खुल रहे है। वे इस विकासी अखाड़े में अभी अन्धसघर्षरत हैं। उनमें ''स्पोर्टस् मैन स्पिरिट'' आनी शेष है। ऐसा होने पर ही वास्तविक सहकार पूर्ण उन्नत जीवन का मार्ग गाँवों में प्रशस्त होगा।

तीसरी योजना के अन्त में इसमें 40 लाख व्यक्ति लगे थे। जबकि कुल बेकारी 1 करोड़ की थी। चौथी योजना के आरम्भ में हथकरधा एक करोड़ लोगो की जीविका बन गया है। बताया गया है कि औसत एक बेकार व्यक्ति को काम देने के लिये बड़े उद्योग लगाने पर कई करोड़ का व्यय बैठेगा, जबकि लघु उद्योग, अथवा कुटीर उद्योग में एक हजार पर्याप्त होगा। कताई-बुनाई मिट्टी का काम, चर्म और काष्ठकला, साबुन, गुड़ मधु और तेल आदि उद्योगो के नये सिरे से विकास के साथ गांव में एक बड़ी समस्या उठी। कि इन उद्योगों में जाति स्तर पर परम्परा से लगे हुये लोग बेकार होने लगे।

औद्योगिक बस्तियों का प्रसार अब गांवों में भी होने लगा। सरकारी औद्योगिक समितियों का योग भी कुटीर उद्योग को मिलने लगा। दूसरी पंचवर्षीय योजना से अम्बर चरखे को प्रोत्साहन मिला। चौथी योजना में 670 करोड़ की भारी व्यवस्था तब अधिक फलवती हो सकेगी। जब कृषि को उद्योग व्यवस्था के साथ जोड़ने में सफलता भी मिलेगी ओर किसान फल, तरकारी, दूध, कपास, गन्ना आदि का उद्योग व्यवसाय के स्तर पर विशाल उत्पादन करने लगेंगे। खेती और उद्योग से उसके दोनों हाथ खुल तो गये हैं। भूमि सुधार से खेती का लाभ मिला, साधन सुविधा सम्पन्न होने के कारण नये उद्योग का लाभ भी उसी को मिला। इसलिए गांव का यह वर्ग जो भूमिहीन है। अपनी अभिशप्त नियति के जाल से उबर नहीं सका। इस वर्ग के उबार के लिए आचार्य विनोबा भावे ने भूदान आन्दोलन चलाया और ''सबै भूमि गोपाल की'' का नारा लगा।

इस नारे के अतिरिक्त सरकारी नीति के रूप में एक और आकर्षक नारा सामने आया, ''भूमि जोतने वालों की।'' वास्तव में यह समय की बलवती माँग है। बिना भूमि सुधार हुए विकास में गति नहीं आने वाली है। अन्य सामाजिक कारणों से भी भूमि सुधार आवश्यक था। संयुक्त परिवार के ह्रास से खेतों के टुकड़े--टुकड़े होना कृषि पर भार और बढ़ती आबादी जैसी चुनौतिया सामने थी। सन् 1970 तक देश में 1 करोड़ 75 लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी हो चुकी थी। चकबन्दी से आर्थिक लाभ तो हुआ ही एक जबरदस्त मानसिक बदलाव भी आया। परम्परागत पैतृक भूमियाँ अदल--बदल हो गईं और एक जकड़न टूटी। भूमि के साथ लगा अनन्य अपनत्व मिला। प्रत्यक्ष लाभ से अन्य नये सुधारों के प्रति आस्था जगी। यद्यपि चकबन्दी के भ्रष्टाचारों से गाँव हिल गये परन्तु सब मिलाकर लाभ ही रहा।

''समाजवादी दलों में सहकारी संस्थानों का नियोजन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी पड़ती है। भारत में स्वार्थों के आगे न आ जाने के कारण सहकारिता की आर्थिक प्रगति पीछे रह गई है। छोटे कृषक और खेतिहर श्रमिक इससे पूर्ण रूप से कहते हैं। नगरों में भी जब

साधारण सहकारिता के प्रति उदासीन है। वस्तुतः गांव में सहकारी समितियाँ केवल आर्थिक दृष्टि से उच्च वर्गों के किसानों के हित साधन में ही संलग्न है। महाजनों और साहूकारों को तो इनसे ऋण मिल जाते हैं। परन्तु निर्धन और छोटे किसानों की इनसे साख नहीं मिल पाती।"[1]

जर्मनी, इटली, स्वीडन आदि देशों में सहकारिता को शानदार सफलता मिली है। भारत में ऐसा नहीं हुआ। यह दुखदाई है। सहकारी समितियाँ व्यवसायिक सिद्धान्तों का सच्चाई के साथ पालन नहीं करती है। शासन समितियाँ ऋण की वापिसी पर जोर न देकर प्रायः लेखा परिवर्तन में अपनी अकल का इस्तेमाल करती है। ये दुर्बलतायें वर्तमान आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक ढंग के परिणाम ही हैं।

देश में औद्योगीकरण के लिए सस्ता श्रम प्राप्त करना कोई समस्या नहीं है, पर पूंजी प्राप्त करना एक कठिन कार्य है। अतः आवश्यकता–वश ग्रामीण छोटे उद्योगों का विकास करना एक बीच का रास्ता है। विशेषज्ञों की राय है कि यदि टेक्नोलाजी अपनाई जाय तो ग्रामीण उद्योगों में रोजगार पाने वाले प्रति व्यक्ति पीछे लागत औसतन 1–000;-1, 500 रूपये आयेगी। इसी तुलना में अभी लघु उद्योगों में प्रति व्यक्ति लागत 4000 से 8000 रू0 है। आज जो व्यवस्था है। उसमें ग्रामीण क्षेत्रों का औद्योगीकरण बहुत कुछ स्थानीय रूप में उपलब्ध कच्चे माल जिसमें कृषि उत्पादन, वन्य उत्पादन, खनिज तथा पशु पालन से मिलने वाले उत्पादन शामिल है, के प्रशासन पर आधारित होंगे। आर्थिक जीव्यता बड़ी महत्वपूर्ण है। उद्योगों का चुनाव आर्थिक लाभ हानि की बातों द्वारा ही अभिप्रेरित व निर्धारित होगा।

विभिन्न ग्रामीण लघु उद्योग कार्यक्रमों में ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था पर जो पर्याप्त प्रभाव

---

1. दि एब्रील्यूसन आफ सरल डेवलपमेन्ट पालिसी : जान डब्ल्यू मीलौर : डेवलपिंग सरल इण्डियाः प्लेन एण्ड प्रैक्टिस : मीलौर : बीबर लेले और साईमन, पृ0 65

नहीं डाला है, उसका एक मुख्य कारण यह है कि ये सब जगह पहुंचने के उत्सुक थे, पर अपने सीमित श्रोतों के कारण सब जगह बंट नहीं सके। श्रोतों, तकनीकीपन, अवस्थापना और अन्य कारकों की सीमाओं में इसके अलावा कोई मार्ग नहीं है कि चयनात्मक उपगम् अपनायें अर्थात सर्वाधिक लाभप्रद लगने वाले श्रोतों में विरल आदानों का सकेन्द्रण कर उन क्षेत्रों को तीव्र व सघन विकास करें।

ग्रामीण उद्योग योजनायें भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में चलाई जा रही है– "49 ग्रामीण उद्योगों परियोजनाओं के अनुभव कहते हैं कि परियोजनाओं की सफलता बहुत हद तक बाहरी कारकों (अवस्थापना कच्चा माल बाजार की निकटता आदि) के साथ ही साथ स्थानीय कारकों (कौशल उधम उपयुक्त प्रशासन व्यवस्था उधार सुविधायें और संगठन) की मौजूदगी पर भी निर्भर करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापना स्थल सम्बन्धी अलापी के लिए उधमियों मुआवजा किसी न किसी प्रकार के प्रोत्साहन के जरिये देना ठीक है। प्रारम्भिक अवस्था में तो यह विशेष रूप से आवश्यक है। ग्रमीण उद्योग योजना समिति ने (हाल में) भारत सरकार के इस प्रोत्साहन के स्वरूप व मात्रा के विषय में चन्द्र महत्वपूर्ण सुझाव दिये है। जिनमें पंचवर्षीय ब्याज रहित ऋण ब्याज और बिजली पर उत्पादन तथा पॉच बर्षा तक औद्योगिक वस्तियों में किराया मुक्त कर गृह की व्यवस्था शामिल है।"[1]

गांवों में सन् 1959 से सहकारी खेती और सहकारी ग्राम व्यवस्था का नारा भी छन का पहुँचा है। मगर ऊपर--ऊपर उड़ता यह एक हवाई नारा मात्र है। इस तरह भूदान, ग्रामदान और प्रखण्डदान आन्दोलन है। सन् 1951 से ही भूस्वामियों के हृदय परिवर्तन के ये आन्दोलन चल रहे हैं। पर इससे भूमिहीनों की न तो भूमि भूख शान्त हो पाई है। और न गांवों में यथार्थ परिवर्तन के

---

1. ग्रामीण औद्योगीकरण : सम्भाव्यतायें और समस्यायें ले0 फखरूद्दीन अली अहमद : खादी ग्रामोद्योग वाषिकांक : अक्टूबर 1968

ये आन्दोलन आये। सन् 1961 तक इसमें 17.60 लाख टन हेक्टेयर भूमिदान 1967 तक 37520 ग्रामदान और 142 प्रखण्ड दान हो चुका है। सन् 1969 की समाप्ति के साथ भूदान में 42 लाख एकड़ भूमिदान में मिली। जिसमें 12 लाख एकड़ भूमिहीनों में वितरित कर दी गई। भूदान की भूमि को वितरण करने के कानून बन गये हैं। परन्तु उस दान के असर--बंजर टुकड़ों से एक भावात्मक अथवा प्रचारात्मक वातावरण मात्र निर्मित हो रहा है। बिनोबा का यह आन्दोलन भी सुखी सम्पन्न अथवा अभिजात सेवा व्यवसायी लोगों के ही पक्ष में पड़ा।

जमींदार और जागीरदार जिनके आधीन 40 प्रतिशत भूमि थी, समाप्त हो गये। सहकारिता द्वारा उनके उन्मूलन की तजबीज है। श्रम, बेगार, नजराना बेदखली, पिढाई, बसाव, उजाड़ ओर आतंक से काश्तकारों को मुक्ति मिली। उन्हें भू--स्वामित्व मिला। जमींदारों को खुद काश्त और व्यक्तिगत फार्म का अधिकार मिला। बेदखली ओर इन्दराज दुरूस्ती में पाँसा जमींदार का ही पड़ता रहा, और वे प्रायः भू स्वामी के रूप का मुआवजा वगैरह पाकर और जमते गये। विकास योजना भी उन्हें अनुकूल पड़ी। साधन, सुविधा, संस्कार और ढ़ाके का उपयोग कर हल--बैल की जगह ट्रैक्टर और खेत की जगह फार्म उन्होनें कर लिये। समस्या धरी रह गई देश के 2 करोड़ भूमिहीन खेति-हर मजदूरों की। उनके लिये कहीं कोई स्वराज्य नहीं आया। आधुनिक समय में भी विकसित देश भी प्रदूषण, शोषण, असमानता दूर करने आदि के दृष्टिकोण से कुटीर उद्योग धन्धो की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं। कुटीर उद्योगों में श्रम प्रबन्ध भी अपेक्षाकृत उचित ढंग से होता है। गाँधी जी भी यही चाहते थे कि सभी अपने उद्योग के स्वामी बनें। इसी से भारत का कल्याण हो सकता है।

इस संदर्भ में यह सुझाव दिया जा सकता है कि इन उद्योगों में लगे हुये लोगों के लिये प्रशिक्षण केन्द्र खोले जाये। जिनके द्वारा इन्हे अधिक कुशलता पूर्वक कार्य करने के योग्य बनाया जाये। उचित प्रबन्ध की जानकारी प्राप्त होने पर इन उद्योगों को अधिक कारगर सिद्ध किया जा

सकता है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि --- ''आधारभूत सुविधाओं के अभाव में आज हमारे गांवो की जो स्थिति बन चुकी है। उसमें इस प्रकार की औद्योगिक इकाइयों को भी सहज आशा नहीं की जा सकती।''[1]

उपरोक्त कथन की पुष्टि सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा0 मालकम् आदेशैया के उस भाषण से भी होती है। जो उन्होने 6 दिसम्बर सन् 1982 को संविधान क्लब नई दिल्ली मे दिया था। विषय था भारत की गरीबी तथा उसका सामना कैसे करें। इस भाषण में उन्होंने कहा था कि-- ''गांवों में अभी भी लगभग तीन चौथाई श्रमिकों के लिए कृषि के अलावा दूसरा धन्धा नहीं है और दुर्भाग्य यह है कि उसमें भी उनके पेट भरने लायक काम नहीं मिलता।''[2]

लघु कुटीर उद्योगों में पहली योजना की तुलना में छठी योजना में प्रतिशत व्यय आधा हो गया, जबकि बड़े उद्योगों जिसमें रोजगार देने की क्षमता अत्यधिक सीमित है। यह व्यय नौ गुना बढ़ गया। अतः आवश्यकता इस बात की हे कि औद्योगिक व्यवहार की नयी व्यवहारिक योजना तैयार की जाय और उसे पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी से लागू किया जाना चाहिये।

रेशम उद्योग जोभारतीय उच्च दस्तकारी का प्रतीक रही है, इसमे भी विनियोग की दर चींटी की गति से बढ़ रही है, इसी प्रकार से जटा उद्योग तथा खादी उद्योग आदि ग्रामोद्योगो मे भी सार्वजनिक विनियोग अत्यधिक कम रहा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि योजनाकारों को ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों पर अधिक विनियोग करना चाहिए तभी हमारा देश प्रगति कर सकता है और इस तरह गरीबी दूर की जा सकती है। गांधी जी ने भी ऐसे छोटे ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने की बात कही है। वे कहते हैं कि--

---

1. एम0आर0 कोलालहाटकर-- रूलर इन्डस्ट्रियलाइजेशन, योजना, मार्च 79, पृ0 12
2. खादी ग्रामोद्योग पत्रिका, अंक 6, मार्च 1985, पृ0 244

"छोटे और अर्थ-व्यवस्थित उन सारे ग्रामीण उद्योगों की ओर आपको ध्यान देना चाहिए, जिन्हें प्रजा के प्रोत्साहन की जरूरत है। अगर इनको बढ़ावा देने और टिकाये रखने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया तो ये नष्ट हो जायेंगे।"[1]

लेकिन आज बड़े पैमाने पर चलने वाले उद्योग अपने माल को तेजी से बाजारों में पहुंचा रहे हैं और इन छोटे उद्योगों में से कुछ को पीछे की ओर धकेल रहे हैं। वास्तव में इन्हीं छोटे उद्योगों की मदद की सख्त जरूरत है। इस प्रकार से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् भी कुटीर उद्योगों में ह्रास की प्रवृत्ति पाई गई है। पूॅजी विनियोग की गति में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था इससे पूर्णतया अव्यवस्थित हो गई है।

बड़े उद्योगों की तरफ जहाँ पर अधिक विनियोग किया जा रहा है। वहीं कुटीर उद्योग प्रतियोगिता से बाहर होते जा रहे हैं। योजनाकारों को चाहिए कि अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ स्वरूप देने हेतु कुटीर एवं लघु उद्योगों पर पूॅजी विनियोग को बढ़ायें, ऐसा करने से अधिक रोजगार सुलभ हो जायेंगे। जिसके परिणामस्वरूप अधिक आय होगी एवं गरीबी के कुचक्र मे फसी भारत की जनसंख्या अच्छा जीवन प्राप्त करने में सक्षम होगी।

गाँवों में रोजगार के अतिरिक्त साधन जुटाने की दिशा में ग्रामीण युवकों को ऐसे विभिन्न व्यवसायिक प्रशिक्षण दिये जाये, जो कि गांवों के लिए उपयुक्त हो तथा जिससे श्रम शक्ति का उचित उपयोग एवं प्रबन्ध किया जा सके। ट्रायसेम योजना इस दिशा में प्रभावी रही है। तथापि इन युवकों और ग्रामवासियों में अपनी सहायता, आपकी भावना पैदा की जानी चाहिए। देखना यह होगा, कि ग्रामीण युवकों में ट्रायसेम योजना, जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे इस दिशा में कितनी

---

1. सेन्ट परसेन्ट सवदेशी-- 1959, पृ0 4

प्रभावी रही है तथापि इन युवकों एवं ग्रामवासियों में अपनी सहायता आप" की भावना पैदा की जानी चाहिये। देखते हैं कि ग्रामीण युवकों में स्वयं पहल करने की इच्छा पैदा हो, परन्तु आज यह सहज प्रतीत होता है कि यह हमारी शिक्षा पद्धति का ही दोष है। वह युवकों को इस योग्य नहीं बनाती कि वे स्वयं आगे बढ़कर कुछ निर्णय ले सकें। जब तक युवा पीढ़ी इस ओर अग्रसर नहीं होगी। तब तक शासन या सरकार द्वारा युवकों को दी गई कोई भी सहायता कारगर सिद्ध नही हो सकती।

कुटीर उद्योगों में कम पूँजी लगाकर अधिक लोगों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है। अप्रैल 1950 में घोषित द्वितीय औद्योगिक नीति में भी कुटीर उद्योगों की सराहना की गई है। तथा इन्हें शीघ्र रोजगार प्रदान करने वाले उद्योग बताया है।

कुटीर उद्योग भारतीय उद्योगों की अर्थव्यवस्था में इसलिये सार्थक भी है। कि ये उद्योग श्रम प्रधान है न कि पूँजी प्रधान। कम पूँजी से इन्हें संचालित किया जाता है। उत्तर प्रदेश में सन् 1952 से जमींदारी गई। इसके पूर्व ये गरीब शिकमीं बटईया पर जीते थे। अब नये कानून के डर से वे इससे भी वंचित कर दिये गये। परती, बंजर, जंगल, तालाब और नदी आदि पर सरकार का अधिकार हो गया। और इस प्रकार सम्पूर्ण देश में17 करोड 20 लाख एकड़ भूमि सरकार को मिली, तथा 5 अरब 70 करोड़ जमींदारों को पुनर्वास मुआवजा मिला। भूमिहीनों को कुछ नहीं के बराबर मिला।"[1] "अब सीमाबन्दी का उन्हें आसरा है। परन्तु इस बीच कानून फिर

---

1. उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन के समय ग्राम समाज के पास 50 लाख एकड़ भूमि थी जिसमें से 36 लाख एकड़ अब तक बँट चुकी है। अधिकतम जोत सीमा आरोपण अधिनियम 1960 के अन्तर्गत 30 सितम्बर 1969 तक शासन को 1910 91 एकड़ भूमि पर कब्जा मिला है जिसमें शासन ने 105753 एकड़ भूमि आंबटित की है।

('आज' वाराणसी) 6 फरवरी 1960 सन् 1961 की जनगणना में देश के 18.84 करोड़ श्रमिकों में 13.53 करोड़ कृषि पर अबलम्बित है। और इनकी संख्या तेजी से बढ़ रही है। औद्योगिक वस्तियों, श्रमगहन कार्यक्रम, कृषि सहायक उद्योग, मजदूरी कानून, भूदान और भूमि वितरण के सारे प्रयत्नों के बावजूद इनकी समस्या ज्यों की त्यों है। जमींदारी उन्मूलन से जो भूमि सरकार के पास आई उसमें से 45 लाख हेक्टेयर भूमि भूमिहीनों में वितरित की गई।

उन्हें भू-स्वामियों के पक्ष में पड़ रहा है। बाग और बगीचे कच्चे माल की पैदावार भूमि सीलिंग में नहीं आयेगी।"[1] सो भू स्वामियों ने पूर्ण व्यवस्था, कागज दुरूस्ती और फाटबन्दी करा ली है। 1970 की अलाभकारी जोत (6 एकड़) लगान माफी अध्यादेश से भी मात्र लाभाभास हुआ। सो भी राजनीतिक कारणों से टॉय--टॉय फिस हो गया।

भूमिहीनों की ही समस्याओं का विस्फोट नस्लवादी आन्दोलन था और अगस्त, 1970 में संसोपा प्रसोपा और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टियों ने "भूमि हड़पो" का अभूतपूर्व आन्दोलन चलाया। किसान सेना और भूमिसेना के संघर्ष उभरे। इस आन्दोलन का एक परिणाम यह हुआ कि प्रदेशीय सरकारों ने फालतू पड़ी जमीन, ग्राम सभाओं की बंजरभूमि, बड़ी जमीदारों से निकली भूमि और भूमिदान से मिली। भूमि को भूमिहीनों में बॉटने का काम तेजी से करना शुरू कर दिया।

ग्राम पंचायत और विकासादि से सम्बन्धित शब्द जैसे ग्राम सभा, न्याय--पंचायत, सभापति, पंच सरपंच आदि भूमि व्यवस्था से सम्बन्धित ठाठ बाट के साथ कागज के गुलाम बन कर रह गये और कागजी विकास करने लगे। "ब्लाक का अर्थ "ब्लैक" जैसा हो गया। अधिकारी

---

1. फरवरी सन् 1970 में उत्तर प्रदेश के नये मुख्यमंत्री चौधरी चरण सिंह ने घोषणा की कि जोत की अधिकतम सीमा 40 की जगह 30 एकड़ होगी और उसमें बाग आदि भी सम्मिलित होंगे। इसी के साथ उन्होंने 5 बीघे के जोत की लगान मुक्ति की घोषणा की। आसाम मे जोत की अधिक सीमा 150 से 75 बीघा कर देने का सुझाव सन् 1970 में आया। बिहार में हदबन्दी कानून से 11 वर्ष में 7 एकड़ भूमि राज्य सरकार को मिली। यदि भ्रष्टाचार न हुआ होता तो 1 लाख एकड़ भूमि मिलती। बिहार में भू--स्वामियों पर जमीन बेचने के सम्बन्ध मे पाबन्दी लगा दी गई है। पश्चिमी बंगाल में 15 से 25 एकड़ तक जोत सीमा निर्धारित की गई।

कर्मचारी लूटते हैं और जनता भी उसी रास्ते लगी।. अहलकारों को खिलाओ, फिर अपने खाओ, यही विकास है। गॉव विकास के लिए प्रशिक्षित नहीं हुए।

"अहाग्राम्य जीवन भी क्या है? कोई व्यंग्य रूप में ही कह सकता है तथा क्यों न इसे सबका मन चाहें" का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। गॉव का एक बालक जब ऑखे खोलता है तो शहर के सपने के साथ। पढ़ने के लिए उसका शहर जाना अति श्रेष्ठ। विवशता ही गरीब अपने लड़कों को गॉव--गॅवई के स्कूलों में पढ़ाते हैं। जिस युग में हम सॉस ले रहे हैं उस वैज्ञानिक युग के सुख गॉवों में नहीं है। वहॉ आधुनिक जीवन की भूख नही मिट सकती है। गॉव मे वही रह जाता है जो बैल है। ये "बैल" भी जब जब उमड़ते हैं तो पगहा तुड़ाकर शहर भाग खड़े होते हैं। गॉव की हलवाही से शहर का रिक्शा चालन उत्तम। गॉव की मुदर्रिसी से शहर की दरवानी भली बढती आबादी टूटते संयुक्त परिवार शिक्षा का विकास और नये नये सम्पर्क सब नगरोन्मुखता को बढ़ाबा देने वाले हैं। कभी "गॉव की ओर लौटो" का नारा लगा था। स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्र के नव निर्माण के नशे में राजनीति और जन नेताओं के साथ गॉव की ओर लौटने के सन्दर्भ को जोड़ा था, परन्तु आज वह टूट गया।

ग्राम भाव में एक बहुत बड़ा महादोष यह आ गया है कि सभी अपने--अपने को न देखकर सारी शक्ति दूसरों को देखने में लगा देते हैं। पुरानी कहावत के अनुसार नगरों मे देवता और गॉवों में भूत--प्रेत रहते हैं। यह आज की स्थिति में बहुत सही और सटीक बैठता है। विकास के नाम पर जो कुछ थोड़ा बहुत बदलाव आया है वह है आर्थिक बदलाव; अन्यथा सामाजिक, सास्कृतिक और राजनैतिक प्रत्येक दृष्टि से गहरा पराभाव दीख रहा है। पहले वहॉ अशिक्षितो की भरमार थी और अब शिक्षित--अशिक्षितों की बाढ़ आ गई है। वहॉ ऐसा मोटा कूड़ा है जो बहुत जोर लगाने पर भी साफ नहीं हो पा रहा है।

गॉधी जी भारत के औद्योगीकरण के पक्ष में नहीं थे। उनका कथन था कि वह युद्ध

हिंसा वर्ग भेद और शोषण को प्रोत्साहन देता है तथा आदमी मशीन हो जाता है। प्रकृत्या भारत कृषि व्यवसायी उत्तम सिद्ध होगा। सम्पूर्ण देश की पूँजी और कुल श्रम का अधिकांश कृषि पर लगना चाहिए। औद्योगीकरण के प्रभाव से भारत की समाज व्यवस्था नष्ट हो जायेगी। इस प्रकार के विचारों के चलते भी योजनाओं में औद्योगीकरण के प्रमुखता मिली। वह तीव्र गति से हुआ और भारत विश्व के प्रमुख आठ औद्योगिक मुल्कों में से एक हो गया। जापान को छोड़कर वह एशिया मे औद्योगिक क्षेत्र में सर्वोपरि कहा जाने लगा इसी समय कुटीर उद्योगों को गांव तक ले जाने का प्रयत्न हुआ। चौथी योजना में गाँवों के विद्युतीकरण के लिए 250 करोड़ रूपयों की व्यवस्था की गई।

सन् 1957 में रूसी स्पुतनिक द्वारा अन्तरिक्ष युग शुरू हुआ और सन् 1969 में अमरीका ने चन्द्र विजय कर ली। इन बारह वर्षों में भारतीय गंगा में भी बहुत पानी वह गया। फरक्का, तिस्ता, तुंगभद्रा, चम्बल, कोयना, रिहन्द, नागार्जुन सागर, हीराकुण्ड, भाखड़ा और कोसी आदि परियोजनाओं की गगनचुम्बी आशायें निखरने लगीं। इस्पात, उर्वरक, भारी मशीन उद्योग, तेल, लोकोमोटिव, कोयला, लोहा और बिजली आदि के भारी बुनियादी उद्योगों ने देश की काया-पलट कर देने में सहायता की। इन उद्योगों के साथ चीनी, चाय, साइकिल, रेडियो, सिगरेट, घड़ी, मोटर आदि के उपभोक्ता उद्योगों का भी देश में विकास हुआ। सन् 1954 से देश ने अणु शक्ति के उत्पादन और शान्ति कार्यों के लिए उसके प्रयोग का श्री गणेश किया और ट्राम्बे के अणु रिएक्टर (भठ्ठी) अप्सरा का उद्घाटन हुआ। सन् 1951 में 75 करोड़ की पूँजी लगाकर फर्टिलाइजर कारपोरेशन ऑफ इण्डिया के अन्तर्गत सिन्द्री फर्टिलाइजर का विशाल प्रतिष्ठान उभड़ा। जिसने अमोनिया सल्फेट की आपूर्ति के क्रम में कृषक--भारत की बहुत मदद की। अकूत धनराशि नींव मे झोंककर उठे इन विशाल औद्योगिक प्रतिष्ठानों से एक सर्वथा नये समृद्ध भारत का उदय होने लगा।

हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड में 600 करोड़ की पूँजी लगी है और इसी प्रकार टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, बोकारो स्टील लिमिटेड, हैवी इन्जीनियरिंग कारपोरेशन लिमिटेड और हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड आदि दो--तीन दर्जन बड़े उद्योग स्वतंत्र भारत को एक नया गौरव और नई दीप्त देने में लगे हैं। इन महत्तम और औद्योगिक प्रतिष्ठानों के आगे लुहार का भाथी वाला हल--बैल का सनातन गॉव कितना हीन लगता है? एकदम उदास, सुनसान, धुध युक्त और मटमैला। आधुनिक आदमी जो जागतिक अथवा राष्ट्रीय प्रगति से सम्यक् रूप से अवगत है गॉव को क्यों न भुला दें? कहते हैं अब गॉव नहीं रह जायेगें। वेशक गांव नहीं रह जायेगें, परन्तु खेत खलिहान और बाग--बगीचे तो रहेगें? हरित उद्योग तो रहेगा? लेकिन अभी देश में जो है और जैसी प्रगति है उसे देखते वह दिन निकट नहीं प्रतीत होता। अभी तो उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों मे 90 लाख एकड़ भूमि में 77 लाख एकड़ भूमि कृषि योग्य है जिसमें 71 लाख एकड़ मे ही खेती होती है और इस में भी 57 लाख एकड़ भूमि ही नये पुराने साधनों से सिंचित है। भारत में जोती जाने योग्य भूमि 13 करोड़ 80 लाख हेक्टर है जिसमें केवल 20 प्रतिशत में ही सिचाई व्यवस्था है। सो भी पूर्ण अनिश्चित है।

जैसलमेर और बाड़मेर के गॉवों में दस वर्ष तक अवर्षण जन्य भीषण अकाल रहा। एक करोड़ लोगों की स्थिति सुधार के लिए 20 लाख नित्य व्यय होता रहा। अकाल पड़ने पर कीड़े--मकोड़े की तरह पट--पटाकर मरना भी ग्रामवासियों की ही स्थाई नियति है।

भारत वर्ष में जहाँ जल सम्पदा तो अमरीका के बराबर ही है पर कृषि भूमि उससे तिगुनी है, यह विवरण हम हसरत भरे मन से पढ़ते हैं। अपनी हल बैल वाली सनातन खेती के परिप्रेक्ष्य में यह विवरण अलादीन के जादुई चिराग के करिश्मे जैसा लग सकता है, पर धन्यवाद है इस कृषि क्रान्ति को जिसके प्रथम चरण की होनहार सफलताओं ने वह सब प्रत्यक्ष कर दिया, जिसे जीते फोर्ड कम्पनी की भविष्यवाणी अपनी धरती से दूर नहीं प्रतीत होती।

स्वातन्त्र्योत्तर ग्रामोद्योग कार्यक्रम में जैसे--जैसे प्रशासनिक यत्न सघन होते गये हैं वैसे--वैसे स्वयं सेवी जन--संस्थायें बिखरती गईं और उनके ग्राम सुधाराकांक्षी योगदान उत्तरोत्तर ढीले पड़ आज पूर्णतया चुक गये हैं। समूचा ग्राम विकास बाह्य आर्थिक दृष्टि से संकेन्द्रित रह गया है। आन्तरिक स्तर पर समाज का उत्थान सम्भव नहीं हुआ है। इसके विपरीत इस दिशा में गहरा ह्रास हुआ है।

अतः खादी उद्योग तथा कुटीर उद्योग की आवश्यकता का अनुभव किया गया है। फिर भी इस क्षेत्र के लिए समुचित ध्यान नहीं दिया गया है, जबकि इसमें रोजगार सृजन के काफी अवसर बढाये जा सकते थे। वाय0ए0 पण्डित राव के अनुसार-- "अधिकांशतः वे (खादी ग्रामोद्योग) मौसम के हिसाब से लोगों को आंशिक समय का काम देते हैं वे बहुत थोड़ी पूँजी पर कुटीरों में या आम कार्यशालाओं में सहायक या पूरक रोजगार प्रदान करते हैं। किसी न किसी रूप में कृषि के साथ उनका गहरा सम्बन्ध होता है।"[1]

गाँधी जी खादी को मात्र रोजगार प्रदान करने वाला ही नहीं मानते थे। बल्कि वे इसे आर्थिक असमानता, शोषण, गरीबी, द्वेष, गलत फहमियाँ, प्रतिस्पर्धा तथा अस्पृश्यता दूर करने वाला यन्त्र भी स्वीकार करते हैं। जैसा कि स्वयं गांधी जी ने कहा है -- "खादी केवल रोजी देने वाला यन्त्र है, इस ख्याल को हम छोड़ दें।"[2]

भारतीय अर्थ व्यवस्था में प्राचीन काल से ही कुटीर उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारत में ही नहीं अपितु विश्व के अन्य विकसित देशों में भी ऐसे उद्योग धन्धों का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुमान है भारत में औद्योगिक जनसंख्या का 90 प्रतिशत भाग कुटीर एवं

---

1. खादी एवं ग्रमोद्योग पत्रिका, वार्षिकांक, अक्टूबर, 1985, पृ0 17

2. गाँधी जी, खादी 1959, पृ0 246

लघु उद्योगों में नियोजित है। ''भारत में पंजीकृत लघु उद्योगों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 1961 में पंजीकृत उद्योगों की संख्या 36000 थी और यह बढ़कर 1972 में 2 लाख 60000 तथा 1981 में 8 लाख 6 हजार हो गई। 1982--83 में लघु स्तरीय इकाईयों का देश की अर्थ व्यवस्था में योगदान इस प्रकार रहा है[1] :--

1.	उत्पादन का अनुमानित सकल मूल्य	35000 करोड़ रूपये
2.	इस क्षेत्र में अनुमानित रोजगार	79 लाख
3.	निर्यात (अनुमानित)	2100 करोड़ रूपये

छठी योजना (1980--85) के अनुसार इन सभी उद्योगों का योगदान इस प्रकार रहा :--

"ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का योगदान"[2]

	मद	1978--79
1.	उत्पादन मूल्य (करोड़ रूपये)	
	(क) परम्परा उद्योग	4419
	(ख) आधुनिक लघु उद्योग	22310
	(ग) अन्य	4206
	कुल	30935

---

1. इण्डिया 1984, पृ0 377
2. छठी योजना (1980-85) पृ0 187

2.	रोजगार (लाख)	
	(क) परम्परागत उद्योग	132.84
	(ख) आधुनिक लघु उद्योग	75.60
	(ग) अन्य	25.00
	कुल	233.44
3.	निर्यात (करोड़ रूपये)	
	(क) परम्परा उद्योग	1175
	(ख) आधुनिक लघु उद्योग	1050
	(ग) अन्य	--
	कुल	2225

1979--80 में विनिर्माण क्षेत्र की कुल मूल्य वृद्धि में सभी प्रकार के लघु उद्योगों का योगदान 51% था। इस वर्ष लघु स्तरीय उद्योगों ने 2 करोड़ 34 लाख व्यक्तियों को रोजगार दिया। निर्यात के क्षेत्र में लघु क्षेत्र का देश के कुल निर्यात में एक तिहाई भाग था। जबकि बड़े और मध्य स्तरीय उद्योगों ने 45 लाख व्यक्तियों को रोजगार दिया। ये आकड़े लघु औद्योगिक इकाई की 1980 की परिभाषा के आधार पर है।"[1]

लघु उद्योगों के विभिन्न आर्थिक पहलुओं से सम्बन्धित आकड़ो को देखने से पता चलता है। इन उद्योगों का भारतीय आर्थिक जीवन में बहुत महत्व है कि स्वातन्त्र्योत्तर ग्रामोद्योग तथा सहकारिता आन्दोलन का भारतीय जीवन के आर्थिक विकास पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

---

1. छठी योजना (1980--85)

अध्याय चतुर्थ (ब)

आधुनिक हिन्दी कहानियों के ग्रामोद्योग तथा सहकारिता आन्दोलन का भारतीय जीवन के आर्थिक विकास के प्रभाव की विवेचना

"आधुनिक हिन्दी कहानियों में ग्रामोद्योग तथा सहकारिता आन्दोलन का भारतीय जीवन के आर्थिक विकास के प्रभाव की विवेचना"

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की मिश्रित अर्थ व्यवस्था की गांवों का शोषण पूर्ववत् जारी रहा, और खेती की मशीनीकरण से जमींदारी और राजाओं के पतन के बाद बड़े-बड़े किसानों का पूँजीपति वर्ग रूप में रूपान्तरण हुआ है। कृषि के मशीनीकरण से खेतिहर मजदूरों में बेकारी, गरीबी, शोषण और आवश्यकताओं के अभाव में उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। ग्रामीण युवा वर्ग शिक्षा और शहर की चमक-दमक से आकर्षित हुआ और ग्रामीण जीवन के त्रास के दबाव से शहरों की ओर तीव्र गति से दौड़ने लगा। डा0 रामदरश मिश्र जी लिखते हैं --

"आधुनिकता केवल समयगत परिवर्तन नही है वरन् वह मूल्य भी है। आज के युग में जीवन बदला है। जैसे अनेकों काल मे बदलता आया है, किन्तु आज के जीवन का आधुनिक होना केवल नई बात नई परिस्थितियों और वातावरण मे नया होना नहीं है। वरन् अनिवार्य भाव से उन अनेक विश्वास मूल्यों और भाव बोधों को छोड़ना है। ....जो सामन्तवाद या मध्यकाल की उपज थे और उस चेतना की स्वीकृति है जो विज्ञान काल की देन है। आधुनिकता गांव के ही परिवेश मे धीमी सी रफ्तार से धीरे धीरे अपने आप पूर्ण रूप से उभर रही है। कृषि पर पूर्णतया आधारित होने पर, गाव का जीवन काल कारखानों पर आधारित शहर के जीवन का निश्चय ही अपने ढाँचे समस्याओं और परिवेश मे भिन्न होगा।"[1]

राजकोषीय आयोग के अनुसार-- "एक कुटीर उद्योग वह (उद्योग) है जो कि पूर्णतः अथवा आंशिक श्रमिक के परिरार की सहायता से पूर्णकालीन अथवा अल्पकालीन

---

1. हिन्दी कहानीः अन्तरंग पहचान, रामदरश मिश्र, पृ0 64

व्यवसाय के रूप में चलाया जाता है।"[1] .इस प्रकार के अनेक कुटीर उद्योग धन्धे वह धन्धे कहे जा सकते हैं, जिनमें निम्नलिखित विशेषतायें पायी जा सकती हो।

(1) कुटीर उद्योग मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों से सम्बद्ध होते हैं।

(2) ये कृषि व्यवसाय से सम्बद्ध होते हैं।

(3) इनमें मानवीय श्रम का अधिकाधिक उपयोग होता है।

(4) ये उद्योग मुख्य रूप से परिवार के सदस्यों द्वारा चलाये जाते है।

(5) ये कम पूंजी पर निवेश पर आधारित है।

कुटीर उद्योग मे श्रम प्रबन्ध बड़े उद्योगो की अपेक्षा अधिक सरल है. क्योकि ऐसे उद्योगों में कम संख्या में श्रमिक कार्य करते हैं। 1948-50 में राजकोषीय आयोग ने कुटीर उद्योग धन्धों को चलने के लिए परिवार के सदस्यों को पर्याप्त माना है। अर्थात जिस उद्योग में दस से कम अर्थात् 9 श्रमिक तक काम करते हों। उस कुटीर उद्योग माना गया। इस प्रकार लघु उद्योग परिवार द्वारा ही श्रम पर आधारित होते है और इनका प्रबन्ध करना अधिक आसान होता है।

श्रम प्रबन्ध की दृष्टि से भी कुटीर उद्योगों का विशेष महत्व इसलिए है कि इसमें शोषण जैसी कोई गुजांयश नही होती। जहॉ परिवार के सदस्य ऐसे उद्योग में कार्य करेगें तो हड़ताल, तालाबन्दी से भी राहत मिलेगी। चूँकि उद्योग स्वयं तथा अपने परिवार द्वारा ही चलाया जाता है। तो उसमें उत्तरदायित्व की भावना से अधिक उत्पादन को बल मिलता है। साथ ही आर्थिक उद्देश्य से भी कुटीर उद्योग धन्धों का अच्छा प्रबन्ध

---

1. भटनागर एवं मित्तल– भारतीय अर्थ व्यवस्था की समस्यायें, पृ0 262

किया जा सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि कुटीर उद्योगों में तकनीकी सुधार किया जाय और प्रशिक्षण आदि की भी व्यवस्था की जाय, ताकि घर--घर में उद्योग कायम हो सके।

आज जापान हमारे सामने उदाहरण हैं। जहाँ कुटीर एव लघु उद्योग ही हैं, इन्हीं उद्योगों द्वारा वह विकसित देश बन पाया। वहाँ की सुदृढ़ अर्थ व्यवस्था का मुख्य कारण कुटीर उद्योग धन्धे ही है। उचित प्रशिक्षण के द्वारा श्रम की कार्यक्षमता को बढ़ाया जा सकता है तथा तकनीकी सुधार लाकर कुटीर उद्योग धन्धों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में गुणात्मक एव मात्रात्मक सुधार किया जा सकता है। भारत जैस कृषि प्रधान दश के लिए कुटीर उद्योग अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होंगे।

ग्रामीण समाज के जीवन में आम चुनावों वयस्क मताधिकार, सामुदायिक विकास आयोजनों द्वारा कानून व्यवस्था और राजनीति का सीधा हस्तक्षेप होने लगा है, वस्तुतः ग्रामीण जीवन में भी कृतिमता आने लगी है और उसकी सरल सपाट पहचान गहरी और दुरूह होने लगी है। डा० रामदरश मिश्र का कथन है कि-- "गाँवों और कस्बों के जीवन में भीतरी जटिलता धीरे--धीरे उभर रही है, उसमे भी एकाकीपन और सम्बन्धों की दुरूहता आ रही है। बौद्धिकता राजनीति और व्यवसायिकता ने बहुत हद तक उसकी भावुकता, सरल संवेदना और विश्वास प्रियता को आक्रान्त किया है तो भी गाँवो की संक्रान्ति अभी बहुत कुछ आर्थिक और सामाजिक है।"[1] डा० रामदरश मिश्र स्वयं ही कहानीकार हैं, उनका संवेद्य ग्रामीण समाज और व्यक्ति का जीवन रहा है। ग्राम से उखड़े हुए और शहर में अजनबी बने पात्र अपनी संक्रान्त मानसिकता के साथ बखूबी चित्रित हुए हैं। इनके

---

1. हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान : रामदरश मिश्र, पृ० 65

अतिरिक्त शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय और फणीश्वर नाथ रेणु, बदी उज्जमॉं, रामनारायण शुक्ल, अमरकान्त, ज्ञान रंजन आदि लेखकों ने आधुनिकता के बीच भारतीय ग्रामीण जीवन को उभारा है। शहरीकरण की तीव्रतर होती हुई प्रक्रिया में ग्रामीण जीवन से जुड़े कहानीकारों के प्रेरणा सूत्र उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण प्रतीत होते है। मार्कण्डेय जी का कथन है कि--

"हमारा नया संवेद्य जनतंत्र के गरीबजन हैं। जिसके पास न धन है न यश, न पीढ़ियों की परम्परा गत सामाजिक प्रतिष्ठा से विभूषित नयी मर्यादा ऐसे उलझे हुए कठिन कार्य से मित्रता निभाना कितना कठिन है। इसे समझने के लिए पूरे दो युगों की सम्पूर्ण संयोजक चेतना का उपयोग करना पड़ेगा।"[1]

आधुनिकता के सम्मोह के विरूद्ध चेतावनी देते हुए रामदरश मिश्र लिखते हैं कि-- "यह सच है कि भारत में गांव का जीवन आज भी प्रमुख है। गॉव के जीवन को उभारना ही सच्चे अर्थों में भारत को उभारना है या युग को उभारना है। .....आज के गाँवों की सक्रान्त चेतना और बदलते सम्बन्धों को प्रमुखता से स्वर देना शेष है।"[2]

शिवप्रसाद सिह अपने ग्रामीण जीवन को लेखन में सुनियोजित दृष्टि से ग्रहण करते हैं। उनका कथन है-- "गॉव के जीवन की धड़कने जो अब भी गली--सड़ी परम्परा और कूटस्थ रूढ़ियों का कचरा ढोती हुई कराह रही है, मेरे कहानीकार के लिए सदा ही एक चुनौती रही हैं। .....दिक् और कालकी अछोर सीमा में जीने वाली

---

1. हंसा जाई अकेला : मार्कण्डेय, पृ0 7

2. हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान : रामदर्शन मिश्र, पृ0 62

संस्कृति जो गांवों में बिखरी है। स्वभावतः जिन्दगी की मरोड़ो से ज्यादा भरी--भरी होती हैं, क्योंकि हजारों साल से चली आती हुई परम्परा का बोझ वहाँ जितना जटिल हो जाता है उतना शहरों में नहीं है। वैज्ञानिक युग के धक्के शहर के तारकोली सड़कों पर जिस तरह की रपटन पैदा करते हैं। उससे कहीं अधिक पिच्छलता गाँवो की उन गलियो में है, जहाँ रूढ़ियों के नाबदान निरन्तर आधुनिकता के रथचक्रों को अपनी अकिलता में डुबो लेते हैं।"[1]

मशीनों के उत्पादन से ग्रामों के लघु उद्योगों की बहुत हानि हुई है, अब गाँव के बुनकरों की टोकरी, चिक, आसन, कुशा की अन्य चीजों का प्रयोग कम होने लगा है। गाँव में ऐसे कामों का महत्व कम हो गया है। फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी "ठेस" 3 का सिरचन शिकायत करता है– "मोथी घास पटेर की, रंगीन शीतल पाटी बॉस की तीलियों की झिलमिलाती चिक, सतरंग डोरे के मोढ़े, भूसी चुन्नी रखने के लिए मूंज की रस्सी के बड़े--बड़े जाले, हलवाहों के लिए ताल के सूखे पत्तों की छतश टोपी तथा इसी तरह के बहुत से काम हैं। जिन्हें खिरचन के सिवा गाव में कोई नहीं जानता। यह दूसरी बात है कि अब गाँव में ऐसे कामों को बेकाम का काम समझते हैं। लोग बेकाम का काम जिसकी मजदूरी में अनाज या पैसे देने की कोई जरूरत नहीं पेट भर खिला दो, काम पूरा होने पर पुराना धुराना कपड़ा देकर विदा करो।"[3]

मार्कण्डेय की कहानी गाँव के जीवन में वर्ग चेतना का संघर्षमय रूप चित्रित हुआ है। भूमिहीन किसान, छोटे किसान, मजदूर, हलवाहे आदि जो शताब्दियों

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ : शिवप्रसाद सिंह, पृ0 6--7
2. ठुमरी : फणीश्वर नाथ रेणु, पृ0 54
3. ठुमरी : फणीश्वर नाथ रेणु, पृ0 56

से जमींदार साहूकार और पण्डा पुरोहित द्वारा शोषित हुए हैं। उच्चवर्ग का तीव्र विरोध कर रहे हैं। यह वर्ग कानून व्यवस्था के खोखलेपन को भी नकार रहा है। इनकी कहानियों में आर्थिक और राजनैतिक तत्वों को दबाव से ग्रामीण जीवन मे हो रहे परिवर्तन का निर्णयात्मक दृष्टि से चित्रण हुआ है। अनुचित न होगा यदि कहा जाय कि यह दृष्टि लेखक ने मार्क्सवादी दर्शन और अपने परिवेश के अनुभव से प्राप्त की है। "हँसा जाई अकेला" और "भूदान" की कहानियों के पात्र सामयिक आर्थिक और राजनैतिक दबाव व्यवस्था मे दबाव और घुटन महसूस कर रहे हैं। इस व्यवस्था में आमूल परिवर्तन की छटपटाहट भी उनमें बड़ी तीव्र है और संघर्ष का बोध भी परिपक्व है। "कल्यानमन"[1] कहानी की मंगी ठाकुर की हवेली में पानी भरती है। उसका लड़का पनारू सुविधाओं का गुलाम हो गया है। उसे ठाकुर शोषण और हड़प नीति का कुछ ज्ञान नहीं है किन्तु मंगी कहती है-- "कोई सेंत का खाती हूँ जो लात गारी सहूँ। रात-दिन छाती पर बज्जर जैसा गागरा बाल्टी ढोती हूँ। बन्द कर दूँ तो सरने लगे रानी लोग। काहमरी देहिया माटी की है।"[2]

भारतीय समाज में आर्थि शोषण के सन्दर्भ में जमींदार एकमिथ और प्रतीक की भांति गृहीत होते आये हैं। इसलिए जब स्वाधीनता के पश्चात इनका उन्मूलन हुआ तो आर्थिक दृष्टि से मुक्ति की सामूहिक सुखानुभूति की लहर सी सामान्य जनमानस में आई प्रतीत होती है। "सुविधा प्राप्त, समर्थ संस्कारित भू स्वामी जमींदार और दीनहीन कृषक वर्ग का अन्तराल और अर्न्तविरोध पूर्ववत् रह जाता है। वैधता समाप्त हो जाने पर वह तिकड़म का मार्ग अपनाता है।"[3]

---

1. हंसा जाई अकेला : मार्कण्डेय, पृ0 19
2. हंसा जाई अकेला : मार्कण्डेय, पृ0 21
3. मार्कण्डेय की कहानी "कल्यान मन" (हंसाजाई अकेला में संकलित) की प्रमुख पात्रा।

मंगी जैसी असहाय वृद्धा जिसका चित्रण मार्कण्डेय ने किया है। जमींदारी उन्मूलन पर भले प्रसन्नता व्यक्त करले, भले उसके पति बगा के मरने पर उसकी पोखरी कल्यानमन की बेदखली न हो सके, और उस पर उसका अधिकार हो जाये। परन्तु जब सोने की खान सी इस पोखरी पर जमीदार के दृष्टि लग गई है तो क्या वह बच सकती है? भूतपूर्व जमींदार एक खूंखार अजदहा की भॉति जब कल्यानमन पर "फन काढे बैठा है"[1] तो मंगी उसके अचूक अमानवीय दंश के आगे पड़ने के लिए विवश है। मंगी जैसी कोटि–कोटि अकिंचनाओं की पोखरी जैसी जीविकायें जमींदार संज्ञा के पूर्व "भूतपूर्व" लग जाने पर भी आशंकित बनी है। मार्कण्डेय की कहानी "उत्तराधिकार" में श्री योगेश राव ऐसे ही एक व्यक्ति हैं और रियासत के स्वामी है। "जमीदारी उन्मूलन के बाद भी इस रियासत की आमदनी के जरिये अनन्त हैं। योगेश राव जी ने बाजारो और मवेशियों के मेलों से लाखों रूपये कमाना शुरू कर दिया। बीज की गोदाम से लेकर घी--दूध, मुर्गी, अण्डे के नये रोजगार शुरू कर दिये थे और शहरों में मोटर बन्दूक की एजेन्सियां ले लीं थी। घूर–घूर जमीन पट्टै करके उन्होंने बैक मे रूपया जमा कर दिया और बड़े--बड़े बागों को काटकर फार्मिंग शुरू करा दी थी। उनका दबदबा अब भी बना हुआ था। अपने जिले की कांग्रेस कमेटी को हर तरह की मदद दे उन्होने नेताओं को खरीद कर अपना दरबारी बना लिया था।"[2] जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् स्वयं यह वर्ग आन्तरिक स्तर पर किसी मनोवैज्ञानिक आर्थिक आतंक व्याधि से आक्रान्त हो जाता है और चतुर्दिक सुरक्षा प्रयत्नों के हाथ पैर फेंकने लगता है। कुछ उपयोगी नये कोण भी उभर आते हैं। यह नई आर्थिक चपेट का प्रभाव हैं, हिन्दी कहानियों मे इस चपेट के ज्वलन्त प्रतीक हैं "फुन्नन मियां।

---

1. उक्त कहानी संग्रह। वही

2. "उत्तराधिकार" "भूदान" में संकलित, पृ0 117

कहीं वे घोर अतीतजीवी[2] हैं तो कही उत्कृष्ट वर्तमान विक्षुब्ध। कथाकार शिवप्रसाद सिह के भूतपूर्व जमींदार फुन्नन मियां के ऊपरी जमींदारी टूटने का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि उन्होंने "कुंए पर पानी भरने वालियों के सामने नये तर्ज के बाल काढ़ने के हुनर पर लेक्चर देने की आदत को तर्क कर दिया। गॉव के 'रेखिया उठान'' छोकरों को गुल--बकावली की दास्तान सुनाना भी बन्द कर दिया। फुन्नन मियॉ के इस असमय वैराग्य से गॉव में एक अजीब उदासी छा गई।"[2]

परम्पराओं की राहो को तोड़ने वाले जन लगता है भू पृष्ठ पर आवागमन की राहें भी अवशिष्ट नहीं रहने देगें। सर्वे की भॉति चकबन्दी ने ग्रामीणो को ऐसा झकझोरा कि उनकी धारणायें और मान्यतायें बदल गई। जीवन के बदलते यथार्थ से टकराता और नैतिक मान्यताओं की नई चुनौतियों पर कसता "धरमू पंडित चकबन्दी मे मिले अपने विशाल प्लाट पर खड़ा होकर सोचता है, यह उनका इतना बड़ा चक, चकबन्दी में हो गया। इनका उनका मिलाकर सुविधानुसार चक बने। हमारी तुमको मिली तुम्हारी हमको मिली। धरती फेर बदल हुई। तभी फायदा हुआ। खेत मे बाप--दादे का बनाया हद टूटा तो जिन्दगी में क्यों नहीं टूटता।"[3] वंशहीन अधेड़ किसान धरमू पण्डित[4] जो नई खेती मे गहरी आस्था रखता है, एक दिन अपने सोनारा चौसठ वाले प्लाट मे निराई करती सात वेटो वाली युवती सी बनिहारिन वितनी को देखता है और उसे लगता है कि कल्याण सोना शर्बती सोनारा और सोनालिका के बीच यह बौनी लारिमा हे जो गिरती नही है तथा बहुत उपजाऊ

---

1. डा0 शिवप्रसाद सिंह के कथा संग्रह "इन्हे भी इंतराज है" में सकलित "आखिरी बात" शीर्षक कहानी का पात्र
2. "इन्हें भी इन्तार है" पृ0 105
3. बदलाव (कहानी) धर्मयुग, 13 जुलाई सन् 1969, पृ0 14
4. वही।

है। तब से नयी खेती के परिप्रेक्ष्य में पंडित के अन्तस्थल उससे आठवें अपने पुत्र की ललक में नये और पुराने मूल्यों की टकराहट से भर जाता है। वह इस सदाबहार सी बनिहारिन की तुलना गेहूँ की नयी किस्म एस0 तीन सौ एक से करता है।

चमार को महात्मा गाधी ने हरिजन बनाया। परन्तु वास्तविकता यह है कि प्रायः वह आज भी अकिंचनता और अभाव ग्रस्तता का पदमर्दित पर्याय बना हुआ है। बड़े--बड़े पेट निकले हुए, भगई लपेटे, नाक बहाते हरिजन बालक हैं, बेहद भय कि उनकी सुअरियाँ कहीं मालिकों के खेत मे न पड़ जाय? एक वर्ष धान सूख गया तो महे-सवा चमार चिथड़ों में लिपटा ऐसा नरककाल हो गया है कि उसकी दरिद्रता देखकर शर्म से सिर झुक जाता है। उसका कुनबा अलमुनियम के कटोरे, तामलेट की पिचकी थाली तसल्ली और मिट्‌टी के मेटे के साथ करिया के समय हो ली, जैसे उल्लास वाले त्यौहार के दिन भी सब्र कर सो रहता है। शानी की एक कहानी में इनकी "बोलने वाले जानवर"[1] की स्थिति तो अत्यन्त मर्मपीड़क है। शानी ने मिस्टर और मिसेज जोन्स द्वारा देखा गया अनूझमाड़ आदिवासी जगली पहाड़ी क्षत्र के एक गांव का चित्रण किया है, जो दोपहर में श्मशान की भाति लगता है। जगल में घुसने के बाद एक ऊँची जगह पर चार--छः झोपड़ियाँ दिखाई पड़ती है। यही गाव है, मोटी सुअर अपने छह-सात छोटे--छोटे पिल्लों के गिर्द लेटी है। सामने एकदम नगी और धूलसनी पॉच--सात बरस की लड़कियाँ हैं। मिस्टर स्नैप लेते जाते हैं। मिसेज ने बादनाकुलर ऑखों पर चढ़ा लिया है। उन्हे प्रकृति का सौन्दर्य चाहिए। सुन्दर और सजीव लैंडस्कैप के लिए एक जगह कई--कई घंटे बिता देतीं हैं। उन्हें कुछ चिथड़े और मात्र एक काली हडियॉं में पड़े कुछ पॉव महुए

---

1. शानी के कहानी संग्रह "डाली नहीं फूलती" में संकलित "बोलने वाले जानवर" शीर्षक कहानी।

की कुल सम्पत्ति के अन्तर्विरोध में क्या पत्ता ? लेकिन अन्ततः पूरी कड़वाहट के साथ वह उभर आता है। क्योंकि जब वे लोग स्नैप लेकर चलने लगते है, तो आदिवासी बख्शीश माँगने लगते हैं और मिसेज का मूड़ खराब हो जाता है। जिन्हें वे सौन्दर्य सम्पदा की खान समझे बैठी हैं वे कौड़ी--कौड़ी के दरिद्र हैं। उनके सुअर के पिल्ले से खेलने की आकांक्षी मिसेज उनके अपने बच्चो को देखकर मुँह फेर लेती हैं। यही विषम--आर्थिक स्थिति की समस्या समस्त आदिवासी क्षेत्र में है।

मध्यवर्गीय नारी की मर्म पीड़ा का आर्द आलेखन मन्नू भण्डारी की कहानी "क्षय"[1] में हुआ है। पिता क्षयग्रस्त है और पुत्री कुन्ती अध्यापिका जीवन व्यतीत कर ऋण, अकेलेपन, घोर अवमानना और दुर्वह उत्तरदायित्वों के बोझ को ढोती चल रही है। आर्थिक अभाव उसे ट्यूशन के लिये विवश करते हैं और नाना प्रकार की सामाजिक, आर्थिक व नैतिक समस्याओं के क्रूर कसाव में तड़पती टूटती कुन्ती घनी संवेदनाओं की एक टीस छोड़ जाती है। यह मध्यमवर्गीय क्षय परम्परित है और उसकी निर्यात है जो क्षयग्रस्त पिता की क्षयुष्णि पुत्री की नौकरी के साथ ट्यूशन की तेहरी मार से एक दम तोड़ देती है। श्री काशीनाथ सिंह ने मध्यमवर्ग के आर्थिक विवशताओं को सेक्स से जोड़कर नये आयाम का उद्‌घाटन "आखिरी रात"[2] शीर्षक कहानी में किया।

नगर का सम्पर्क गॉव को परिवर्तित कर दबे--पिसे ग्रामीणों को नया उभार दे रहा है। स्वतन्त्रता के बाद लघु मानवों का नवोन्मेष सर्वथा नयेस्तर पर हुआ है। रेणु

---

1. मन्नू भण्डारी के कहानी--संग्रह 'यही सच है' में संकलित।

2. काशीनाथ के कहानी--संग्रह 'लोग बिस्तरों पर' में सकलित।

की कहानी "उच्चाटन"[1] में गांव का हलवांह "बिलसवा" शहर जाकर रिक्शा चलाता है और वह रामविलास सिंह हो जाता है। इधर गॉव के अभिजात-वर्ग-प्रतिनिधि मिसिर जी हैं जिनका उच्चाभिमान कई चोट से धसकता दिखाई पड़ता है। 'दो साल पहले, चैत्र महीने की आधी रात में गांव छोड़कर चुपचाप भागा था रामविलास, गॉव छोड़कर मिसिर की नौकरी छोड़कर और मिसिर का कर्जा पचाकर। और जब रामविलास सिह बनकर वह नगर से लौटता है तो शहरी 'अदा' से मिसिर को 'डाउन' कर देता है।

रेणु की इस उच्चाटन समस्या और निम्न मध्य वर्ग की आथिक कठिनाईयों को शैलेश भटियानी ने अपनी कहानी 'एक शब्दहीन नदी'[2] मे बहुत कुशलता के साथ चित्रित किया है। नगर से लौटा गॉव का भूतपूर्व हलवाहा अपने सहकर्मियों के आगे नगर की चमक--दमक का वह आकर्षक चित्र उपस्थित करता है कि अधिकांश उसके अनुगत होने के लिये उतावले हो उठते है। किन्तु ठीक समय पर वह स्वयं एकाकी पलायित हो उठता है वह स्वयं अपनी पत्नी तक को नगर सुख की तृष्णा में डुबो जाता है। नगर में वे टूटते रहते है परन्तु गांव में सफेद-पोशी की हेकड़ी जताते हैं। गॉव और नगर की गरीबी में कोई अन्तर नहीं होता है। यह सत्य है कि गॉव का आर्थिक पक्ष इतना दुर्बल है कि वह वर्धमान जनसंख्या को आजीविका प्रदान कराने में अक्षम है।

ग्राम संस्कृति और नगर संस्कृति का आन्तरिक स्तर पर टकराव मधुकर गंगाधर की कहानी 'यक्षक' और 'सतरण'[3] में और रामदरश मिश्र की कहानी 'चिटिठयों के बीच' तथा 'एक भटकी हुई मुलाकात' में दृष्टिगोचर होता है। आजीविका के हेतु जो

---

1. रेणु के कथा-संग्रह 'आदिम रात्रि की महक' में संकलित।
2. शैलेश भटियानी के कहानी--संग्रह 'सुहागिनी तथा अन्य कहानियों में सकलित।
3. दोनों कहानियॉ कथाकार के संग्रह 'हिरना की ऑखे' में सकलित।

लोग गाँव छोड़कर नगर निवास के लिये विवश है। एक विचित्र तनाव की स्थिति का उन्हें सामना करना पड़ता है।

आशीष सिन्हा की कहानी "आदमी" में करिया की बदले की प्रवृत्ति आज के आम आदमी की बदलती मानसिकता को व्यक्त करती है। करिया जंगल के बाबू के अत्याचार का शिकार हो जाता है, पर वह अपना बदला भी लेता है। उसका सबसे बड़ा प्रश्न है कि वह परिश्रम करता है। दिन--दिन खड़ा रहता है। उसकी मेहनत का पूरा पैसा उसे नहीं मिलता। करिया टानो से कहता है 'देख टानो, दिन भर हाथी की तरह लकड़ी ढोता हूँ, फिर भी हम भूखे हैं, ऐसा नहीं होना चाहिये। ये कौन पैसा मार ले जाता है?" इस कथन को सुनकर-

"मारेगा कौन ? टानों कहती है– तू ही मेहनत नहीं करता ? करिया उदास हो जाता है कौन सा राज है, कहाँ का इन्साफ है ?"[1] कहानी के अन्त मे करिया टानो पर सन्देह करके, उसे ही कसूरवार ठहराकर उसकी और अगले संघर्ष में भाग लेने वाले सम्भावित बच्चे की हत्या कर देता है।

अंजना रंजन दाग की "मुआवजा" कहानी नयी मानवीय संवदेना का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह कहानी "अखल हत्याकांड" को विषय बनाकर लिखी गई है। यहाँ माई बड़का बाबू की मौत का मुआवजा लेने नहीं आ सकती, क्योंकि "घर में बड़का बाबू के कफन के वास्ते कुछ नहीं था,-- लक्ष्मण ने रोते हुये बड़का बाबू की लाश एकदम नंगी थी। इसलिये माई ने अपनी धोती उतारकर लाश को ओढ़ा दी है। घर के भीतर माई एकदम नंगी बैठी है वो मुआवजा लेने कैसे आयेगी?"[2]

---

1. आशीष सिन्हा– "आदमी"– श्रेष्ठ समान्तर कहानियाँ -- सं0 हिमांशु जोशी, पृ0 34
2. अंजना रंजन दाग– "मुआवजा"– सारिका फरबरी 1987

गॉवों में लघु उद्योगों के नष्ट हो जाने से किसानो, खेतिहर मजदूरों और सरकारी आय का सारा बोझ कृषि पर आ गया था। भूमिधर किसान यदि दस्तकारी या मजदूरी जैसा कोई काम करें तो सामाजिक प्रतिष्ठा की हानि होती थी। एम0एन0 श्री निवास जी लिखते हैं- "प्रभुता स्थापित होने में भू स्वामित्व बड़ा निर्णायक तत्व था"[1]

स्वतन्त्रता के पश्चात् औद्योगीकरण और नगरों के विकास तथा योजनाओं के प्रभाव के कारण ग्रामीण आर्थिक जीवन में भी परिवर्तन हुआ है। ग्रमीण की मानसिकता आधुनिक हो गई है, यह बात नहीं कही जा सकती। हॉ शहर का वस्तुवादी भौतिकवादी प्रभाव ग्रामीण जन जीवन पर अवश्य पड़ा है। कुछ आर्थिक समस्याओं का समाधान हुआ है तो कुछ आर्थिक अभावों और सम्बन्धों की जटिलता की समस्याओं की वृद्धि भी हुई है। यह परिवर्तन शहरों से व्यक्तियों द्वारा आयात होता है। यद्यपि ग्रामीण समाज के जीवन को प्रतिभाशाली कथाकारों को सच्ची संवेदना बहुत कम मिली है। अपेक्षाकृत शहरी जीवन पर कहानियाँ अधिक लिखी गई हैं। इसके कारण कई हो सकते हैं।

गॉव की गली कूचों, झोपड़ियों के बीच भूख और अन्धेरे को केवल कथाकार की संवेदनशील दृष्टि ही देख पाती है। मार्कण्डेय की कहानी "दौने की पत्तियॉ[2] में यह त्रासदी उद्‌घाटित हुई है। एक छोटे से खेत के स्वामी, किसान के जीवन की चाह, आशा, निराशा, जीवन का सौन्दर्य और रस, सब कुछ उसका खेत, खेत में हल-बैल, लहलहाती फसल, झूमते मचलते दो एक पेड़ और लिपी-पुती छायादार मड़ैया में हीरसा-बसा होता है। कस्बे और गॉवों में श्रमजीवी परिवारों की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है। उसका एक कारण कम मजदूरी है।

---

1. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, एम0एन0 श्रीवास्तव, पृ0 27
2. हंसाजाई अकेला : मार्कण्डेय, पृ0 43

भारी–भरकम योजनाओं के क्रियान्वित होने के बावजूद स्वतंत्र भारत का किसान आज भी अनावृष्टि से उसी प्रकार प्रभान्वित होता है। जैसे स्वतंत्रता के पहले होता था। बिहार प्रान्त की सूखे और बाढ़ की स्थिति पिछले कई वर्षो से चिन्ताजनक रही है। ग्रामीण जीवन में भूख का दारूण त्रास हमने प्रेमचन्द की 'खून सफेद' कहानी में देखा था। लगभग वैसा ही चित्र रामदरश मिश्र की कहानी माँ, सन्नाटा, और बजता हुआ रेड़ियों में भी दिखाई देता है। पूरी कहानी में ग्रामीण जीवन की कठिनाईयों की घोर पीड़ा का विस्तार फैला है। खेतों का चित्र-- "नदी के बाद कछार का बीहड़ इलाका। दूर तक रेत ही रेत ....। हर साल बाढ़ आती सारी हरियाली निगल जाती है, और छोड़ जाती है सन्नाटा, भुखमरी लेकिन रवि के लिये औदी जरूर दे जाती है।"[1]

अकाल की स्थिति में पशुओं के लिये चारा बड़ी कठिन समस्या हो जाती है। एक चित्र – "बैलों का पेट भरता नहीं। पट्टा न तुड़ायें तो क्या करें। पहले तो दिन में कई बार तुड़ाते थे, अब तो गलकर आधे रह गये हैं।[2] अकाल और देवी विपत्ति तथा प्रशासन द्वारा शोषण के कारण मजदूरों के पास इतनी क्रयशक्ति नहीं रह गई है, कि काराखानों में बनी चीजें खरीद सकें। भारतीय उद्योगों की स्थिति सुब्रम्हण्यम् के कथन से स्पष्ट हो जाती है उन्हाने कहा था–

"इंग्लैण्ड की सुविधा के लिये ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जानबूझकर भारत के हितों का बलिदान किया है, और यहा के उद्योगधन्धों को हतोत्साहित करके खेती को प्रोत्साहन दिया गया है जिससे इंग्लैण्ड के कारखानों के लिये भारत कच्चा माल तैयार कर सकें। इस नीति ने भारतीय उद्योग--धन्धों को नष्ट कर दिया है।"[3] इस तरह अकाल

---

1. खालीघर : डा0 रामदरश मिश्र, पृ0 38
2. खालीघर : डा0 रामदरश मिश्र, पृ0 39
3. कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभिसीता रमैया, पृ0 39

की स्थिति में मनुष्य भूखे मर रहे हैं। जो जी रहे हैं वह पेड़ों की छाल और गोबरहा. गोबर में से दाने निकाल कर जी रहे हैं। इसका चित्र प्रस्तुत है कि–

"पेड़ की छाल आदमी खाता है– कितना अमानुषिक। उफ। लेकिन मेरे लिए मानव की यह बेवसी नयी नहीं है, मैने उसके कई रूपों में, रगो की बीच यात्रायें की है– गोबरहा पशुओं के गोबर में से दाने निकाल कर खाना क्या कम बेबसी है? हमारे यहाँ के हलवाहे खाते हैं, और हम समाजवाद, मानवता वाद, प्रजातन्त्र आदि का नारा लगाते नहीं अघाते।"[1]

ग्रामीण समाज के जीवन के इस आर्थिक संकट की यह कहानियाँ स्वतन्त्र भारत की अर्थ व्यवस्था और उसके आर्थिक कार्यक्रमो की असफलताओं का उद्‌घाटन ईमानदारी के साथ करती है। स्त्रियाँ भले बुरे साधनों से कमाई करती हैं और पुरूष निठल्ले नशा किया करते हैं। ये लोग पैसों के लिए स्त्रियो की मारपीट ही नहीं करते, बल्कि बच्चों की संख्या भी बढ़ाते चले जाते हैं। बेटी और पत्नी का व्यापार भी कर लेते हैं। कृष्णा अग्निहोत्री की कहानी 'निठल्ले' में ऐसे ही दरिद्र परिवार की घोर अमानवीय प्रवृत्ति का चित्रण हुआ है। सखाराम बेकार है और उनकी आर्थिक स्थिति यह है "..... कितने दिन तक सूखी रोटियाँ ...... और कभी--कभी वे भी नहीं। उसका पिता सखाराम नौकरी की तलाश कभी पूरी नहीं कर सका।"[2] माता–पिता विवाहित पचिया को विदा नहीं करते, क्योंकि वह कमाती है और कमाई : "समय पाते ही चौदह पचिया को अब बाप--बेटे में से कोई लपेट लेता है पचिया चौदह साल है, गाल धसकने लगे हैं, वह पीली हो गई

---

1. खालीघर : डा0 रामदरश मिश्र, पृ0 43

2. गलियारे : डा0 कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 65

है, परन्तु चुपचाप राशन समाप्त होने पर चुपचाप दुकान पर चली जाती है।'[1] और गंजी जावन बेटा निठल्ला घर में जो पाता है हजम कर जाता है। सिनेमा देखता है। मछली खाता है। उसकी माँ घर की दरिद्रता की बात करती हे तो वह सुझाव देता है– "तो तू पचिया को पाट भरोसे से क्यों नहीं लगा देती? मिल जायेंगे छः माह को तीन सौ रूपये।"[2] और भरोसे "पचास साल की गन्दी बीमारियों से सड़कर बचा है।"[3] किन्तु पेट की ज्वाला में माता–पिता का विवेक भी भस्म हो जाता है और "पचिया का पाट" भरोसे से लग गया है। इस प्रकार पचिया का दूसरी बार सौदा हो गया है। कुछ दिन बाद मुनिया ने फिर लड़की को जन्म दिया और कहा "गंजी निठल्ले से तो बेटी भली"[4] क्यों न हो भली। उसे जिस रास्ते हाँका जायेगा, वह उसी रास्ते चलेगी। मानव के इस अमानवीय आचरण का मुख्य कारण है निर्धनता। इसमें जरा भी सन्देह नही।

मेहरून्निसा परिवेज की कहानियों में मुस्लिम परिवारों की गरीबी का संवेदनात्मक चित्रण हुआ है। ये कहानियाँ ग्रामीण और कस्बाई परिवेश की है। मेहरून्निसा की कहानी "सीढ़ियों का ठेका" में विधवा, बेसहारा, स्त्रियों की आर्थिक परितन्त्रता और परिवार में उनकी दुर्दशा का मार्मिक चित्रण मिलता है। करीमन बूढ़ी विधवा है। बेटी के घर की छत का एक कोना उसे इसलिए मिला हुआ है कि वह मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठकर गर्मी का चिलचिलाती धूप में नमाजियों को दुआयें देती है और पाँच पैसे पा जाती है-- "उसने तो आदमी के सुख को सिवाय लात–घूसों के जाना ही नहीं। बकरेकी खाल छील–छाल कर पूरा

---

1. गलियारे : डा0 कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0 66–67

2. वहीं, पृ0 69

3. वही, पृ0 69

4. वही पृ0 70

कठोर हो गया था।"[1] इस कहानी की करीमन मुर्दे नहलाने का काम करती है। धन के लिये वह "खैरात में मिले चावलों को बेचती और खाने को पीसकर बढ़िया बनाकर बाजार में बेचती है।"[2] और अच्छे–अच्छे कपड़ो के लिये उसे सुहागिनों की मौत अच्छी लगती है। मेहरून्निसा परिवेज की कहानी "त्यौहार" में ईद मनाने के लिये अम्मा के पास इतने भी पैसे नहीं है कि वह इकलौती शन्नों के लिये कपड़े बनवा दें और मिठाई ला दें। उसे कोई सम्बन्धी का पार्सल मिलता है जिसमें कपड़ा है किन्तु जब उसे पता चला कि सम्बन्धी (जीया) ने 'जकात' का कपड़ा उसे भेजा है तो– "अम्मा दीवार के सहारे टिक सी गई। लालटेन के उजाले में उनकी परछाइ कापती सी लगी। उसने साफ--साफ देखा– अम्मा की पीली–पीली आँखे बरसाती ढबरे की तरह भर गई थी। जैस उन्होने गरीब होना कबूल कर लिया था और पहली बार 'जकात' लेने वालों की लाइन में अपने आपको खड़ा पा रही थी।"[3]

प्रस्तुत कहानियों में संयुक्त परिवार के टूटने से करीमन, अम्मा और कुबड़ी और फातिमा के लिये आश्रय नहीं रह गया। रोटी खाने के लिये उन्हें भीख माँगनी पड़ती है। बुढापा ठोकरें खाने के लिये रह गया है। ग्रामीण समाज जहां दयालु, कृपालु, भावुक और मिलजुलकर रहने वाला है उससे कहीं ज्यादा स्वार्थी, लोभी और क्रूर भी है। पैसा जमीन मकान हड़पने के लिये सगे सम्बन्धी कुछ भी अमानवीय कृत्य कर सकते हैं। धर्मवीर भारती की कहानी "गुलकी बन्नो"[4] में ग्रामीण समाज की इस लोभी स्वार्थी और क्रूर प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। राजेन्द्र अवस्थी की कहानी "लमसेना"[5] में आर्थिक अभाव के

---

1. आदम और हब्बा : मेहरून्निसा परिवेज, पृ0 18
2. वही पृ0 17
3. आदम और हब्बा : मेहरून्निसा परिवेज, पृ0 10
4. बन्द गली का आखिरी मकानः धर्मवीर भारती, पृ0 1
5. तलाश : राजेन्द्र अवस्थी, पृ0 78

कारण ही नरस अपनी इकलौती बेटी फलिया का विवाह उसकी इच्छानुसार चेतू से नहीं कर पाया। आर्थिक रूप से वह पंचायत द्वारा दिये गये निर्णय के अनुसार दण्ड पूरा करने की स्थिति में नहीं था।– पंचायत का फैसला था – "पंचों ने लमसेना की कीमत दस रू0 महीने से दो सौ चालीस रूपये आंकी थी। दूध न लौटाने की स्थिति मे उसे जात वालों को भोज देने और महादेव की पूजा का विधान बताया था।"[1] इस आर्थिक मजबूरी के कारण नरसू ने चेतू को याचना–दृष्टि से देखा किन्तु चेतू के पास भी इतना रूपया नहीं था। उसकी ऑखों में विवशता के आंसू ही थे। और कुलिया खरीदी हुई बकरी की तरह मॅगरू की सम्पत्ति बन गई। भारतीय समाज का उच्च वर्ग हो मध्यम वर्ग हो या निम्न वर्ग, बेटी का विवाह एक आर्थिक समस्या है। लमसेना आदिवासी कबीले की कहानी है। बेटी का विवाह वहॉ भी आर्थिक मजबूरियों में बंधा है।

अर्थ प्राप्ति और उस अर्थ के द्वारा दूसरों पर दबाव डालकर अपना स्वार्थ साधना यह प्रवृत्ति भी मनुष्य में ज्यादा धन के कारण ही निर्माण होती है। जिस प्रकार धन का अभाव मनुष्य को बदतर जीवन बिताने के लिये विवश करता है। उसी प्रकार धन का ज्यादा होना मनुष्य से अमानवीय काम करा लेने को बाध्य करता है।

औद्योगिक विकास के कारण कल कारखानों की वृद्धि हो गई। जिसके कारण देहातों में से लोग बड़ी संख्या में इन कारखानों में मजदूरी करने के लिये दाखिल हो गये। आठों पहर कल–कारखानों में मजदूरी करने के लिये दाखिल हो गये। आठों पहर कल कारखानों में वे अपना खून –पसीना बहाते रहे। वे यन्त्रों के गुलाम होते गये। देहातों में चलने वाले परम्परागत लघु उद्योग नष्ट होते गये। श्रम का महत्व कम होता गया। खेती

---

1. तलाश : राजेन्द्र अवस्थी, पृ0 88

किसानी भी उजड़ गई। औद्योगीकरण का दुष्परिणाम यह हुआ कि श्रम शक्ति का हाथ के श्रमों का मूल्य घट गया। हार्स--पावर्स का महत्व बढ़ता गया। "कारखानों में सुनते है आदमी होते हैं। चिमनियाँ क्या उन्हीं का धुँआ बनाती है। "[1] इस प्रकार का जैनेन्द्र ने प्रश्न उपस्थित करके इस समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, कि मनुष्य का धीरे-धीरे स्थान नष्ट होता गया। उसकी श्रम शक्ति का महत्व कम होता गया। और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ। जहाँ मालिक और मजदूर ऐसे दो वर्गो का ही अस्तित्व बना रहा। मजदूर कष्ट करता रहा। मालिक पैसा बटोरता रहा। शोषक और शोषित इस प्रकार दो वर्गो के बीच शोषक और धनिक होते गये, और शोषित मजदूर और भी गरीब होता गया।

औद्योगीकरण के कारण आदमी नगण्य बन गया जिसके कारण वह विशिष्ट व्यवस्था का गुलाम बन गया और उसका मूल्य घट गया। "आदमी नगण्य है। एक इजन पॉच सौ आदमियों के बराबर है। तब फिर आदमी क्या रह जाता है जिसके बस दो हाथ हैं, वह अंक से भी कम है जिसके यह हैं, वहीं यहाँ टिक सकता है।[2] औद्योगीकरण के कारण छोटे-छोटे उद्योग नष्ट हो गये और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को बल मिलता गया। उसका यह परिणाम समाज जीवन में आर्थिक नीति पर पड़ा। जिसके कारण अर्थव्यवस्था किसी विशिष्ट वर्ग के हाथ में आ गई। इसका परिणाम इस समस्या में आ मिला कि एक वर्ग धनिक होता गया, दूसरा गरीब। समाज में विषमता की एक खाई निर्माण हो गई. जो कभी मिटे, ऐसा सम्भव नही। ग्रामोद्योगों के नष्ट होने से आज मनुष्य ने शहर का रह पाया न गॉव का।

---

1. जैनेन्द्र कुमार-- तृतीय भाग, धरमपुर का वासी, पृ0 138, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली 1983
2. वही पृ0 141

अध्याय पंचम (अ)

भारतीय जीवन के विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक, आन्दोलनों का भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव

भारतीय जीवन के विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक आन्दोलनों का भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव

भारतीय जीवन की राजनीति में समाज सुधारों की आवश्यकता के महत्व को गॉधी जी ने बड़ी तीव्रता से महसूस किया था और साम्प्रदायिक एकता को ऐतिहासिक महत्व गम्भीरता से समझा था। देश के विभाजन के बावजूद देश के संविधान निर्माताओ ने भारत को हिन्दू राज्य न मानकर धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया जो राजनैतिक जीवन के प्रत्येक कोने में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पहुँच जाती है। राजनैतिक सामाजिक जीवन देश के आम चुनावों का महत्व भी जन–सामान्य की समझ में आने लगा। एक ही परिवार के सदस्य अपनी–अपनी अलग–अलग राजनैतिक प्रतिबद्धता रखने लगे हैं। यहाँ तक कि पति–पत्नी भी अलग–अलग उम्मीदवारों के लिये अपना मताधिकार प्रयोग में लाते हैं।

सामाजिक परिवर्तन और हमारी राजनैतिक चेतना के विकास में भारत स्वतन्त्र भारत के विकास के संविधान का अभूतपूर्व योगदान रहा है। लोकतन्त्रात्मक प्रणाली में राजनीति सामान्य जन और अभिजन दोनो के जीवन के साथ इतनी जुड़ गई है कि राजनीति कभी–कभी राष्ट्रीय जीवन के लिये एक चुनौती बन जाती है। लगभग 1920 के बाद जब राजनैतिक आन्दोलनों के साथ जन साधारण का सीधा सम्पर्क हो गया तो शिक्षित वर्ग प्रशासन और राजनीति को आजीविका के रूप में अपनाने लगा, और जो व्यक्ति राजनीति दलों के सदस्य थे। उनमें भी पद प्राप्ति की होड़ सी लग गई। विशेषतः शिक्षित वर्ग इस ओर बहुत आगे बढ़ा इस वर्ग की मानसिकता की प्रवृत्ति के विषय में बी0 कुप्पू स्वामी का कथन है– "परिणामतः समाज मे प्रतिष्ठा पाने का एक ही रास्ता है, वह है राजनैतिक नेतागीरी। प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य होता है, कि वह राजनैतिक दलों का सदस्य बनें। सदस्यों का उद्देश्य होता है मंत्रि–मण्डल का सदस्य बने, और मंत्री–मण्डल के सदस्य का उद्देश्य होता है जल्दी से जल्दी प्रधानमत्री को

निकाल कर फेंक दें तथा सारी सत्ता अपने हाथ में ले ले। सत्ता हथियाने और नेता बनने के इस संघर्ष और पद प्रतिष्ठा की होड़ के कारण ही प्रत्येक सरकार के बहुमत दल के नेता को बड़े--बड़े मंत्रिमण्डल बनाने पड़ते हैं। सरकार में स्थायित्व और शक्ति सन्तुलन बनाये रखने के लिये प्रत्येक उपदल (दल के भीतर और बाहर दोनो ही) को यथा सम्भव प्रतिनिधित्व देना पड़ता है।"[1]

अतः राजनैतिक दलों और व्यवस्था में ऊँचा पद प्राप्त करना जीवन का बहुत बड़ा उद्देश्य बन गया है। इससे भ्रष्टाचार, भाई, भतीजावाद और उच्च पदों की शक्ति के दुरूपयोग की मनोवृत्ति बढ़ी है। जब गाँधी जी ने कांग्रेस का नेतृत्व सँभाला तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जन--गण--मन का संगठन बन गया। आन्दोलन नामक कानून तोड़ने का हो या नशाबन्दी के रूप में समाज सुधार का, कांग्रेस को नगर और ग्राम के गली कूचों से आशातीत सहयोग मिलने लगा। निवासाचारी और ए0के0 नीलशास्त्री का कथन है कि काग्रेस के आह्वान पर "भारत की अशिक्षित जनता ने अपनी मौलिक चतुराई और निर्णय शक्ति का परिचय दिया।"[2]

पं0 जवाहर लाल नेहरू ने किसानों की दुर्दशा का अनुभव करते हुये किसानों के कानों में ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति का मन्त्र फूँका और कहा --

"मैं लज्जा और वेदना से भर गया हूँ, धिक्कार है मेरी अपनी सुविधापूर्ण जिन्दगी और भारत की दारूण गरीबी पर। भारत की एक नई तस्वीर मुझे दिखाई पड़ रही है ....नंगी भूख की मारी, कुचली हुई और असीम कष्टों को सहती हुई, चावल खाने वाले

---

1. शोसल चेन्ज इन इण्डिया : वी0कुप्पू स्वामी, पृ0 339

2. इण्डिया--ए हिस्टोरिकल सर्वे-- ए0के0 नीलकान्त शास्त्री जी0 निवासाचारी पृ0 82

करोड़ों दुर्बल भारतीयों का इन असहनीय परिस्थितियों से मुक्ति पाने का एक ही रास्ता है, वह है ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति।"[1]

कांग्रेस में प्राधान्य उन्हीं नेताओं का था जो उदार नीति में विश्वास रखते थे तथा संवैधानिक तरीको से भारत में स्वतन्त्र लोकतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। एक दल ऐसा भी था जो गोला बारूद से ब्रिटिश सरकार से मुक्ति पाना चाहता था। मुख्य रूप से यह विचारधारा सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में बाद में "आजाद हिन्द फौज" के रूप में प्रकट हुई। दूसरी ओर गाँधी जी अहिंसा और कानून की सीमा में रहकर जनता की राजनैतिक शक्ति की स्थापना करने के प्रयत्न कर रहे थे।

26 जनवरी, 1930 ई0 का वर्ष भारतीय राजनैतिक चेतना के इतिहास का महत्वपूर्ण दिन था। लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना कांग्रेस के राजनैतिक आन्दोलन का मुख्य ध्येय घोषित किया गया,

राजनैतिक चेतना के विकास में गाँधी जी का अपूर्व सहयोग रहा। बी0 कुप्पू स्वामी का कथन है-- "गाँधी जी ने तीन बड़े आन्दोलनों का संचालन किया। उन्होनें राष्ट्रवादी भावनाओं को ही बल नहीं दिया अपितु भारतीय जनता को स्वतन्त्रता प्राप्त करने का महान उद्‌देश्य भी दिया। पहला आन्दोलन 1920 ई0 में असहयोग आन्दोलन, दूसरा 1930 ई0 सविनय अवज्ञा आन्दोलन और तीसरा 1942 मे भारत छोड़ो आन्दोलन।"[2] मुक्ति आन्दोलन के चरम विकास की बहुत सी राजनैतिक जटिलतायें भी प्रकट होने लगी थी। इसी विषय में शास्त्री और निवासाचारी का कथन है कि "वायसराय ने भारत को भी युद्ध में धकेल दिया और उसने युद्ध

---

1. इण्डिया-- ए हिस्टोरिकल सर्वे-- ए0के0 नीलकान्त शास्त्री जी0 निवासाचारी पृ0 82
2. शोसल चेन्ज इन इण्डिया, बी0कुप्पू स्वामी, जी0 निवासाचारी, पृ0 82

के उद्देश्यों और कार्यान्वित के बारे में भारतीय नेताओं से विचार विमर्श की भी आवश्यकता नहीं समझी।''[1]

गाँधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस ने अपना राजनैतिक अभियान जारी रखा। गाँधी जी ने 1500 कार्यकर्ताओं को ''सविनय अवज्ञा आन्दोलन'' का सन्देश भारत के जन-जन तक पहुँचाने का आदेश दिया। बड़े पैमाने में गिरफ्तारियाँ हुई। पं0 जवाहरलाल नेहरू को चार साल की कैद सुनाई गई। यह भारतीय समाज में राजनैतिक चेतना के विकास का सर्वाधिक कठिन दौर था। 1941 ई0 में सुभाषचन्द्र बोस भूमिगत हो गये और उन्होनें भारत से बाहर ''आजाद हिन्द फौज'' सरकार और भारत को विदेशी साम्राज्य से मुक्ति के लिये ''आजाद हिन्द फौज' का संगठन किया। अतः राजनैतिक गतिरोध की स्थिति से मुस्लिम लीग को बहुत लाभ हुआ। उसकी राजनैतिक शक्ति बढ़ गई। मुस्लिम लीग की राजनैतिक नीतियों का परिचय मौलाना अब्बुल कलाम के शब्दों में इस प्रकार दिया जा सकता है --

''कांग्रेस ने इस विषय में राष्ट्रीय हित का दृष्टिकोण अपनाया जबकि मुस्लिम लीग की मांग थी कि कांग्रेस अपना राष्ट्रीय चरित्र छोड़कर साम्प्रायिक ढंग से काम करें। कांग्रेस वायसराय की कौसिल के लिये हिन्दू सदस्यों को मनोनीत करे।''[2] किन्तु लार्ड वैवल ने मुस्लिम लीग के इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया।

मई 1945 में आम चुनाव हुये। सभी नेता जेल से छोड़ दिये गये। 1946 में चुनाव हुआ। कांग्रेस को अपेक्षित सफलता मिली। राजनैतिक परिस्थितियाँ भारत के अनुकूल थी।

---

1. इण्डिया– ए हिस्टोरिकल सर्वे : ए0के0एन0 शास्त्री, जी0 निवासाचारी, पृ0 99

2. इण्डिया विन्स फ्रीडम : मौलाना अब्बुल कलाम आजाद, पृ0 112

लेबर सरकार भारत के राष्ट्रवादी नेताओं के साथ गहरी सहानुभूति रखती थी। इसी समय बगाल और बिहार में साम्प्रदायिक दंगे हुए। गाँधी जी ने शान्ति की स्थापना के लिए अपनी श्रेष्ठतम सेवायें अर्पित कीं। साम्प्रदायिक उन्माद बढ़ते--बढ़ते पागलपन तक पहुंच गया था। 15 अगस्त 1947 को विभाजन विधिवत् घोषित कर दिया गया और सत्ता का हस्तान्तरण भारत और पाकिस्तान की दो सरकारों के बीच कर दिया।

विभाजन ऐसी दुर्घटना थी जिसने समाज के आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। एक ओर विस्थापितों को बनाने, उनके लिए रोजी रोटी जुटाने की समस्या थी, दूसरी ओर सामाजिक--पारिवारिक जीवन में सम्बन्धों और सास्कृतिक जीवन मूल्यों में जबरदस्त विघटन हो रहा था। राष्ट्रवादी नेता जिन्होंने अखण्ड भारत की स्वतन्त्रता का स्वप्न देखा था और उसके लिए आजीवन संघर्ष किया था, गहरी निराशा, अवसाद और अनिश्चित भविष्य के भँवर में फंस गये थे। गाँधी जी को अपने जीवन भर के प्रयत्नों, संघर्षों और असह्‌ कष्टो में बनाये चिन्तन और अर्जित मूल्यों का सर्वनाश मौन रहकर सहना पड़ा। मौनव्रत में उन्होंने विभाजन की आवश्यकता को जिस प्रकार स्वीकार किया, उसे ए0के0 कैम्पबैल ने बहुत महत्व दिया है। उसने कहा कि "इस विचित्र कार्य विधि में राजनैतिक त्याग निःस्पृहता और आत्म संयम का महान कार्य छिपा था।"[1]

मौलाना अब्दुल कलाम आजाद जैसे राष्ट्रवादी मुसलमान विभाजन को राजनैतिक संकट न मानकर आर्थिक संकट ही मानते थे और विभाजन के विरूद्ध थे। वास्तव में साम्प्रदायिक वैमनस्य यहाँ सेना में महसूस किया जाने लगा था। निवासाचारी और ए0के0 नीलकान्त शास्त्री का कहना है कि "सिपाहियों ने अपने--अपने सहधार्मियों पर गोली चलाने से इन्कार कर

---

1. भारत के विभाजन की कहानी : ए0के0 कैम्पबैल, पृ0 67 (अनुवाद रनवीर सक्सेना)

दिया।"[1]

देश आजाद हुआ तो गाँधी जी ने पं0 जवाहर लाल नेहरू को भारत के प्रधानमंत्री पद के लिए चुना। पं0 नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। उसको आर्थिक कार्यक्रम तैयार करना था। 25 जनवरी सन् 1948 ई0 को प0 नेहरू ने अपने प्रतिवेदन द्वारा भारत में समाजवादी कल्पना प्रस्तुत की। इस कार्यक्रम में कुछ उपाय सुझाये गये। इनकी जयपुर अधिवेशन में पुष्टि की गई। कांग्रेस के संविधान में उसके अनुच्छेद के अन्तर्गत काग्रेस के उद्देश्य को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया। भारतीय राष्ट्रीय महासभा संघ का उद्देश्य भारत के लोगों का कल्याण करना है और उनकी उन्नति करना है। भारत में शान्तिपूर्ण तथा सविधानिक उपायों से संसदीय लोकतन्त्र पर आधारित एक ऐसे समाजवादी राज्य की स्थापना करना है, जिसमें अवसरों राजनीति आर्थिक तथा सामाजिक अधिकारों की समता हो और जिसका लक्ष्य विश्व शान्ति का भ्रातृत्व हो। धीरे--धीरे कांग्रेस के मंच पर समाजवाद की दिशा में बढ़ने की आवाजें तेज होती गई, पर सरकारें पारित आर्थिक प्रस्तावों को उस प्रतिबद्धता से लागू नहीं कर सकीं जिससे आर्थिक बदलाव तेजी से होता चला गया परिणाम में 1967 के चुनाव में जनता ने कांग्रेस को झटका दे दिया। अपना दुःख उसके खिलाफ मतदान करके प्रकट किया।

कांग्रेस मंच पर आर्थिक चर्चाओं की सरगर्मियां तेज हो गई। विचार विमर्श का निष्कर्ष था कि केवल प्रगतिशील नीतियाँ ही लोगों का समर्थन प्राप्त कर सकती है। अतः 1967 में दिल्ली अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने 10 सूत्रीय कार्यक्रम निर्धारित किया--

(1) बैंककारी संस्थाओं का समाजीकरण।

(2) सामान्य बीमें का राष्ट्रीकरण।

---

1. इण्डिया ए हिस्टोरिकल सर्वे-- ए0के0 नीलकान्त शास्त्री, जी0निवासाचारी, पृ0 6

(3) आयात और निर्यात के राज्य व्यापार में पदार्थ-पदार्थवार प्रगति।

(4) खाद्यान्न में राज्य व्यापार।

(5) सरकारी संस्थाओं का विकास।

(6) एकाधिकारियों की वृद्धि पर नियंत्रण।

(7) समुदाय की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति।

(8) शहरों में जमीन के मूल्य में अधाधुंध वृद्धि पर रोक।

(9) गांवों में निर्माणकार भूमि सुधार।

(10) भूतपूर्व देशी नरेशों के विशेषाधिकारों का अन्त।

इन कार्यक्रमों के क्रियान्वन और उसके राजनैतिक उद्देश्य की चकचक ने 1969 में कांग्रेस का विभाजन कर डाला। कांग्रेस सत्ता ने 1971 के चुनाव घोषणा पत्र में लोकतन्त्र के जरिये समाजवादी नीतियों को लागू करने के लिए स्पष्ट अपील की। इसके लिए जनता से आग्रह किय गया कि हो सकता है। संविधान में परिवर्तन करना पड़े, जनता का आदेश इसी अपेक्षा से माँगा।

इस प्रकार भारतीयों पर उनका व्यक्तित्व 17 वर्षों तक भारतीयों के राजनैतिक जीवन पर छाया रहा। शास्त्री और निवासाचारी का कथन है कि-- "वह जवाहर लाल था, जिसे भारत के भविष्य का निर्णय करना था.... उसके व्यक्तित्व मे पूर्व और पश्चिम की सभ्यता की संस्कृति का अद्भुत संगम था। एक अजीब सा अन्तर्विरोध भी था। एक ओर वह भारतीय आध्यात्मिकता में विश्वास रखता था तो दूसरी ओर पश्चिम की भौतिक प्रगति में उसकी तीव्र आसक्ति थी। स्वभाव से वह अधिनायक और लोकनायक दोनों एक साथ था।"[1]

---

1. इण्डिया ए हिस्टोरीकल सर्वे-- ए0के0एन0शास्त्री, जी0निवासाचारी, पृ0 124

उस समय उसकी आलोचनायें भी हुई, किन्तु उनके व्यक्तित्व में अपने विरोधी को जीतने की अद्‌भुत शक्ति थी। "सन्देह नहीं कि नेहरू की प्रतिभा और दृष्टि का प्रगतिशील भारत सदैव ऋणी रहेगा।"[1]

भारत की स्वतन्त्रता अनेक प्रकार की गम्भीर समस्याओं से घिरी हुई थी। भारत के विभाजन ने अनाज के लिए भारत को बिल्कुल कंगाल कर दिया। जूट और सूती कपड़ा उद्योग को भी कच्चे माल की कमी का सामना करना था। करोड़ों की सख्या में विस्थापित शरणार्थी करोड़ों रूपये की सम्पत्ति छोड़कर भारत में आ गये थे। उपजाऊ क्षेत्र का एक बड़ा सा हिस्सा पाकिस्तान में चला गया था। ऐसी स्थिति में पं0 जवाहरलाल नेहरू की सरकार की गृहनीति की आलोचना तो होती रही, किन्तु कोई रचनात्मक विरोध नहीं हो पाया उसका प्रधान कारण जो पहले चुनावों में ही स्पष्ट दिखाई पड़ा। यह था कि राष्ट्रीय स्तर पर किसी ऐसे विरोध दल का अभाव था जो कांग्रेस की एकतन्त्रात्मक नीतियों को प्रभावशाली चुनौतियाँ दे सकता। कांग्रेस को शासन सत्ता प्राप्त करने में उसके लोकप्रिय संगठन का और मतदाताओं पर सीधा प्रभाव डालने वाले प्रशासन अधिकारियों का पूरा सहयोग भी मिला। बहुत छोटा वर्ग था। जो प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली में विरोधी दल के महत्व को समझता था।

प्रजा समाजवादी दल के पास मतदाताओं से कहने के लिए जो कुछ भी था वह तो कांग्रेस की समाजवादी नीतियों और नारों से किसी भी तरह अलग नही था। भारतीय कम्युनिष्ट दल के पास अपनी सगठन शक्ति थी जो कांग्रेस को चुनौती दे सकता था। किन्तु उसमें ऐतिहासिक त्रुटियाँ थी। जिनके कारण यह बीज भारत की जमीन पर फल--फूल नहीं पाया। इसकी भी एक त्रुटि थी कि इसकी जड़े विदेश में थी। दूसरे इस दल के द्वारा की गई कांग्रेस की नीतियों

---

1. इण्डिया-- ए हिस्टोरीकल सर्वे : ए0के0एन0 शास्त्री, जी0 निवासाचारी, पृ0 125

की आलोचनायें स्पष्टतया भ्रामक थी। तीसरे इसके ईश्वरी और निजी सम्बन्धी मान्यतायें जन-साधारण .के मानस के प्रतिकूल थी। इसकी सबसे बड़ी ऐतिहासिक त्रुटि भारत के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम काल में दूसरे विश्व युद्ध में अग्रेजो की नीति को खुला समर्थन देना थी। ऐसा आचरण इस पार्टी के लिए आवश्यक हो गया था, क्योकि रूस और इंग्लैण्ड में जर्मनी के विरूद्ध युद्ध सन्धि हो चुकी थी।

अतः कम्युनिष्ट पार्टी भी भारतीय प्रजातन्त्र के विकास म विशेष योग ने दे सकी। अक्टूबर 1962 में चीनी आक्रमण से भी इस दल को भारी जन विरोध का सामना करना पड़ा। राजनैतिक दल जैसे हिन्दू महासभा, गणतन्त्र परिषद और द्रविण मुणेत्र कड़गम, आदि की नीतियॉ भी विघटन को अधिक प्रश्रय देने वाली थी। अतः ये भी राष्ट्रीय राजनीति में कुछ न कर पाई और केवल केरल को छोड़कर सभी प्रदेशो की विधानसभाओं में कांग्रेस को बहुमत मिला। दूसरे चुनावों में भी कुछ विशेष परिवर्तन राजनैतिक स्थिति में नहीं हुआ। किन्तु एक परिवर्तन मतदाताओं की मानसिकता में दिखाई दिया। अब उनकी मतदान की रूचि प्राध्यापक वकील और उम्मीदवारों से हटकर जनजीवन से निकट सम्पर्क रखने वाले उम्मीदवारों में अपेक्षाकृत बढ़ गई। ग्रामीण क्षेत्रो के प्रतिनिधियों की सख्या में वृद्धि हुई। नेहरू जी की निजी लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि कांग्रेस में भी उनको सर्वोच्चता प्राप्त हो गई थी। उनकी रूचियों और महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप देश की अर्थव्यवस्था का स्वरूप भी बनने लगा था।

1961 ई0 के पश्चात् जनसंघ हिन्दीभाषी प्रदेशों में और स्वतन्त्रता पार्टी तथा द्रविण मुणेत्र कड़गम दक्षिण में विकसित हुई किन्तु जनसंघ अपनी साम्प्रदायिक नीतियों के कारण स्वतंत्र पार्टी पूॅजी-पतियों और राजाओं के साथ गठजोड़ के कारण तथा दक्षिण मुणेत्र कड़गम अपनी घोर प्रान्तीयता के कारण कोई राष्ट्रव्यापी राजनैकि स्थान प्राप्त न कर सकी।

ब्रिटिशों के शासन को इस देश से हटाने के लिये जो--जो आन्दोलन किये गये उनमें सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास रखने वाले गर्मदल भी थे। इन गर्मदलों में ईट का जबाव पत्थर से देने की बात की, यह दल चलाने के लिये धन की आवश्यकता तो बड़ी मात्रा में थी ही। इन गर्म-दलों तथा क्रान्तिकारियों को हमारे देश के पूँजी-पति तथा राजाओ , महाराजाओं ने प्रश्रय नहीं दिया। स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिये किये गये इस आन्दोलन को अगर वे मदद देते तो क्रान्तिकारी चोरी और डकैती जैसी त्याज्य बातों को न अपनाते। अर्थात चोरी और डकैती इन्होने वहाँ की जो समाज से अवैध मार्ग से धन बटोरकर अपनी--अपनी तिजोरी में बन्द करके रखे हुये थे।

हमारे देश में रहने वाले परन्तु अंग्रेजी शासन का विरोध न करने वाले पूँजीपतियों का यह रुख हमारे देश के स्वातन्त्र्य प्राप्ति की एक समस्या थी। पूँजी-पतियों ने क्रान्तिकारियों से असहयोग का रवैया अपनाया यह उनकी दोहरी नीति का दर्शन है। अंग्रेजी शासन की क्या मर्जी हो जाये यह वे नहीं चाहते थे। इसीलिये क्रान्ति सफल न हो सकी।

मुक्ति आन्दोलन भारतीय समाज की बीसवी शताब्दी मे प्रारम्भ हुआ और मनुष्य मुक्ति आन्दोलन के विविध पक्षों से प्रभावित हुआ। विदेशी शासन से मुक्ति. भारत की जनता और नेताओं का एक ही राजनैतिक ध्येय था। इस आन्दोलन के विरोधी तत्व विदेशी ही नहीं, स्वदेशी भी थे। राजनैतिक सघर्ष के साथ--साथ सामाजिक बुराइयो को सुधारने के लिये सुधार आन्दोलन भी चलायें। समाज की कुछ विशेष कुरीतियाँ मुक्ति आन्दोलन को शिथिल बना रहीं हैं। सामाजिक आधार जब तक शिथिल है मुक्ति आन्दोलन ठोस सार्थकता प्राप्त नहीं कर सकेगा। इसीलिये नशाबन्दी अस्पृश्यता निवारण और स्वाबलम्बन पर विशेष ध्यान दिया गया। समाज के जीवन के प्रति सर्वांगीण राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टि गाँधी जी की ही देन है।

असहयोग आन्दोलन में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ गाँधी जी ने कहा कि अन्याय करने वाली सरकार से सहयोग करना अन्याय को सहारा देना है इसलिये ब्रिटिश सरकार से असहयोग करना चाहिये। गाँधी जी का सन्देश सारे देश में गूँज गया। लोग सरकारी नौकरियाँ छोड़ने लगे और सरकार से असहयोग कर जेल जाने लगे। इस समय तक कांग्रेस की शक्ति बढ़ चुकी थी। पं0 मदनमोहन मालवीय, पं0 मोतीलाल नेहरू, पं0 जवाहरलाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, आदि इसका सचालन कर रहे थे।

यहाँ स्वदेशी आन्दोलन के लिये भारत में राष्ट्रीय चेतना विकसित होती जा रही थी और जुझारू रुख अख्तियार कर रही थी। भारतीय राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र था बगाल। अंग्रेजों ने इसी जुझारू चेतना पर आघात करने के उद्देश्य से ही बगाल के बंटवारे का निर्णय किया। उस समय वायसराय लार्ड कर्जन के अनुसार ---

"अग्रेजी हुकूमत का यह प्रयास कलकत्ता को सिंहासन च्युत करना था। बंगाली आबादी का बँटवारा करना था। एक ऐसे केन्द्र को समाप्त करना था जहाँ से बँगाल व पूरे देश में कांग्रेस पार्टी का संचालन होता था। और साजिशें रची जाती थी।"[1]

बंगाल विभाजन का मकसद सिर्फ यह नहीं था कि बंगालियो को दो प्रशासनिक हिस्सों में बाँटकर उनके प्रभाव को कम किया जाये। इस विभाजन योजना में एक और विभाजन अन्तर्निहित था। धार्मिक आधार पर विभाजन 19वीं सदी के अन्त मे अंग्रेजो ने कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर करने के लिये मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भड़काने का काम शुरू किया। एक बार फिर उन्होनें इस हथकडे को अपनाने की कोशिश की।

---

1. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष : प्रोफेसर विपिन चन्द्र, पृ0 85

ढाका में विभाजन के पक्ष के मुसलमानों को रिझाने के लिये कर्जन का भाषण उनकी कुटिल चाल का भंडा फोड़ता है। उन्होनें कहा ---

"बंगाल विभाजन से ढाका बहुसंख्यक मुस्लिम आवादी वाले नये प्रान्त की राजधानी बन जायेगा। इससे पूर्वी बंगाल में मुसलमानों में एकता स्थापित होगी, तथा मुसलमानों को बेहतर सुविधायें मिल सकेगीं, और पूर्वी जिले राजशाही से मुक्त भी हो जायेगें।"[1] दिसम्बर 1903 ई0 में बगाल विभाजन के प्रस्ताव की जानकारी सबको मिली। खबर मिलते ही जबरदस्त विरोध की लहर उठी विरोध कितना जबरदस्त था कि इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है, कि दो महीने ही केवल पूर्वी बगाल में विभाजन के खिलाफ 500 बैठकें हुई। अन्त में 6 अगस्त सन् 1905 को कलकत्ता के टाउनहाल मे एक ऐतिहासिक बैठक में स्वदेशी आन्दोलन की विधिवत् घोषणा की गई। विभाजन के विरोध में अचानक फूटा और विखरा यह आन्दोलन अब संगठित होने लगा। 16 अक्टूबर 1905 का दिन पूरे बंगाल में शोक दिवस के रूप में मनाया गया। घरो में चूल्हा नही जला। लोगों ने उपवास रखा और कलकत्ता में हड़ताल घोषित की गई। जनता ने जुलूस निकाला। सवेरे जत्थे के जत्थे लोगों ने गंगा स्नान किया और फिर सड़को पर वन्देमातरम् गाते हुये प्रदर्शन करने लगे। यह वन्देमातरम् समूचे आन्दोलन की ओर से युद्ध की दुन्दुमी था। लोगों ने एक दूसरे के हाथ पर राखियाँ बॉधी यह जताने के लिये कि बंगाल को बॉटकर अग्रेज उनकी एकता में दरार नहीं डाल सकते।

इस विभाजन के विरोध से उत्पन्न आन्दोलन अब नई राह पकड़ने लगा। नये लक्ष्य के लिये नई संघर्ष की राह। इसका आधार भी बहुत तेजी से मजबूत होने लगा।

---

1. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष : प्रोफेसर विपिनचन्द्र, पृ0 85

बारी–साल सम्मेलन 1906 को अध्यक्ष एस0 अब्दुल रसूल ने कहा था ---''पिछले 50 से 100 सालों के दौरान हम जो हासिल नहीं कर सके, वह हमने छः महीनों मे हासिल कर लिया और हमें यहाँ तक पहुँचाया है बगाल विभाजन ने। बंगाल विभाजन जैसी शर्मनाक घटना ने महान राष्ट्रीय आन्दोलन स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया है।'[1]

स्वदेशी आन्दोलन व बहिष्कार आन्दोलन का सन्देश पूरे देश में फैल गया। लोकमान्य तिलक ने पूरे देश में विशेषकर बम्बई और पुणे में इस विशेषकर आन्दोलन का प्रचार किया। विपिनचन्द्र पाल ने अपने भाषणों से इस आन्दोलन को और भी मजबूत बनाया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी स्वदेशी आन्दोलन के लिये काम करना शुरू कर दिया। गोखले की अध्यक्षता में हुये बनारस अधिवेशन ने बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन व बहिष्कार आन्दोलन का समर्थन किया।

स्वदेशी आन्दोलन ने जन–जागरण के लिये स्वयं–सेवी सगठनों की खूब मदद ली। इन संगठनों ने आन्दोलन के लिये जनमत तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनमें सबसे महत्वपूर्ण संगठन था। ''स्वदेश बांधव समिति।'' स्वदेशी आन्दोलन की दूसरी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें 'आत्म निर्भरता, आत्मशक्ति' का नारा दिया, आन्दोलनकारी नेताओं का मानना था कि सरकार के खिलाफ संघर्ष चलाने के लिये जनता में स्वावलम्बन की भावना भरना बहुत ही जरूरी है। 1906 में राष्ट्रीय शिक्षा परिषद का गठन उस समय हुआ जब देश के सारे जाने माने लोग शामिल थे। परिषद का उद्देश्य था-- ''राष्ट्रीय नियन्त्रण के तहत जनता को इस तरह का साहित्यिक, वैज्ञानिक व तकनीकी शिक्षा देना जो राष्ट्रीय जीवन धारा से जुड़ी हुई हो।''[2]

---

1. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष : विपिनचन्द्र, पृ0 87
2. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष : विपिनचन्द्र पृ0 89--90

आखिरी बात यह है कि कोई जन आन्दोलन लगातार नहीं चल सकता। इसमें एक ठहराव आता है। जब क्रान्तिकारी शक्तियाँ अगले सघर्ष के लिए तैयारी करती है। जनमत तैयार करती हैं। इस स्वदेशी आन्दोलन के बाद भी ऐसा ही हुआ। 1908 के बाद जब यह आन्दोलन खत्म हुआ तो इसके कुछ समय बाद क्रान्तिकारी आतंकवाद की शुरूआत हुई। स्वदेशी आन्दोलन ने नौजवानों के भीतर संघर्ष की चिंगारी सुलग्ाई थी। इस आन्दोलन ने जनमत तैयार करने के अनेक नये तरीके ईजाद किए हालांकि इन तरीकों को वह खुद अच्दी तरह इस्तेमाल न कर सका।

गदर आन्दोलनकारियों को कुचलने के लिए अंग्रेजी हुकूमत ने कमर कस ली थी। जैसे ही प्रवासी भारतीय हिन्दुस्तान में दाखिल होते, इनकी पूरी जॉच पड़ताल की जाती, जिनसे कोई खतरा नहीं दिखता, उन्हें छोड़ दिया जाता, जिनसे जरा कम खतरा दिखाई देता, उन्हें इस बात के साथ छोड़ा जाता कि वे अपने गॉव छोड़कर कही नहीं जायेगें। हुकूमत ने जिन्हें बहुत खतरनाक समझा उन्हें गिरफ्तार कर लिया। कुछ खतरनाक लोग बच निकले और पंजाब पहुॅच गये तथा विद्रोही गति विधियों में संलग्न हो गये। गदर आन्दोलनकारी अब भारतीय सैनिकों का समर्थन प्राप्त करने के लिये कोशिशें करने लगे। बोस ने एक संगठन का प्रारूप तैयार किया। लोगों को देश की अनेक छावनियों से सम्पर्क करने के लिये भेजा गया और 11 फरवरी को अपनी रिपोर्ट देने को कहा गया। रिपोर्ट काफी उत्साहजनक थी। इसके आधार पर सैनिक विद्रोह के लिये 21 फरवरी की तारीख निश्चित कर दी गई। लेकिन सी0आई0डी0 को सब कुछ पता चल गया था। सरकार ने इन आन्दोलन–कारियों को पहले ही धर दबोचने की तैयारी कर ली थी। ज्यादातर नेता लोग गिरफ्तार कर लिये गये लेकिन बोस किसी तरह बच निकलने में सफ्ल रहे। इस तरह व्यवहारिक रूप से गदर आन्दोलन समाप्त हो गया।

गदर क्रान्तिकारियों में किसी तरह की क्षेत्रीय भावना नहीं थी। लोकमान्य तिलक, अरविन्द घोष, खुदीराम बोस, कन्हाईलाल दत्त व सावरकर जैसे क्रान्तिकारी नेता गदर आन्दोलन-कारियों के आदर्श नेता थे।

बाल गंगाधर तिलक छः साल की लम्बी सजा काटने के बाद 16 जून 1914 को जेल से छूटे। कैद का अधिकांश समय मंडायल जेल (वर्मा) में बीता था। भारत लौटे तो उन्हें लगा कि वह जिस देश को छोड़कर गये थे। वह काफी बदल गया है। स्वदेशी आन्दोलन के क्रान्तिकारी नेता अरविन्द घोष ने सन्यास की राह पकड़ ली और पांडिचेरी पहुँच गये थे और लाला लालजपत राय अमरीका में थे। तिलक ने सोचा कि सबसे पहले तो कांग्रेस में फिर से शामिल हुआ जाये और बाकी गरम पंथियों को भी इसमें घुसाया जाये। तिलक को यह विश्वास हो चला था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का पर्याय बन चुकी है। बिना इसकी इजाजत के कोई भी राजनीतिक आन्दोलन सफल नहीं हो सकता।

नरम पंथियों को समझाने, बुझाने उनका विश्वास जीतने तथा भविष्य में अंग्रेजी हुकूमत दमन का रास्ता अख्तियार न करें इस उद्देश्य से उन्होने घोषणा की- "मैं साफ-साफ कहता हूँ कि हम लोग हिन्दुस्तान में प्रशासन व्यवस्था का सुधार चाहते है, जैसा कि आयरलैण्ड में वहाँ के आन्दोलन-कारी माँग कर रहे हैं। अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने का हमारा कोई इरादा नहीं है। इस बात को कहने में मुझे कोई हिचक नहीं है कि भारत के विभिन्न भागों में जो हिंसात्मक घटनायें हुई हैं न केवल मेरी विचारधारा के विपरीत हैं। बल्कि इनके कारण हमारे राजनीतिक विकास की प्रक्रिया भी धीमी हुई

है।"[1] उन्होने अंग्रेजी हुकूमत के प्रति अपनी निष्ठा दोहराई और भारतीय जनता से अपील की कि वह संकट की घड़ी में अंग्रेजी हुकूमत का साथ दें।

तिलक को कांग्रेस में वापस आने का अधिकार मिल गया था और उन्होंने कांग्रेस से किसी तरह का कोई बाद भी नहीं किया था। इसलिए उन्होंने अप्रैल 1916 में बेलगांव में हुए प्रान्तीय सम्मेलन में "होमरूल लीग" के गठन की घोषणा की। तिलक ने महाराष्ट्र का दौरा किया और होम रूल लीग आन्दोलन का खूब प्रचार किया। जनता को समझाया कि इसकी जरूरत क्यों है, इसके उद्‌देश्य क्या हैं। उन्हीं के शब्दों में- "भारत उस बेटे की तरह है, जो अब जवान हो चुका है। समय का तकाजा है कि बाप या पालक इस बेटे को उसका बाजिब हक दे दे। भारतीय जनता को अब अपना हक लेना ही होगा। उन्हें इसका पूरा अधिकार है।"[2]

1915 में बम्बई के प्रान्तीय सम्मेलन मे तिलक ने गोखले के निधन पर शोक प्रस्ताव रखा। तिलक जातिवादी नहीं है गैर ब्राम्हणों ने एक बार जब सरकार को अलग से ज्ञापन भेजा और कहा कि उन्नत वर्गों की माँगों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, तो कई लोगों ने इसका विरोध किया। लेकिन तिलक ने इन विरोध करने वालों को समझाया, और कहा--

"आप लोग धैर्य से काम लीजिए यदि हम उन्हें यह समझा सकें कि हम उनके साथ हैं और उनकी मांगों और हमारी मांगों में कोई फर्क नहीं है तो मुझे पक्का विश्वास है कि असमानता मिटाने के लिए छिड़ा उनका आन्दोलन हमारे सघर्ष से जुड़

---

1. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष: विपिन चन्द्र, पृ0 114

2. वही, पृ0 116

जायेगा।''[1]

होम रूल आन्दोलन ने जैसे ही जोर पकड़ना आरम्भ किया, सरकार ने दमनात्मक कार्यवाहियाँ तेजकर दीं, इस आन्दोलन पर बार करने के लिए सरकार ने एक विशेष दिन चुना। 23 जुलाई, 1916 को तिलक का साठवाँ जन्मदिन था। एक बड़े समारोह का आयोजन किया गया और तिलक को एक लाख रूपयों की थैली भेंट की गई। सरकार ने भी इस अवसर पर उन्हें इनाम दिया। उन्हें एक कारण बताओ नोटिस दिया गया। जिसमें लिखा था कि आपकी गतिविधियों के चलते आप पर प्रतिबन्ध क्यों न लगा दिया जाय। उन्हें साठ हजार रूपये का मुचलका भरने को कहा गया। तिलक के लिए शायद यह सबसे महत्वपूर्ण उपहार था। उन्होंने कहा--

''अब होम रूल लीग आन्दोलन जंगल में आग की तरह फैलेगा तथा सरकारी दमन विद्रोह की आग को और भी भड़कायेगा।''[2] होम रूल का प्रचार कितना तेज हुआ इस बात का अन्दाज इसी तथ्य से लगा सकते हैं कि सितम्बर, 1916 तक का प्रचार फन्ड से छापे जाने वाले तीन लाख परचे बाँटे गये। यह प्रचार फन्ड कुछ ही महीने पहले स्थापित किया गया था, इन परचों में तत्कालीन सरकार का कच्चा चिट्ठा होता था और स्वराज्य के समर्थन में तर्क दिये जाते थे। होम रूल आन्दोलन के बढ़ते प्रभाव को देखकर सरकार का चिंतित होना स्वाभाविक था। मद्रास सरकार जरा ज्यादा ही कठोर हो गई। उसने छात्रों के राजनैतिक बैठकों में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। पूरे देश में इसका विरोध हुआ। तिलक ने कहा-- ''सरकार को मालूम है कि देश प्रेम की भावना छात्रों को ज्यादा उत्तेजित करती है। वैसे भी कोई भी देश युवा वर्ग की ताकत से ही उन्नति कर

---

1. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष : विपिन चन्द्र, पृ0 117

2. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष : विपिन चन्द्र पृ0 118

सकता है।"[1]

होम रूल आन्दोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इसने भावी राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये जुझारू योद्धा तैयार किये। महात्मा गांधी के नेतृत्व में यही जुझारू आन्दोलनकारी आजादी की मशाल लेकर आगे बढ़े। होम रूल आन्दोलन ने उत्तर प्रदेश, गुजरात, सिन्ध, मद्रास, मध्य प्रान्त तथा वेवार जैसे अनेक नये क्षेत्रों को राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल किया। गाँधी जी ने अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया, जिसे सत्याग्रह का नाम दिया गया। सबसे पहले इसका इस्तेमाल उस कानून के खिलाफ किया गया, जिसके तहत हर भारतीय को पंजीकरण प्रमाण पत्र लेना जरूरी था। इस पर अगूठे का निशान लगाना था और इसे हर भारतीय को चौबीस घन्टे अपने पास रखना था। भारतीयो की एक विशाल सभा हुई जिसमें एक स्वर से कानून को न मानने का निर्णय किया गया। सरकार और भारतीय दोनों ही अपने रूख पर अडिग रहे। सरकार ने कानून का विरोध करने वालों को जेल भेज दिया। लोगों के जेहन से अब जेल का भय खत्म हो रहा था। गाँधी जी भी जेल चले गये जेल में अन्य भारतीयों की तरह उन्हें भी तरह--तरह की यातनायें दी गईं। और उन्हें कठोर मेहनत करने के लिए बाध्य किया गया। अब आन्दोलन संकट के दौर में था। प्रतिबद्ध सत्याग्रही तो जेल आते--जाते रहे लेकिन अधिकाश आन्दोलनकारी थक गये थे। सरकार का अड़ियल रवैया बरकरार था। सत्याग्रहियों के परिवारों के भरण--पोषण के लिए इकट्ठा किया गया। कोष धीरे--धीरे चुकता जा रहा था। इस बार सत्याग्रह का दायरा बड़ा था। इकरारनामे की अवधि खत्म होने पर भी दक्षिण अफ्रीका का दौरा किया। अफ्रीका में बसे भारतीयों पर तीन पौंड का कर लगाया गया था। इसके खिलाफ भी सत्याग्रह छिड़ा। भारतीयों मजदूरों में ज्यादातर गरीब थे। भारतीयों ने इस फैसले को

---

1. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष : विपिन चन्द्र, पृ0 121

बहुत अपमानजनक समझा और अनेक भारतीय महिलायें भी सत्याग्रह आन्दोलन में शरीक हो गईं।

गॉंधी जी ने महसूस किया कि अब अन्तिम संघर्ष का समय आ गया है और इसमें सारी ऊर्जा झोंक देनी चाहिए। कस्तूरबा गॉंधी समेत 16 सत्याग्रही कानून की अवहेलना कर नटाल से ट्रांसबाल पहुँच गये और गिरफ्तार कर लिए गये। महिलाओं का एक जत्था बिना परमिट के टालस्टाय फार्म से मार्च करता हुआ नटाल पहुँच गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आन्दोलन का भारत के इतिहास में विशेष स्थान है। इसके बहुमुखी स्वरूप और व्यापकता की दृष्टि से इस आन्दोलन का संघर्ष पूर्ण आधुनिक इतिहास में ही एक महत्वपूर्ण घटना माना जा सकता है। इस आन्दोलन ने भारत की तत्कालीन जड़ता को समाप्त किया और देश के जनजीवन को झकझोर दिया। इसने जहाँ एक ओर सामाजिक सुधारों का आह्वान किया वही दूसरी ओर इसने भारत के अतीत को उजागर कर भारतवासियों के मन में आत्म सम्मान और आत्म गौरव की भावना जगाने की कोशिश की। भारत में ब्रिटेन का साम्राज्यवादी शोषण और उसके विनाश का मार्ग था। भारत का मुक्ति संग्राम।

यह आन्दोलन इतिहास की एक विडम्बना और आधुनिक युग का एक बड़ा विरोधाभास था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद भारत का प्रशासनिक ढॉंचा चरमराने लगा था। अंग्रेजों ने इसे कमजोर और अन्ततः ध्वस्त कर दिया। जैसे--जैसे देश पर अग्रेजी प्रभुत्व बढ़ा, शोषण की गति तेज होती गई और देश का आर्थिक आधार हिलने लगा। इसका भारत के सामाजिक जीवन पर घातक प्रभाव पड़ा। अतः देश की स्थिति सुधारने के लिए कोई प्रयत्न नहीं हुआ। ऐसी हालत में आर्थिक विपन्नता के साथ सामाजिक कुरीतियॉं, भेदभाव और अन्धविश्वास बढ़ते गये। अतः भारत दरिद्रता तथा पिछड़ेपन की अन्तिम सीमा तक

बहुत अपमानजनक समझा और अनेक भारतीय महिलायें भी सत्याग्रह आन्दोलन में शरीक हो गईं।

गाँधी जी ने महसूस किया कि अब अन्तिम संघर्ष का समय आ गया है और इसमें सारी ऊर्जा झोंक देनी चाहिए। कस्तूरबा गाँधी समेत 16 सत्याग्रही कानून की अवहेलना कर नटाल से ट्रांसबाल पहुँच गये और गिरफ्तार कर लिए गये। महिलाओं का एक जत्था बिना परमिट के टालस्टाय फार्म से मार्च करता हुआ नटाल पहुँच गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आन्दोलन का भारत के इतिहास में विशेष स्थान है। इसके बहुमुखी स्वरूप और व्यापकता की दृष्टि से इस आन्दोलन का संघर्ष पूर्ण आधुनिक इतिहास में ही एक महत्वपूर्ण घटना माना जा सकता है। इस आन्दोलन ने भारत की तत्कालीन जड़ता को समाप्त किया और देश के जनजीवन को झकझोर दिया। इसने जहाँ एक ओर सामाजिक सुधारों का आह्वान किया वहीं दूसरी ओर इसने भारत के अतीत को उजागर कर भारतवासियों के मन में आत्म सम्मान और आत्म गौरव की भावना जगाने की कोशिश की। भारत में ब्रिटेन का साम्राज्यवादी शोषण और उसके विनाश का मार्ग था। भारत का मुक्ति संग्राम।

यह आन्दोलन इतिहास की एक विडम्बना और आधुनिक युग का एक बड़ा विरोधाभास था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद भारत का प्रशासनिक ढाँचा चरमराने लगा था। अंग्रेजों ने इसे कमजोर और अन्ततः ध्वस्त कर दिया। जैसे--जैसे देश पर अंग्रेजी प्रभुत्व बढ़ा, शोषण की गति तेज होती गई और देश का आर्थिक आधार हिलने लगा। इसका भारत के सामाजिक जीवन पर घातक प्रभाव पड़ा। अतः देश की स्थिति सुधारने के लिए कोई प्रयत्न नहीं हुआ। ऐसी हालत में आर्थिक विपन्नता के साथ सामाजिक कुरीतियाँ, भेदभाव और अन्धविश्वास बढ़ते गये। अतः भारत दरिद्रता तथा पिछड़ेपन की अन्तिम सीमा तक

पहुंच गया। ऐसी विषम परिस्थितियों में भी कुछ ऐसी ऐतिहासिक शक्तियाँ प्रकट हुई, जिनसे भविष्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन आने वाले थे। ये शक्तियाँ दो प्रकार की थी। पहली शक्ति पश्चिम के आधुनिक संस्कृति के भारत पर प्रभाव से अवतरित हुई। दूसरी शक्ति का जन्म इस सम्पर्क के खिलाफ भारतीय जनता की प्रतिक्रिया से हुआ बहुत हद तक इन दोनों शक्तियों के सम्मिलित प्रभाव से 19वीं शताब्दी के पूर्वाध्व में भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में एक ऐसे आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ और सम्पूर्ण भारत में एक ऐसी जाग्रति आ गई जिसे कुछ विद्वानों ने भारतीय पुर्नजागरण के नाम से पुकारा है। इस जागरण के कई अन्य कारण भी थे।

''भारत पर अंग्रेजों की विजय ने भारतीय समाज की कमजोरियों एवं गिरी हुई हालत को स्पष्ट कर दिया। अतः कुछ विचारशील और बुद्धिमती भारतीयों ने देश की दुर्दशा और पिछड़ेपन आदि विदेशियों के समक्ष अपनी पराजयों के कारणों की खोजबीन शुरू की। तथा देश के उद्धार के लिए प्रयत्न करने लगे। वैसे अधिकांशतः भारतीय अभी भी परम्परागत विचारों रीति–रिवाजों एव संस्थाओं में विश्वास भी जमाये बैठे थे, लेकिन उनमें से कुछ ने सम्पर्क में आते ही पश्चिम के नये विचारों एवं ज्ञान के महत्व को पहचाना। पश्चिम के वैज्ञानिक ज्ञान बुद्धिवाद के सिद्धान्त और मानवतावाद के सिद्धान्त का इन प्रबुद्ध भारतीयों पर अच्छा प्रभाव पड़ा।''[1]

उन्नीसबीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक में बंगाल मे बुद्धिजीवियों में एक उग्रवादी प्रवृत्ति का जन्म हुआ। यह प्रवृत्ति राममोहन राय के विचारों से भी ज्यादा आधुनिक एवं क्रान्तिकारी थी। इस आन्दोलन को ''यंग बंगाल'' के नाम से जाना जाता

---

1. आधुनिक भारत का इतिहास : सं0 आर0एल0 शुक्ला, पृ0 288

है। इस आन्दोलन के प्रेरणा स्रोत एवं नेता युवा हेनरी थे। वे ऐंग्लोंइण्डिन थे, उन्हें भारत से अपार प्रेम था। "यग बंगाल" आन्दोलन का मूल सन्दर्भ देशी था। पर परस्पर विदेशी प्रभाव को इन्कार नहीं किया जा सकता। "स्वयं डिरोजियो पश्चिमी विचारों एवं विशेषकर क्रान्ति के सिद्धान्तों से प्रभावित थे। साथ ही यह भारत के नौजवानों पर मैजिनी का और इटली के एकीकरण और स्वतन्त्रता का आन्दोलन जोर शोर से चल रहा था। मैजिनी का यंग इटली दल इटली की राष्ट्रीय क्रांति का केन्द्र बिन्दु था। बंगाल मैजिनी के विचारों से खासकर प्रभावित था। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी तक ने अपने ऊपर उनके प्रभाव को स्वीकार किया है।"[1]

विवेकानन्द अपने गुरू की ही तरह एक मानवतावादी थे, जो भारत के पिछड़ेपन, पतन, और उसकी गरीबी से अत्यन्त दुखी थे। प्रबल मानवतावादी भावनाओं से अभिभूत होकर उन्होंने लिखा है-- "एक मात्र भगवान जिसमें मै विश्वास करता हूँ वह है सभी आत्माओं का कुल योग और सबसे पहले मेरे भगवान सभी जातियों के कुष्ठ पीड़ित दरिद्र हैं।"[2] इसी सन्दर्भ में शिक्षित भारतीयों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा भी है-- जब तक करोड़ों लोग भूख और अज्ञान से पीड़ित हैं तब तक मै उस हर व्यक्ति को देशद्रोही समझूँगा, जो उनके खर्च से शिक्षित होकर उनके प्रति तनिक भी ध्यान नहीं देता।"[3]

1 अगस्त सन् 1920 को असहयोग आन्दोलन छिड़ गया। देश की

---

1. भारत का मुक्ति संग्राम : अयोध्या सिंह, नई दिल्ली (मैकमिलन 1977) पृ0 33

2. आधुनिक भारत : विपिन चन्द्र, पृ0 117

3. आधुनिक भारत का इतिहास : आर0एल0 शुक्ला, पृ0 246

जनता भी अंग्रेजों से खार खाये बैठी थी। इसके अलावा आर्थिक कठिनाईयों ने भी जनता को उकसाया। गाँधी जी ने 22 जून को ही वायसराय को एक नोटिस दिया था। जिसमें लिखा था –

"कुशासन करने वाले शासक को सहयोग देने से इन्कार करने का अधिकार हर आदमी को है।"[1]

जनता पर आधारित राजनैतिक संघर्ष की सही रणनीति है। "जिस समय यह संघर्ष चल रहा था उस समय देश के राजनैतिक आन्दोलन का नगाड़ा बज रहा था। कांग्रेस ने बहुत बड़ा आन्दोलन शुरू किया, जिसमें भारत के लिए स्वशासन की मांग की, उस समय हम मजदूर लोग स्वराज का अर्थ सिर्फ इतना समझते थे कि हमारे कर्ज माफ हो जायेंगे। सूद खोरों द्वारा दमन खत्म हो जायेगा और हमारी मजदूरी बढ़ जायेगी।...... बहुत सारे मजदूरों जिसमें मै स्वयं भी था। असहयोग आन्दोलन के दौरान स्वयं सेवक के रूप में अपना नाम दर्ज कराया।"[2]

देश आजाद हुआ। स्वतन्त्र पार्टी के नेता राजगोपालाचारी कांग्रेस की नीतियों का विरोध करते रहे, किन्तु कोई मुखरित स्वर न दे सके। प्रजा समाजवादी दल में आन्तरिक फूट पड़ गई और कोई मौलिक राजनैतिक दृष्टि न दे पाने के कारण यह दल भी जन मानस में कोई जगह न बना पाया इस प्रकार दल बनने तथा टूटने और सत्ता में पद के लोभ के कारण एक राजनैतिक अराजकता देश मे फैल गई और राजनीतिज्ञों का चरित्र दल बदलुओं के रूप में सामने आया। राजनीतिक नेताओं को लोभी मनोवृत्ति ने देश में

---

1. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष : विपिन चन्द्र, पृ0 135

2. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष : विपिन चन्द्र, आनन्द मुखर्जी, मृदुला मुखर्जी, सुचेता, महाजन, पृ0 135

आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक तथा वैचारिक संकट पैदा कर दिया। वे आदर्श और ओढ़ी हुई चीज मात्र रह गये। इसी सन्दर्भ में डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी लिखते हैं -

''स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् भारत वासियों की सारी आशायें ध्वस्त हो गई। उन्होंने पूरे स्वाधीनता संग्राम के दौर में यह कल्पना कर रखी थी कि दासता की श्रंखलाओं के समाप्त होने पर देश में स्वशासन स्थापित होने के पश्चात यह शोषण, असमानता, आर्थिक परतन्त्रता और निर्धनता समाप्त हो जायेगी तथा एक नया युग प्रारम्भ होगा। जिसमें वे भागीदार होगें। पर स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात ऐसा कुछ नहीं हुआ। दासता की श्रृखलाये टूटी विदेशी लोग वापस गये और देशभक्त नेताओं ने शासन की बागडोर संभाली मात्र इस परिवर्तन के और कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पहले विदेशी लोग नोच खसोट करते थे, अब तथाकथित देशभक्त नेता उन्हें आगे बढ़ाने वाले तथा राजनीतिक पार्टियों को लाखों का चन्दा देने वाले पूँजी-पति लोग नोच खसोट और लूटपाट करने लगे जिसमें क्लर्क से लेकर इन्जीनियर, ओवरसियर, बाँध बनाने वाले, सहकारिता चलाने वाले आदि दूसरे अधिकार प्राप्त लोग शामिल हो गये। बेरोजगारी, वैषम्य, निर्धनता तथा दयनीयता दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। इसके फलस्वरूप नई पीढ़ी में कुंठा, वर्णना, घुटन, पीड़ा, निराशा तथा एक विचित्र सी आशंका का जन्म होना स्वाभाविक ही नहीं विषम परिस्थितियों की अनिवार्यता भी थी। यह एक नई सक्रान्ति थी। जिससे सब स्तब्ध थे और दिशाहारा की भांति लटक रहे थे। उन्हें कोई राह सुझाई न पड़ रही थी। स्वतन्त्र्योत्तर काल से अधिकांश तरूण रचनाकार इसी नई सक्रांति की देन है।''[1]

डा0 वार्ष्णेय का यह निष्कर्ष स्वतन्त्रता के लगभग दो दशकों के बाद

---

1. परिपेक्ष्य और प्रतिक्रियायें : डा0लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ0 117

का है। कांग्रेस के राष्ट्रीय चरित्र का पतन कुछ कांग्रेसी नेताओं को स्वतन्त्रता के बाद तुरन्त ही दिखाई देने लगा था। गांधी जी की नीतियों और उनका नाम लेकर कांग्रेस तीन दशकों तक जनता को भ्रम में रखने में सफल हुई। किन्तु गांधी जी के अनुयायियों में गाधीवाद को सरकार द्वारा एक अस्त्र के रूप में प्रयोग करने के कारण तीव्र क्षोभ था। हरिजन के सम्पादक मश्रुवाला ने अपने वक्तव्य में कहा--

"मेरी सम्मति में आचार और नैतिकता की दृष्टि से इस संगठन का इतना पतन हो गया है कि ईमानदार व्यक्तियों को इससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहिये।"[1] श्री मश्रुवाला गाँधी के निजी सचिव को निकट तम अनुयायी थे आचार्य कृपलानी भी गाँधी जी द्वारा संचालित कांग्रेस के मुख्य नेताओं में रहे थे। उन्होनें भी 10 जून 1951 को इलाहाबाद में सिर्फ सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया, "कि कांग्रेस के साढ़े चार वर्ष के शासन ने भूख, रिश्वत ओर सिफारिश का ही राज कायम किया है इस शासन में समृद्धि हुई है तो केवल चोट बाजारी करके जनता का खून चूसने वालों को ही।"[2]

दार्शनिक साहित्यकार जैनेन्द्र ने स्वतन्त्रता पूर्व और स्वतन्त्रता पश्चात् के दोनों ही काल देखे हैं तथा जाने और अनुभव किये हैं। कांग्रेस शासन के खाने के दाँत एक ओर दिखाने के दूसरे रहे हैं। इन नीतियों के प्रति क्षोभ प्रकट किया है। उनका कहना है-- "कितना बड़ा जुल्म है कि गाँधी जी मर गये और राज के तख्त के पायों को हमने उनके कन्धों पर टिकाया हुआ है। कांग्रेस के लिये यह शोभा की बात नहीं है। अरे, गान्धी जी के इलाज में विश्वास नही है तो दूसरा इलाज हाथ में क्यों नही लेते शीशी गान्धी की लेकर उसमें दवा अपनी देते हो, सो उससे संकट बढ़ता है। देश रूग्ण है।

---

1. गान्धीवाद की शव परीक्षा : यशपाल, पृ0 23
2. गाँन्धीवाद की शव परीक्षा : यशपाल, पृ0 14

गाँधी की सफा में देश को विश्वास है तो कृपया उस विश्वास का लाभ लेकर उस नाम पर अपनी दवा न दो। ये योजनायें पहली, दूसरी और तीसरी गाँधी की नहीं है और यही सही है। तब देश चाहेगा तो तुम्हारी दवा लेगा नहीं चाहेगा तो तुमसे हाथ जोड़ लेगा। ऐसा हो रहा है, इसी त्रिताप की व्याधि है। रोगी और वैद्य में किसी अन्त-रंग विश्वास का सम्बन्ध नहीं है। यह असत्य संकट का मूल है।"[1]

श्रीमती ताया जिन्किन भी अपने पति के साथ स्वतन्त्रता के पहले और स्वतन्त्रता के पश्चात् भी कई वर्षो तक भारत में रही। पत्रकार होने और सरकारी उच्चाधिकारी की पत्नी होने के कारण उन्हें राजनैतिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार का व्यापाक परिचय था। वे अपने संस्मरणों में आप लिखती हैं कि -- "नेहरू जी की सबसे बड़ी असफलता एक सुचारू प्रशासनिक यन्त्र-- जो उन्हें विरासत में मिला था-- को प्रयोग करने की आयोग्यता थी ----------- व्यवस्था की प्रक्रिया में उन्होनें परिवर्तन नहीं होने दिया। ----------- उनके उत्तराधिकारी के लिये सबसे पहला महत्वपूर्ण काम प्रशासन की नैतिकता के उस क्षय की क्षतिपूर्ति करना होगा जो कि नेहरू जी के भ्रामक पक्षपात पूर्ण नीतियों के कारण हुआ है।"[2]

ताया जिन्किन ने अपनी ही पुस्तक में यह भी लिखा कि स्वतन्त्रता पूर्व भारत की प्रशासन सेवाओं में काफी भ्रष्टाचार था- "पुलिस के सिपाही से लेकर न्यायालय के न्यायाधीश तक भ्रष्ट थे। वे किसी न किसी रूप में रिश्वत देते थे। अस्पताल से दर्द निवारक दवाईयां और एन्टीवायटिक तक कालें बाजार में पहुँच जाया करते थे। सार्वजनिक सेवा विभाग भी अपनी भ्रष्ट सेवाओं के लिये बदनाम था।"[3] यह सारी विरासत स्वतन्त्र भारत के

---

1. प्रश्न और प्रश्न : जैनेन्द्र, पृ0 36
2. चेलेन्जस् इन इण्डिया : ताया जिन्किन, पृ0 21
3. चेलेन्जस् इन इण्डिया : ताया जिनिकन, पृ0 21

लगभग तीस वर्षो में कांग्रेस के शासन की छत्रछाया में खूब फली फूली।

अतः इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय जीवन के विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक आन्दोलनों का भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर जो प्रभाव चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष इन दोनों प्रकार से जो उचित प्रभाव है, उसका दिग्दर्शन ऊपर किया गया है। इसके बाद अब आगे पृष्ठो पर स्वातन्त्रयोत्तर आधुनिक हिन्दी कहानियों मे इसकी विवेचना की जा रही है।

****

अध्याय पंचम (ब)

आधुनिक हिन्दी कहानियों पर भारतीय जीवन के विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक आन्दोलनों के भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव की विवेचना

"आधुनिक हिन्दी कहानियों पर भारतीय जीवन के विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक आन्दोलनों के भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर प्रत्यक्ष--अप्रत्यक्ष प्रभाव की विवेचना"

भारतीय जीवन के विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक आन्दोलनों का भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर आधुनिक हिन्दी कहानियों में प्रत्यक्ष--अप्रत्यक्ष प्रभाव की विवेचना करते हुये, भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन दो विचार धाराओं के कार्यकर्त्ता, दो दलों से परिचित थे। गरम दल और नरम दल। गरम दल सशस्त्र क्रान्ति मे विश्वास रखता था और उनके विचार जहाल थे। नरमदल, सत्याग्रह तथा अहिसात्मक मार्ग से स्वातन्त्र्य प्राप्ति में विश्वास रखता था। देश में छोटे--मोटे ऐसे भी दल थे, जो सशस्त्र क्रान्ति को सही मार्ग मानते थे। महाराष्ट्र में प्रति सरकार पर दहशत डालने के लिये रेल उड़ाना, डाके डालना, आदि कामों में लगे हुये थे। उसी प्रकार समूचे भारत के विविध भागों में क्रान्तिकारियो के दल कायमग्न थे। भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन में यह भी समस्या थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति किस मार्ग से प्राप्त की जाये। अंग्रेजी शासकों पर दहशत डालकर या सविनय सत्याग्रह करे ? जैनेन्द्र ने स्वातन्त्र्य प्राप्ति की इस गतिविधि को राजनैतिक आन्दोलन के रूप में विशेष ढंग से चित्रित किया है। जैनेन्द्र ने ऐसे दलों के प्रति अपना मत प्रदर्शित करते हुये कहा है कि, समूची जनता का सहभाग जब तक आन्दोलन में नहीं होता, तब तक किसी भी महासत्ता को हटाया नहीं जा सकता, सशस्त्र क्रान्ति भी किसी गुट या दल से नहीं होती।

पारतन्त्र्य तथा गुलामी वह अवस्था है जिसमें कोई सत्ता अपने बनाये हुये नियम तथा कानून के बल पर किसी व्यक्ति अथवा देश पर अपना अधिकार जमा लेती है जो अधिकार उसे अपने जन्म से ही प्राप्त अधिकारों में उसका बोलना, चालना, पढ़ना--लिखना, उठना--बैठना, रहना, सोचना, घूमना--फिरना आदि बातें आती हैं। लेकिन वह अपनी रूचि के अनुसार कोई भी काम नहीं कर सकता। भारत पर अंग्रेजों ने अपना राज्य चलाया। सारा देश गुलामीं में अचेतन

होकर पड़ा। वह पिछड़ा रहा, और अपने अधिकारों से वंचित रहा। क्या यह विधा जोकि अन्यायी है, पर जबरदस्त है-- सिर पर चढ़ाने और उनको जो न्यायी है, इसलिये चुप है, पैरो तले कुचल डालने के लिये ही काम आती ? क्या सत्य हत्या के काम नही आती। साम्राज्यवादी विचाराधारा को मानने वाले मानवता का गला घोंटते हैं। मनुष्य के प्रति उन्हें प्रेम नहीं होता। मानवता उनकी सहोदर नहीं होती। "जीवो जीवस्य भोजनम्" के सकुचित दायरे में ही वे परिभ्रमण करते हैं। अहिसा में उनका विश्वास नहीं होता तथा हिंसा के बल पर ही वे साम्राज्य कायम रखना चाहते हैं। साम्राज्यवादी प्रवृत्ति एक समस्या है। जैनेन्द्र ने "फॉसी" में उसका चित्रण करके उसका धिक्कार किया है--

"क्या आप देख नहीं सकते कि कानून में भावहक का है प्रेम का नहीं, ऑख अपराध पर है, समता पर नहीं, अकुश त्रस्त पर है, शासक पर नहीं।"[1] शासन चलाने वाला रौब जमाना चाहता है, धाक जमाना चाहता है इसीलिये वह अमानवीयता में प्रेम कैसे उपजेगा। अतः किसी भी आन्दोलन की यशस्वीयता जनता के सहभाग से होती है। न किसी दल या गुट के होने से जैनेन्द्र ने सशस्त्र क्रान्ति का इन्कार करके इससे उत्पन्न समस्या का चित्रण इसके द्वारा किया है। सशस्त्र क्रान्ति हिसात्मक होती है। जैनेन्द्र किसी भी आन्दोलन में हिंसा को प्रश्रय नहीं देते। उनका यह विश्वास है कि संघ शक्ति में ही सच्ची शक्ति समाई हुई है। अव्यवस्थित और अनियमित आन्दोलन की सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। आन्दोलन सातत्य और सुव्यवस्थित हो, तभी वह यशस्वी होता है। आन्दोलनों की सफलता तथा असफलता के बारे में भी जैनेन्द ने स्पष्ट प्रकाश डाला है वे गॉधीवादी विचाराधारा के हिमायती है। उनका अपना भी अहिंसा मे गहरा विश्वास

---

1. जैनेन्द्र कुमार, प्रथम भाग, फॉसी, पृ0 19 (पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1978)

है। अतः अहिंसा के सिद्धान्त वे सभी प्रकार के आन्दोलन में महत्वपूर्ण मानते है। वे हिंसा के मार्ग को त्याज्य मानते हैं।

आज की यही समस्या है कि गोरा, काले को नहीं सह रहा है। उच्च पद पर स्थित निम्न मनुष्य को सह नहीं रहा है। असहिष्णुता के कारण राष्ट्र की सीमायें बाँधकर दूसरों से युद्ध लड़ना, हजारों हत्यायें करना, एक गहन समस्या है। जैनेन्द्र ने इसे प्रखर स्वर दिया है। देश--देश और राज्य की सीमायें केवल सब एक लकीर है। स्वार्थी लोगों ने अपने महत्व बढ़ाने के लिये इन लकीरों का अवलम्बन किया है। इसे अबाधित करने के लिये समय--समय पर वे जो आन्दोलन छेड़ते है, हत्यायें करते हैं, उसमे अपने को शहीद तथा गाजी कहलवाने का मोह संवरण नहीं कर पाते। देश के अन्तर्गत देश विरोधी शक्तियाँ भी राज्यों की सीमाओं की लकीरों को लेकर खून--खराबा करती हैं। यह आज की समस्या इस देश को बड़ी विपदा की स्थिति निर्माण करके रही है।

आजकल हम देखते है कि छोटी--छोटी बात पर दंगे--धोपे, झगड़े--फसाद, मार--काट, के दौर चलते हैं। इस वक्त कोई समूह कानून को हाथ में लेकर जोर जबरदस्ती करता है तो, जान और माल का भारी मात्रा में नुकसान होता है। आज कानून को हाथ में लेकर कार्यान्वित होने वाले समूह पंथ तथा व्यक्ति के कारण गम्भीर समस्या निर्माण होती है। मानवता इसमें आहत होती है, कराहती है, व्यक्ति तितर--बितर या अपनी जान भी गवाँ बैठते हैं।

देश के अन्तर्गत सुरक्षा में बड़ी मात्रा में आपत्ति आने की सम्भावना निर्माण होती है। जैनेन्द्र ने इस समस्या का चित्रण करके, उसका धिक्कार किया है-- "समाज की रक्षा का दायित्व उन पर है। कानून शान्ति के वे उत्तरदाता है, और कानून हर

किसी के हाथ में नहीं दिया जा सकता। किसी को उसे अपने हाथ ले लेने की स्वतन्त्रता नहीं हो सकती। इसके अर्थ अराजकता, अनियन्त्रण, धाँधलेबाजी होगें और यह धाँधली कभी श्रेयस्कर नहीं।"[1] जहां कहानीकार जैनेन्द्र ने "फाँसी" और 'गदर' के बाद जैसी अनेक कहानियों को लिखा वहीं महात्मा गाँधी के बहिष्कार, स्वदेशी और असहयोग आदि सिद्धान्तों से भारतीयों के आर्थिक संघर्षों के जीवन में नई चेतनाओं का तेजी से संचार हुआ जैसा कि महात्मा गाँधी जी चाहते थे।

धीरे–धीरे वकील अदालतें व्यापारी और युवक शिक्षा संस्थाये विदेशी विक्रय तथा गृहणिंया अपना घर–बार और झरोखे छोड़कर सभी अपने-अपने को धन्य मानकर, स्वतन्त्रता के महायज्ञ में अपने प्राणों की आहुति देने के लिये निकल पड़े। इस प्रकार की विषम, संघर्ष तथा आर्थिक संघर्ष का विवेचन करते हुये समस्त संघर्षपूर्ण स्थिति का वर्णन, छठवे दशक के सम्राट कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द्र की 'लालफीता'[2] कहानी में हुआ है। कहानी का पात्र हरिविलास अपने लगातार व्यवहार व मेहनत से मजिस्ट्रेड के पद पर पहुँचा। वह निर्भीक, न्यायप्रिय, सच्चरित्र शासक बना। जिसका परिणाम भी उसे कई बार भुगतना भी पड़ा, इतना सब कुछ होने के बाद भी वह सरकार की न्यायप्रियता पर उसे पूर्ण रूप से दृढ़ विश्वास है। हरविलास नौकरी को गुलामी नहीं मानता। वह असहयोग आन्दोलन के दिनों में भी सरकार का ही पक्ष लेता है। सरकारी नौकरी गुलामी के अलावा कुछ नहीं है। इसका आभास उसे जल्दी ही हो जाता है। क्योकि सरकार धर्म और आत्मा के विरूद्ध आचरण करने को बाध्य करती है। और जब उसे लाल–फीते में

---

1. जैनेन्द्र कुमार : प्रथम भाग, गदर के बाद, पृ0 63-64, (पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1978)

2. प्रेम चतुर्थी, प्रेमचन्द, पृ0 60

बंधा हुआ एक गुप्त विदेश पत्र मिलता है जिसमें असहयोगियो के दमन की आज्ञा दी गई है। ऐसा पत्र पढ़कर उसका मान उसे कचोटने लगता है और आर्थिक सघर्ष होते हुये भी वह अपनी बीस साल पुरानी नौकरी से त्याग--पत्र दे देता है। तथा उसका बड़ा पुत्र शिवविलास भी कालेज से अपना नाम कटवा लेता है।

प्रेमचन्द ने अपनी अनेको कहानियो मे ऐसे पात्रो का वर्णन किया है जो कि गॉधी जी के सिद्धान्तों से प्रेरित होकर अपने को सरकार के द्वारा सिद्ध घोषित होते हुये भी अपनी नौकरी छोड़ देते है और देश के लिये अपने रिश्ते, सगे--सम्बन्धी आदि का भी विरोध कर देते है। प्रेमचन्द्र ने गॉधी के असहयोग आन्दोलन के हर पक्ष की कहानी में भलीभाति से संजोया है। जिस प्रकार से गॉधी जी जनता में आत्मविश्वास की भावना को जगाने के लिये स्वाधीनता आन्दोलन को सफल बनाना आवश्यक मानते है, लाल-फीता कहानी में ठीक उसी प्रकार का चित्रण किया है कि शिवविलास एक समाचार पत्र को निकालना चाहता है। उसका उद्‌देश्य सदाचार, सरल, विवेकशील आचरण का प्रचार करना है।

अतः उसके प्रचार के कारण मध्यवर्ग में एक ही परिवार मे दो विरोधी मत पनपने लगे थे। दोनों में यही कारण था कि एक पक्ष सरकारी नौकरी के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन विरोधी था तथा अग्रेजों के पक्ष में था उसका कारण अंग्रेज सरकार नहीं वरन् सरकारी पद और सुविधायें ही थीं।

यदि मुशी जी राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के प्रति उदासीन है तो इन्ही के द्वारा रचित 'चकमा' कहानी में कहानी का पात्र सेठ चन्दूलाल अवसरवादी है। प्रथमतः वह पुलिस अधिकारियों को रिश्वत देकर विदेशी माल बेचने की सुरक्षा पाता है। जब उसने

देखा कि सुधारकों–जिनकी पीठ पर शक्तिशाली लोकप्रिय कांग्रेस का पलड़ा भारी है तो उसी समय अपन व्यान बदल देता है। और कांग्रेस सुधार समिति के घोषणा–पत्र पर हस्ताक्षर कर देता है और उससे समझौता भी कर लेता है। इस समझौते की आड़ मे सेठ का राष्ट्रविरोधी रूप देखने को मिलता है। वह कहता है-- "मै तो मौजूद हूँ वह डाल–डाल तो मै पात--पात चलूँगा विलायती कपड़े की गाँठ निकलवाइये और व्यापारियों को देना शुरू कीजिये।"[1]

मुंशी ने जहां एक ओर राष्ट्रविरोधी का वर्णन किया वहीं दूसरी ओर उनके समकालीन नन्ददुलारे बाजपेई ने भी व कहानीकार बैचेन शर्मा उग्र ने अपनी कहानी "उसकी माँ"[2] में भी एक नवयुवक जो देशभक्त के आन्दोलनों नैतिक समर्थन मात्र देता है और उसके चाचा उसका विरोध करते है और अनुशासनहीनता कहकर बहुत ही क्षुब्ध होते है। क्योंकि वह स्वयं एक सरकारी नौकर है उन्हें अपनी नौकरी और सुविधाओं का खतरा महसूस होता है। और जब वह क्रान्तिकारियों में जाकर शामिल हो जाता है और पकड़ा जाता है तो चाचा जी किताबों पर पेसिल से लिखा हुआ उसका नाम भी मिटा देते है वह पुलिस द्वारा पूछतांछ की सम्भावना की कल्पना करके उस युवक से किसी भी प्रकार की जान--पहचान से इनकार करने की तैयारी भी करने लगत हैं।

इस कहानी का द्वन्द्व यही है कि चाचा जी आखिर तक अपने दिल और मष्तिष्क से देश भक्त भतीजे की याद को मिटा नहीं पाये और आन्तरिक कुण्ठा में गलते रहे। "उसकी माँ" में लाल और उसके सरकारी चाचा के बीच टकराव पैदा हो गया है, तभी लाल कहता है-- "इस पराधीनता के विवाद में मै और मेरे चाचा आप दो भिन्न–भिन्न सिरों पर हैं। आप कट्टर राजभक्त में कट्टर राज विद्रोही। आप पहली

---

1. प्रेम प्रसून : प्रेमचन्द, पृ0 107
2. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ : नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0 158

बात को उचित समझते हैं। कुछ कारणों से आप अपना पथ नहीं छोड़ सकते मैं दूसरी बात को उचित समझता हूँ कुछ कारणों से आप अपना पथ नहीं छोड़ सकते, अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिये। मैं भी अपना पथ नहीं छोड़ सकता।"[1] यह विरोध दोनों को अपने-अपने पथ पर अड़े रहने के लिये बाध्य करता है।

मध्यम वर्ग की यही मनोवृत्ति प्रेमचन्द की कहानियों में भी विभिन्न पात्रों के माध्यम से चित्रित हुई है। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष से यह वर्ग या तो उदासीन है या ढके छिपे उसका विरोधी है। प्रेमचन्द की कहानी 'दुस्साहस' का मुंशी अपने स्वार्थ के लिये स्वयसेवकों पर पुलिस से जुल्म भी करवाता है और उदासीन भी रहता है। प्रेमचन्द की इस शिक्षित मध्यम वर्ग की मानसिकता का परिचय देते हुये कहा है– बंग-भंग हुआ. नरम गरम दल बने, राजनैतिक सुधारों का अविर्भाव हुआ, स्वराज्य की आकांक्षाओ ने जन्म लिया, आत्मरक्षा की आवाजें देश में गूँजने लगी, किन्तु मुशी जी की अविरल शान्ति में जरा भी विघ्न न पड़ा। अदालत और शराब के सिवाय वह संसार की सभी चीजो को माया समझते थे। सभी से उदासीन रहते थे।[2]

अतः इस प्रकार प्रेमचन्द की कहानियो में ऐसे अवसरवादी चरित्रो के माध्यम से "ब्रह्म का स्वॉग"[3] और "आदर्श विरोध"[4] समाज और राजनीतिक स्थिति और शिक्षित भारतीयों का आचरण और भी दृष्टिकोण अंकित हुआ है। शोषित सरकारी दमन की सताई गुलाम जनता के निर्वाचित धुआँधार भाषणों से जनता के विश्वास पात्र बनते

---

1. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ : सं0 नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0 160
2. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 199--200
3. प्रेम प्रसून : प्रेमचन्द, पृ0 109
4. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 224

हैं और अपनी असेम्बलियों मे पहुँचकर सरकार के कृपापात्र बने रहने के सभी स्याह सफेद प्रयत्न करते हैं। दोनों पक्षो से लाभ उठाना ही इनका उद्देश्य है। 'आदर्श विरोध' का नायक कहता है--

"किन्तु उससे परिवर्तन नहीं किया जा सकता। आधे नहीं यदि सारे मेम्बर हिन्दुस्तानी हों तो भी वे नई रीति का उद्घाटन नहीं कर सकते। वे कैसे भूल जावें कि कौसिल में उसकी उपस्थिति केवल सरकार की कृपा और विश्वास पर निर्भर है। उनके अतिरिक्त उन्हें यहाँ आकर अपनी आन्तरिक अवस्था का अनुभव होता है और जनता की अधिकांश शंकायें असंगत प्रतीत होने लगती है, पद के साथ उत्तरदायित्व का भारी बोझ भी सिर पर आ पड़ता है। किसी नई नीति की सृष्टि करते हुए उनके मन में यह चिन्ता उठनी स्वाभाविक है कि कहीं उसका फल आशा के विरूद्ध न हो। यहाँ वस्तुतः उनकी स्वाधीनता नष्ट हो जाती है। उन लोगों से मिलते हुए भी झिझकते रहते है जो पहले इनके सहकारी थे, पर अब अपने उच्छृंखल विचारों के कारण सरकार की आँखों में खटक रहे हैं। अपनी वक्तृताओं में न्याय और सत्य की बाते करते हैं। सरकार की नीति को हानिकर समझते हुए भी उनका समर्थन करते हैं। जब इसके प्रतिकूल वे कुछ कर ही नहीं सकते, तो इसका विरोध करके अपमानित क्यों बनें? इस अवस्था में यही सर्वोचित है कि शब्दाडाम्बर से काम ले-कर अपनी रक्षा की जाय।'[1]

असहयोग आन्दोलन ने पूरे देश को झकझोर दिया है, किन्तु व्यापारी वर्ग, राजा, जमींदार और विदेशी शिक्षा प्राप्त कर्मचारी, सरकारी सुविधायें प्राप्त करने वाला वर्ग है, जो कभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, कभी वचन से और कभी--कभी दोनों से

---

1. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 226

इस आन्दोलन से विरूद्ध हैं, और इसे असफल बनाने का पूरा प्रयत्न करते है। भगवती चरण वर्मा की कहानी 'कुंअर साहब मर गय' में कुँअर साहब विदेशी गाड़ी रखते है, विदेशी ही शराब पीते हैं, और विदेशी साहबों की तरह रहते है। एक दिन उन्हे शराब नहीं मिलती। वह सिविल लाइन्स में स्थित अपने बँगले से शराब के लिए निकलते है, किन्तु एक जलूस में घिर जाते हैं, और गाड़ी से उतर कर पुलिस को असहयोगियो पर डन्डे व लाठियाँ बरसाने से रोक देते हैं। इतना ही नहीं कुँअर साहब 'महात्मा गाँधी की जय" व "भारत माता की जय" का नारा भी लगाते है किन्तु थाने पहुँचकर उन्हें भरपेट शराब पीने को मिल जाती है तो उनका व्यवहार पूर्णतः बदल जाता है। जब कुँअर साहब के देशभक्ति की चर्चा पत्रों में हुइ तो सत्याग्रही उनकी प्रशसा के लिए कोठी पर पहुँच गये। कुँअर साहब विलायती व्हाईट हार्स शराब पी रहे थे वे बोले--

"अबे ओ ......कलुआ दख तो इन खद्दरपोशों को किसने बँगले में घुस आने दिया? इनसे कह दो कुँअर साहब मर गय।"[1]

इस कहानी में उस वर्ग की एक आन्तरिक व्यथा उभरी है, जो व्यवस्था का ही नहीं उनके द्वारा दी गई सुविधाओं का भी गुलाम हो चुका है। यह वैभव विलास ही उसके अस्तित्व की अनिवार्यता बन चुकी है। वह अपनी अन्तरात्मा की आवाज निकलने वाले छिद्रों को भी सीमेन्ट कर देता है। इस कहानी में विदेशी कूटनीति चरित्र के भी दर्शन होते हैं। अपने हित के लिए वह समाज पर प्रभाव रखने वाले वर्ग को नैतिक बल से रिक्त कर रही थी; यह वर्ग राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध नहीं करता था पर तटस्थ तो रहता ही था।

---

1. इन्सटालमेन्ट : भगवती चरण वर्मा, पृ0 60

प्रथम युद्ध के बाद सेना पर होने वाला व्यय बढ़ने लगा। दोहरी राजनीति व्यवस्था में किसान व मजदूर बुरी तरह पिसने लगे थे। देश मे करोड़ों लोग ऐसे थे जो एक समय खाना खाते थे। भयकर अकालों ने भुखमरी को जीवन की सामान्य स्थिति बना दिया था। इन लोगों का प्रतिनिधित्व प्रेमचन्द की कहानी आदर्श विरोध' मे बड़े ही सहज ढंग से किया गया है। "आदर्श विरोध" का पात्र मिस्टर मेहता कहता है–

"मुझे आश्चर्य है कि गैर सरकारी सदस्यो ने एक स्वर से ही प्रस्तावित व्यय के उस भाग का विरोध किया जिस पर देश की रक्षा, शान्ति, सुरक्षा और उन्नति अवलम्बित है। आज शिक्षा सम्बन्धी सुधारो को, आरोग्य विधान को, नहरों की वृद्धि वेतन वाले कर्मचारी का अधिक ध्यान है। मुझे आप लोगो के राजनैतिक ज्ञान पर इससे अधिक विश्वास था। शासन का प्रधान कर्तव्य भीतर और बाहर की अशान्तिकारी शक्तियों से देश को बचाना है। शिक्षा और चिकित्सा, उद्योग और व्यवसाय गौण कर्तव्य है। हम अपनी समस्त प्रजा को अज्ञान सागर मे निमग्न देश सकते हैं, समस्त देश को प्लेग और मलेरिया में ग्रस्त रख सकते हैं, अल्प वेतन वाले कर्मचारियों को दारूण चिन्ता का आहार बना सकते हैं, कृषको को प्रकृति की अनिश्चित दशा पर छोड़ सकते हैं, किन्तु अपनी सीमा पर खड़े किसी शत्रु को नहीं देख सकते। अगर हमारी आय सम्पूर्णतः देश रक्षा पर समर्पित हो जाय, तो भी हमको आपत्ति न होनी चाहिये।"[1].

प्रेमचन्द जी सृजन की सारी निर्माणकारी सम्भावनाओ की पहचान रखते हैं क्योकि मानवता इसमें आहत होती है, कराहती है, व्यक्ति तितर–बितर हो जाता है

---

1. मानसरोवर भाग आठ : प्रेमचन्द, पृ0 229–230

या अपनी जान भी गवॉं बैठता है। देश के अन्तर्गत सुरक्षा में बड़ी मात्रा मे आपत्ति आने की सम्भावना निमाण होती है। जैनेन्द्र ने इस समस्या का चित्रण करके उसका धिक्कार किया है--

"समाज की रक्षा का दायित्व उन पर है। कानून शान्ति रक्षा के वे उत्तरदाता है, और कानून हर किसी के हाथ मे नहीं दिया जा सकता। किसी को उसे अपने हाथ ले लेने की स्वतन्त्रता नहीं हो सकती। इसके अर्थ अराजकता अनियन्त्रण धॉंधलबाजी होंगे, और यह धांधली कभी श्रयस्कर नही।"[1]

स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए विविध प्रकार के आन्दोलन चलाये गये जुल्मी और अतातायियों अंग्रेजों को इस मुल्क से हट जाने के लिए विविध मार्गों से इशारे दिये, विद्रोह किए, सग्राम किये, स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए अनेक देशवासियो ने अपने प्राण न्योछावर कर दिये। यह सिलसिला लगातार जारी रहा। अंग्रेजों को किस प्रकार हटाया जा सकता है। इसके बारे मे विविध दलों की विविध कोशिशें चलती रहीं। स्वातन्त्र्य प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। उसके बारे मे विविध मत विविध प्रश्न उपस्थित करते थे। यह भी एक समस्या थी कि इसे किस विधि से प्राप्त किया जाये? जैनेन्द्र जी ने इसका चित्रण करके एक निष्कर्ष प्रकट किया कि किसी भी हालत में अंग्रेज यह देश छोड़कर चले जॉंये। तब चौधरी ने कहा-- "क्या कहलवाते हो इन बेचारों से, जो है सो मै कहता हूँ। बात कुछ बड़ी भी तो नहीं हैं। मै तुम लोगों को यहॉं नहीं चाहता। तुम लोगों का राज है मै नहीं जानता। तुम अंग्रेज हो, अपने देश मे रहो। हम हिन्दुस्तानी है, हम यहॉं रह रहे हैं। तुम्हारे यहॉं जगह नहीं है, कम है-- अच्छी बात है, तो फिर यहॉं रहो, यह तुम्हारी

---

1. जैनेन्द्र कुमार : प्रथम भाग : गदर के बाद, पृ0 63--64, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1978

सिर पर चढ़ने की आदत कैसी है? सो ही. हम नही चाहते, ऐसे जब तक रहोगे, तब तक तुम्हारे खिलाफ रहंगे। भाई बनकर रहोगे, बराबर बराबर के, गोरेपन की ऐंठ में न रहोगे तो हम भी तुमसे ठीक बरतेंगे, और फिर देखे कौन तुम्हारा बाल भी छू सकता है। पर वैसे? न दम में दम है तब तक तुम्हारे दुश्मन रहेंगे। बस और क्या कहलवाते हो।"[1]

शक्ति के पूजक शासन तन्त्रों में मार्शल ला को जैनेन्द्र ने जन कल्याण में बाधक मानकर "आपदकाल" को समस्या माना है। अधिकार और ज्यादा अधिकारों की प्राप्ति एक प्रकार के मद ही है। अधिकार की आदत अधिक अधिकार माँगती है। इसके नागरिक का अधिकार तथा स्वतन्त्र सकोच अनुभव करता है। स्वातन्त्र्य पर रोक लगाई जाती है। इस समस्या का चित्रण जनेन्द्र ने किया हे--

"यह तर्क शक्ति का है, और आपत्ति में शक्ति का राज्य न हो तो यह धरती विध्वंश हो जाये। इस शक्ति राज्य का नाम है। "मार्शल ला" अर्थात् "कानून शक्ति की मुट्ठी में" तब न्याय को आले में बैठा दिया जाता है। राजधर्म, नीतिधर्म आदि धर्मशास्त्रों को भगवद्-भजन करने दिया जाता है।"[2]

वह शासन अच्छा होता है जो अपनी जिम्मेदारियाँ अच्छी तरह से निभाता है। जैसे कि पुलिस चौराहे पर खड़ी होकर अपना काम सुचारू रूप से या सावधानी से करती है। इसलिए ताँगे मोटर सही ढंग से चलाये जाते है। जब कोई दुर्घटना घटित होती

---

1. जैनेन्द्र कमार, प्रथम भाग, गदर के बाद, पृ0 63-64, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1978

2. वही

है और उसकी जड़ में जाकर पुलिस तहकीकात नहीं करती है तो और लोगों में इसके कारण विविध तरह की अफवाहें या खबरें फैल जाती हैं, तथा जनजीवन आतंकित और सम्भ्रमित होने की सम्भावना होती है। इस समस्या का चित्रण जैनेन्द्र ने संकेत करके जनता में इस कहानी में किया है-- 'भीड़ बढ़ती ही चली गई। हिन्दू भी थे, मुसलमान भी। इसमें दो राये न थी कि यह शख्स जिन्दा न बचने पाये, और सचमुच सबको बुरा मालूम हो रहा था कि पुलिस कौन चीज है जो सामने आकर उनके और उस बदमाश के बीच, यानी इन्साफ और जुर्म के बीच हायल है।"[1]

इस देश का हर एक व्यक्ति इस देश का नागरिक है और सभी को समान अधिकार है। इस बात को भूलकर जॉति--पॉति के आधार पर खड़ा हुआ यह समाज देश की अखण्डता और एकता के बजाय अपनी जाति तथा संगठन को ज्यादा महत्व देने लगता है। देश की एकता तथा सुरक्षा के बजाय जातीय सगठन के बचाव के लिये वह लड़ने तथा झगड़ने को भी तैयार हो जाता है। यह भारत की बहुत बड़ी समस्या है। (जनता) इस कहनी में लेखक ने इसका चित्रण किया है-- इस बीच बात आग की तरह फैलती रही। महावीर दल, अर्जुन सेना, भीमसेना, सगठन हिन्दू रक्षा, सभा और अखाड़ा, बजरंग बली आदि सदलबल मौके पर आ गये, इधर हुसैन गोल और रफीक ने इस्लाम तथा रजाकाराने दीन भी चौकन्ने हो गये।[2]

क्या बात है इसे जान लेने के बजाय जातीय सगठन चौकन्ना होकर गली--गली में जब भीड़ बढ़ाते जाते है तब आवारागर्दी तथा हो हल्ला मचने में कोई देर नहीं लगती। जैनेन्द्र ने इस समस्या की ओर भी सकेत किया है। क्योंकि शासन में सत्ता

---

1. जैनेन्द्र कुमार प्रथम भाग, जनता, पृ0 195, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1978
2. जैनेन्द्र कुमार-- प्रथम भाग-- जनता, पृ0 197, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1978

की आकांक्षा होती है। तो वह अपने हाथ में अधिकारों को केन्द्रित करना चाहता है। जिसके कारण स्वराज्य में मिलने वाले व्यक्ति को अधिकारों में संकोच आता है। प्रजातन्त्र में व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा पूर्ण रूप से होनी चाहिये। ऐसा माना गया है तभी तो उसे विशिष्ट अर्थ प्राप्त होता है। शासक में सत्ता आकांक्षा न हो ऐसा जैनेन्द्र मानते है। सत्ता आकांक्षा को उन्होंने समस्या माना है।

"जनार्दन की रानी" मे जयनायक जनार्दन जैसे शासक की आवश्यकता पर बल दिया है। वह राजा है प्रजा उसके लिये रानी है। जिसके विश्वास का वह अनुचित लाभ नही उठाता, वरन उसके प्रति अपना सहज प्रेम के कारण उसी की इच्छा और आज्ञा का पालन करता है। जो जनार्दन के लिये प्रिय रानी थी, बन्दिनी बनी दिखाई देती है। जैनेन्द्र ने इसी समस्या का चित्रण किया है। लेकिन वहां श्रम और सेवा पर आधारित राज्य शासन बढ़ाने के बजाय किसी एक हाथ में शासन की बागडोर अपने स्वार्थ को बढ़ाने के लिये ली जाती है तो वह अहितकर तथा लोकेच्छा का अवमान करना ही होता है-- "जानते हो यह राज किसकी शक्ति से और किसके आशीर्वाद से चलता है। .... महारानी के सेवा और श्रम से।"[1] महारानी को जनार्दन जनता मानती है। न्यायप्रिय राजा के रहते एकछत्र राज्य पद्धति भी जनता के हित को सर्वोपरि मानकर चलती है और सत्ताकांक्षी सचिवो के हाथो जनतन्त्र भी जनहित नही कर पाता। इसी समस्या को जैनेन्द्र ने "कालधर्म"[2] नामक कहानी में चित्रित किया है। जनता का शासन जब तक सफल शासन तथा सही अर्थ में जनता का शासन नहीं होता। तब तक उसके लाभ सामान्य व्यक्ति

---

1. जैनेन्द्र कुमार-- प्रथम भाग, जनार्दन की रानी, पृ0 131, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1978
2. जैनेन्द्र कुमार - तृतीय भाग-- कालधर्म, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1983

तक नहीं पहुँचते। हर एक व्यक्ति जब आत्मशासित नहीं होता, तब तक उस देश का सही अर्थ में विकाश नहीं होता। दस--बीस लोगों के हाथ में शासन रहे, और वे ही उसका लाभ उठायें। इसमें प्रजातन्त्र की सफलता नही है। ऐसा जब तक होता रहेगा देश अपनी प्रगति नहीं कर सकेगा। इस समस्या का चित्रण करते समय जैनेन्द्र इस बात का आग्रह करते हैं कि शासन सामान्य व्यक्ति को आत्मशासित करने की ओर ध्यान दें- "शासन प्रणाली को उस समय तक बदलते जाना है। जब तक उसका केन्द्र सब में नहीं फैल जाता और प्रत्येक व्यक्ति आत्मशासित नहीं होता।"[1]

सच्चे देशभक्तों के लिये आज देश सेवा एक समस्या बनी हुई नजर आ रही है। राजनैतिक सेवा मानो निष्कासित हो गई है। देशभक्तों को सेवा का व्रत लेकर आगे चलना दूभर सा हो गया है। आज ऐसी स्थिति निर्माण हो गई है। सेवा के प्रति देशभक्ति की दयनीय स्थिति को चित्रित करते हुये जैनेन्द्र ने इस समस्या का उपहासात्मक चित्रण किया है-- "आतिथ्य" में जैनेन्द्र जी कहते है-- "अब मेरे लिये दो ही काम थे देशसेवा और भटकन। इस देश सेवा में कई वरस लगाये, पर नाप नही सका कि देश कितने इंच आगे बढ़ा। आखिर जब देश वहीं का वहीं दिखा-- बल्कि चाहे कुछ पिछड़ा हुआ भी-- और सेवा का कुछ अन्त ही नजर नहीं आया और न महत्व .... लोग भी मेरी देश सेवा की कम प्रशंसा करने लगे और उससे तंग से दीखने लगे......।"[2]

देश सेवा आज एक थोथी बात राजनीति में मानी जा रही है। इसी वजह से समस्या निर्माण हो गई है, और स्वार्थी लोगों की झुन्ड राजनीति में अपनी जड़े जमा

---

1. जैनेन्द्र कुमार, तृतीय भाग--कालधर्म, पृ0 179 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1983
2. जैनेन्द्र कुमार--छठा भाग, आतिथ्य, पृ0 90, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1981

बैठी है। जिसके कारण देश की बर्वादी हो रही है। भारतीय राजनीति में यह शोकान्तिका है कि इसे स्वार्थान्ध बना दिया है। जैनेन्द्र वैफल्यगस्त सेवा वृतधारी देशभक्त की मनोव्यथा द्वारा टूटे हुये आदर्शों को स्वर देते हैं– "अपनी देश सेवा मे मैं अभी तक एक भी रोगी अच्छा नहीं कर पाया हूँ यहाँ तक कि अपने को भी कुछ नहीं बता पाया हूँ।"[1]

व्यक्ति के लिये यह आवश्यक नहीं कि, वह कुछ करें, प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको इसी प्रकार हर एक काम मे से संलग्न या तटस्थ पाता तथा समझता जा रहा है। जिसका परिणाम यह होता है कि हर व्यक्ति इस व्यवस्था से कटकर दूर चला जाता है। शर्मा जी का कथन इस बात का दिग्दर्शन करता है कि हर व्यक्ति अपने आपको कैसे तटस्थ करता जा रहा है–

"देखो बेटे, देश के नेता लोग सो नहीं रहे है। वे जगे हुये है और तत्पर हैं। ऐसे में ज्यादा जिम्मेदारी औरों को अपनी नहीं माननी चाहिये। समझे न ? समितियाँ है और काम के लिये तुम जवान लोग हो। फिर क्या चाहिये ? नेता है जो कटिबद्ध है, कार्यकर्त्ता है जो तुम जैसे पारायण है, मै--बहुत अधिक व्यक्ति हूँ। मेरे लिये काम रोको नहीं, चले चलो।"[2]

बूढा कहता है, जवान है जो काम सँभालेगा। जवान कहता है-- नेता हैं जो काम सँभाले है। नेता कहता है– बुजुर्ग है, और एक दूसरे पर काम छोड़कर निश्चिन्त है। परिणाम देश की स्थिति गिर जाती है। जैनेन्द्र उसका वर्णन इस प्रकार करते

---

1. जैनेन्द्र कुमार--छठा भाग– आतिथ्य, पृ0 91, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1981
2. जैनेन्द्र कुमार--दसवाँ भाग– चक्कर सदाचार का, पृ0 144, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1985

हैं– "मैने अपने मन में माथा ठोका, यही वस्तु है हमारी अवनति के मेल मे यह असंलग्नता और तटस्थता, जैसे जो है, दूसरे पर है। आप बस साक्षी है, दृष्टा है।'[1] इस समस्या का उत्तर यही होगा कि, हर एक समझे "नागरिक वह भी है और नागरिक का दायित्व है .....।"[2]

स्वातन्त्रय प्राप्ति के लिये विविध दल कार्यरत थे। इनमें प्रमुखता नर्मदल और गर्मदल इस प्रकार के दो भाग थे। नर्मदल सदरगीर मार्ग से तथा गर्म दल सशस्त्र क्रान्ति की धुन में बम, पिस्तोल, खजाना लूटना आदि का अबलम्बन कर रहा था। हिसा का जैनेन्द्र ने विरोध किया। सदनगीर तथा अहिंसात्मक आन्दोलन का मार्ग ही याग्य बताया। जनता के सहभाग से क्रान्ति को तथा स्वातन्त्र्य आन्दोलन को यशस्वी किया जो कानून जनता की आवाज मुखर और मुक्त नहीं होने देता उस कानून को अहिसात्मक मार्ग से बदलने की आवश्यकता पर जैनेन्द्र बल देते हैं। हिंसा से बर्वरता बहती है। व्यक्ति को रिवाल्वर के धाक से हटाने से कोई विचार प्रणाली नष्ट नहीं होती। इसलिये जैनेन्द्र हिसा में विश्वास नहीं रखते। जैनेन्द्र जी कहते हैं–

"राजनीतिक मूल्य होने का आशय यही है कि हम सगठन और सख्या को महत्व देते है। नीति और गुण को गौण कर देते है।"[3]

अतः सत्ता से सुविधा और साधन प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को मुक्त बोध के शब्दों में समझदार बनना पड़ रहा है। दुरूपयोग और भ्रष्टाचार में जिस नयी

---

1. जैनेन्द्र कुमार–दसवॉ भाग–चक्कर सदाचार का, पृ0 154, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1985
2. वही,
3. प्रश्न और प्रश्नः जैनेन्द्र, पृ0 19

संस्कृति के विकास की सम्भावना और स्वरूप मुक्तबोध ने देखा था। स्वाधीनता के दूसरे दशक में उसका भयानक रूप प्रकट होने लगा। मुक्तिबोध ने कहा था-- राजनीतिक क्षेत्र में यह चारित्रिक संकट किसी तीसरे प्रकार से व्यक्त होता है। .... अत सामान्यतः जनता के लिये अधिकाधिक भयावह और दुर्बह होती जायेगी। ऐसी भयानक दृश्यों की भारत में आज भी कमीं है।"[1]

यह मानवीय करूणा भीषण नरसहार में भी अनेक अर्थच्छवियों मे अपनी शाश्वतता को चरितार्थ करती है। अज्ञेय की कहानी "शरणदाता"[2] मे बाहरी परिस्थितियों के दबाव में सम्बन्धों और मूल्यों को विघटित होने की प्रक्रिया के बीच मानवीय करूणा की शाश्वतता के प्रति आस्था के स्वर की गूँज है। अतः विषाक्त परिस्थितियों मे उसकी मानवीय दृष्टि भी घृणा और प्रतिशोध के लिये हिंसक हो उठी। अतः देविन्दर लाल को खाने में जहर मिलाकर दे दिया गया। किन्तु रफीकुद्दीन की पुत्री जेबुन्निसा पत्र द्वारा खाने के साथ रखकर उसे सावधान कर देती है। देविन्दर लाल की आँखै उसे निःस्पन्द उसे देखती रहीं, और वह सोचने लगे- आजादी। भाईचारा। देश ..... राष्ट्र... एक ने कहा कि हम जोर करके रखेगें और रक्षा करेगें, पर घर से निकाल दिया। दूसरे ने आश्रय दिया, और विष दिया। और साथ में चेतावनी कि विष दिया जा रहा है। देविन्दर लाल का मन ग्लानि से उमड़ आया। इस धक्के को राजनीति की भुरभुरी रेत की दीवार के सहारे नहीं, दर्शन के सहारे झेला जा सकता है।'[3] जेबुन्निसा मानीवय करूणा के धर्म को निभा देती है। देविन्दर लाल बच जाता है। जेबू का आग्रह है कि हिन्दुस्तान

---

1. एक साहित्यिक की डायरी- मुक्तिबोध
2. स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कहानी कोश : भाग 1, पृ0 41, सम्पादक- महेश दर्पण
3. स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कहानी कोशः भाग 1, सं0 महेश दर्पण, पृ0 50

में भी अकलियत का कोई मजलूम हो तो इस धर्म को याद रखा जाये। भुला न दिया जाये। इसी प्रकार महीप सिंह की कहानी "पानी और पुल"[1] मानवीय करूणा के सन्दर्भ में राजनैतिक हादसे विभाजन की निरर्थकता के सार्थक बोध को उजागर करती है। राजनैतिक स्वार्थो ने धरती के धरातल का बंटवारा कर दिया। परन्तु वह पुलों के नीचे आज भी अबाध गति से आज भी प्रवाहित हो रही है– "मेरी दृष्टि नीचे की ओर जा रही थी। वहाँ धुप्प अन्धेरा था पर मैं जानता था कि वहां पानी है। झेलम नदी का कल--कल करता हुआ स्वच्छ और निर्मल पानी जो उस पत्थर और लोहे के बने हुये पुल के नीचे से बह रहा था।"[2]

पुल के नीचे बहता हुआ पानी मानव संस्कृति की उस चिर सचित विरासत का प्रतीक है। जेहलम नदी का पुल सम्बन्धों की राजनैतिक की ऊपरी कठोरता और बर्बरता का प्रतीक है जिससे मुक्ति के लिये संघर्ष जारी है। वदी उज्जमाँ की कहानी परदेशी में गहरी और शाश्वत अभिव्यक्ति मिली है। कहानी का वक्ता छांकों की पीड़ा से उद्वेलित होकर कानून और राजनीति द्वारा दिये गये व्यक्ति के त्रास की शिद्दत को इस प्रकार से व्यक्त करता है– "मै जानता हूँ कि, कानून का जज्बात से कोई ताल्लुक नहीं है, पर न जाने क्यों एकाएक मेरे दिमाग में जैसे काम करना बन्द कर दिया है। कानून की मोटी--मोटी किताबें जैसे छाकों के आँसुओं में डूबती जा रही है और मै रूह की गहराई से कही शिद्दत से यह महसूस कर रहा हूँ। कि छाकों दरअसल परदेश जा रहा है। यहां की हर चीज उसके लिये अजनबी है।"[3] इस कहानी की विशिष्टता उसका पात्र छांकों

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी कोश : भाग 1, सं0 महेश दर्पण, पृ0 893
2. वही पृ0 898
3. अनित्य– बदी उज्जमा, पृ0 105

है।जिसका आश्रित परिवार भारत में है, और वह धन कमाने के लिये पाकिस्तान पहुँच गया। बदी उज्जमाँ की कहानी 'अंतिम इच्छा'[1] में भी विभाजन को स्वार्थों का षड़यन्त्र माना है जो महज इन्सान के विरूद्ध रचा गया था।

विष्णु प्रभाकर की कहानी "मेरा वतन"[2] अपनी धरती से अपनी ही क्षेत्रीय संस्कृति और नई परिस्थिति में अपने वतन में व्यक्ति इतना वेगाना इतना अजनबी हो गया है कि उसे पाकिस्तान में भारत का जासूस समझकर गोली मार दी जाती है और भारत में पाकिस्तान का जासूस समझकर उसे जेल में डाल दिया जाता है। इस गहरी खींचातानी ने उसे विक्षिप्त या पूरा पागल बना दिया है। कहानी की संवेदना बहुत गहरी है और विभाजन की त्रासदी का जीवन से मृत्यु तक की यातना का करूण चित्रण ऊपर बदी उज्जमाँ की परदेशी नामक में भी उल्लिखित है।

मोहन राकेश की कहानी "मलबे का मालिक"[3] के विरोधाभास का उद्‌देश्य सांस्कृतिक सहिष्णुता और मानवीय करूणा की निरन्तरता पर राजनीतिक आघात का ऐतिहासिक व्यर्थता का बोध कराती है। पहलवान रक्खागनी परिवार का मित्र और विश्वासपात्र था। उसी ने गनी के पुत्र को मार डाला। उसकी पुत्रबधू और बेटियो का बलात्कार करके नदी में बहा दिया। गनी यह नहीं जानता था कि रक्खा पश्चाताप में गल रहा था-- "उसके होंठ सूख रहे थे और आँखों के इर्द--गिर्द दायरे गहरे हो गये है। वह उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोला, जो होना था हो गया रक्खिआ। उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता

---

1. पुल टूटते हुये– बदी उज्जमाँ, पृ0 53
2. सिक्का बदल गया : सं0 डा0 नरेन्द्र मोहन, पृ0 219
3. प्रतिनिधि कहानियाँ : मोहन राकेश, पृ 50

है। खुद नेक की नेकी बनाये रखे और बद की बदी माफ करे। .... अच्छा रक्खे पहलवान।"[1] यह विभाजन के व्यर्थता बोध में मानवीय करूणा की निरन्तरता का बोध उपजा है यही बोध अज्ञेय की कहानी "बदला"[2] और "लेटरबाक्स"[3] मे भी सशक्त स्वर में मुखरित हुआ है।

अज्ञेय की कहानी "रमन्ते तत्र देवता"[4] में हिन्दू मुस्लिम दगो में कलकत्ता में रहनी वाली एक स्त्री अपने पति से बिछुड़ गई है। सरदार विशनसिह उसे संकट में देखकर उसकी सहायता करते है। इसी प्रकार की इन बहुमुखी अनुभूतियों से भरी जब उसे पति के साथ तय हुये स्थान पर पहुँचाते है किन्तु पति वहा नही मिला और रात हो गई तो स्थिति की गम्भीरता में सरदार साहब उस स्त्री को अपनी विधवा बहिन के साथ गुरूद्वारे में शरण दे देते हैं। सुबह होने पर जब वह उसे उसके पति के घर पहुँचाने गये तो पति जो खुद भी दंगों के कारण रात को किसी मित्र के यहां रहा था, सहसा उसके चरित्र और विशनसिंह की भद्रता को ही चुनौती देने लगता है। इसमें विशनसिह को अपना ही नहीं सिक्ख जाति के अपमान का भी एहसास होता है।

"देवेन्द्र इस्सर" की कहानी 'मुक्ति'[5] और 'श्रवण कुमार' की कहानी "मामूली लोग"[6] में देखी जा सकती है। "रामकुमार भ्रमर" की कहानी "अपने घर का पराया फासला"[7] में युद्धोपरान्त विभाजन के अतीत को दोहराया गया है। 1962 ई0 में

---

1. प्रतिनिधि कहानियॉं -- मोहन राकेश, पृ0 59
2. ये तेरे प्रतिरूप : अज्ञेय, पृ0 85
3. ये तेरे प्रतिरूप : अज्ञेय, पृ0 61
4. वही पृ0 72
5. सिक्का बदल गया : सं0 नरेन्द्र मोहन, पृ0 113
6. जहर : श्रवण कुमार, पृ0 21
7. युद्ध की तेरह श्रेष्ठ कहानियॉं : सं0 मनहर चौहान, पृ0 85

चीन भारत युद्ध में सेना ने जो गौरव खोया था। उसे 1965 ई0 में पुनः प्राप्त किया यह झलक इस कहानी में मिलती है। प्रियदर्शी प्रकाश की कहानी उसका मोर्चा में उन कर्मठ भारतीयों नागरिकों की झलक है जो अग्रिम मोर्चा पर लड़ती हुई फौजों की सहायता नैतिक सहयोग और उनके मनोबल को ऊँचा रखने के लिये देश में आर्थिक और नैतिक मोर्चा पर अपनी लड़ाई लड़ते हैं। एक लंगड़ा शिक्षक है जो जवानों के लिये रक्त दान भी कर चुका है और उनके पोस्टर जवान हमारे लिये मोर्चा पर लड़ रहे है। हमे अपने घरेलू मोर्चे संभालने चाहिये .....को वह पढ़कर सारी भीड़ उनसे जूते पालिश करवाती है। "युद्ध स्वयं अस्थाई होने पर भी मानव स्वभाव व संस्कृति पर स्थाई अमिट प्रभाव छोड़ता है।"[1] यह शब्द मनहर चौहान के है, और उनकी सार्थकता हमे बेदराही की कहानी "दरार"[2] और महीप सिंह की कहानी "युद्धमनः"[3] में मिलती है। बेदराही की कहानी दरार में युद्ध की पृष्ठभूमि में गॉव का वह आतंक और भयावह परिवेश साकार हो उठा है, जहॉ से लोग बमों और गोलियो से बचने के लिए भाग रहे है। दूसरी ओर ध्यान सिंह और उसकी पत्नी लज्या है। लज्या प्रसव पीड़ा के कारण जा नही सकती, किन्तु ध्यान सिंह वहॉ ठहरना नहीं चाहता। ध्यान सिंह जीवन बचाने की पीड़ा से जूझ रहा है और लज्या जीवन के सृजन की पीड़ा से। ध्यान सिंह ने देखा गॉव खाली हो चुका है और-- "इस तरह निरन्तर तोपों की गड़गड़ाहट सुनी नहीं थी। उस तरफ आकाश में धुऑं ही धुऑं उड़ रहा है– काला स्याह धुंआ। लगता है गौड़ से गॉव तक तो आक्रमणकारी बढ़ ही आया है।"[4] इसी आतंक की मनःस्थिति में मृत्यु की छाया से दूर भागने लगा। गोलों और बमों के साथ लज्या अकेली रह गई। उसने पुत्र को जन्म दिया। ध्यान सिह

---

1. युद्ध की तेरह श्रेष्ठ कहानियॉ : सम्पादक मनहर चौहान, पृ0 78
2. दरार : बेदराही, पृ0 80
3. घिराव : महीप सिंह, पृ0 65
4. दरार : बेदराही, पृ 86

लौटकर आया तो अपने आप में ही लज्जित् था। इसी प्रकार युद्धमनः में ऐसे व्यक्ति की मनः स्थिति है जो शायद स्वयं भी सेना का सेवानिवृत्त अफसर है। उसके चार पुत्र और तीन दामाद सन् 1965 की लड़ाई में अग्रिम मोर्चे पर् तैनात है। विष्णु प्रभाकर की कहानी "धरती अब भी घूम रही है"[1] स्वतन्त्रता के पश्चात् भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी को कथावस्तु बनाकर लिखी गई। वह शसक्त जो आज भी उतनी कहानी है। जो आज भी उतनी यथार्थ है। जितनी कि अपने रचनाकाल में थी। विष्णु प्रभाकर जी लिखते हैं कि--

"इस कहानी की प्रेरणा मुझे अचानक ही नही हुई। हमारे सामाजिक जीवन में जो भ्रष्टाचार घर कर गया है। उसके सम्बन्ध में अनेक घटनाओ से मुझे परिचित होने का अवसर मिला है। और उनका जो प्रभाव मुझ पर पड़ा, उन्ही का सामूहिक रूप यह कहानी है।"[2] हरिशंकर पारसांई की कहानी "भोलाराम का जीव"[3] पौराणिक मिथक के माध्यम से रिश्वतखोर सरकारी कर्मचारियों का परिचय व्यग्य शैली में चित्रित करती है। रिश्वत लेन--देन के प्रतीक शब्द भी अस्तित्व में आ गये हैं, जिनका प्रयोग "दफ्तरी भाषा" में खुले आम चलता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय जीवन के विभिन्न राजनैतिक सामाजिक आन्दोलनों का और भारतीय आर्थिक व्यवस्था का स्वातन्त्र्योत्तर आधुनिक हिन्दी कहानियों में अप्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है।

---

1. धरती अब भी घूम रही है : विष्णु प्रभाकर, पृ0 5
2. वही, पृ0 9
3. एक दुनिया समानान्तर : सं0 राजेन्द्र यादव, पृ0 374

अध्याय षष्ठम् (अ)

बेरोजगारी से जनमा आर्थिक तनाव व संघर्ष

बेरोजगारी से जनमा आर्थिक तनाव व संघर्ष

स्वतन्त्र भारत एक अल्प विकसित विकासशील देश है। इसलिये यहाँ बेराजगारी का स्वरुप औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों की अपेक्षा भिन्न है। लार्ड कीन्स के मतानुसार-- "विकसित देशों में बेरोजगारी का मुख्य कारण प्रभावी माँग की कमी है। आय में कमी होने से माँग में कमी हा जाती है जिसके फलस्वरूप मशीनें खाली पड़ी रहती है। और बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। भारत में इस प्रकार की बेराजगारी 1929 की विश्व मन्दी और 1966 व 1975 के औद्योगिक अवसाद के समय हुई थी। परन्तु भारत में सामन्यतया बेरोजगारी का मुख्य कारण जनसंख्या की अधिकता ओर पूँजी की कमी है।"[1]

भारत में बेरोजगारी और गरीबी की जुड़वा समस्या है। यह समस्या दिन-प्रतिदिन विकट रूप धारण करती जा रही है। प्रत्येक योजना में अतिरिक्त रोजगार की व्यवस्था की जाती है, परन्तु इसके बावजूद भी योजना के अन्त मे बेरोजगारो की संख्या पहले से कहीं अधिक होती है। भारत में ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में व्यापक रूप से बेरोजगारी फैली हुई है। दोनों क्षेत्रों में कार्यशील जनसंख्या का लगभग 9 प्रतिशत भाग बेरोजगार है। दोनों क्षेत्रों में अल्प रोजगार भी भारी मात्रा में फैला हुआ है, यद्यपि यह ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है। अत्यधिक जनसंख्या, दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली तथा पूँजी प्रधान उद्योगों का होना बेरोजगारी के मुख्य कारण हैं। क्योकि आज के भारत की आधुनिक महत्वपूर्ण समस्या बेरोजगारी की है। जैसा कि आंकड़ों से पता चलता है कि -- "सन् 1978 के कुछ अनुमानों के अनुसार ग्रामीण बेकारों की संख्या 16·5 मिलियन थी। आज इस संख्या को 27 मिलियन के आसपास बताया जाता है। सन् 2000 तक यह 126·5 मिलियन से भी अधिक हो सकती है।"[2]

---

1. भारत में आर्थिक विकास एवं नियोजन, रस्तोगी एवं राव, पृ0 1·111-12
2. खादी एवं ग्रामोद्योग पत्रिका, जुलाई, 1985, पृ0 389

आज गॉव से शहरों की तरफ़ प्रवास बढ़ता जा रहा है, क्योंकि गॉवों में कुटीर उद्योगों का पतन हुआ है, और वहॉ की आर्थिक व्यवस्था बेकारी एव अर्ध बेकारी के कारण दूषित हो गई है आय के साधन कम होने के कारण यह प्रवास शहरों की ओर हुआ। भारत गरीबी की ज्वलन्त समस्या है। विश्व के 125 गरीब देशों में भारत 123 वें स्थान पर है। केवल पाकिस्तान व इन्डोनेशिया ही भारत से अधिक गरीब है। स्वतन्त्रता प्राप्त के पश्चात् भारत की गरीबी प्रो0जी0 लाल के अनुसार इस प्रकार रही- "भारत एक गुलामी में रहा हुआ देश, जो सदियों से शोषण का शिकार रहकर गरीबी का शिकार हुआ। भारत न केवल गरीब हुआ बल्कि गरीबों में भी वर्ग बने कुछ अधिक गरीब, कुछ कम गरीब। कम गरीबों ने भी अधिक गरीबों का शोषण किया। अधिक गरीब और अधिक गरीब, कम गरीब और अधिक कम गरीब बनता चला गया।"[1] डा0 कास्टा ने गरीबी का अध्ययन करके उसे तीन वर्गो में बॉटा है-- अर्थात् अतिदीन, दीन और निर्धन।

उनके अनुगम के अनुसार - 1963--64 में 6.2 करोड़ व्यक्ति अति--दीन जीवन व्यतीत करते थे, 10.4 करोड़ दीन और 16.2 करोड़ व्यक्ति निर्धनता का जीवन व्यतीत करते थे।"[2] भारत की लगभग 78 प्रतिशत जन--संख्या गॉवों में निवास करती है। भारत में गरीबी के अनेक कारण हो सकते हैं। कुछ गरीब ऐसे है जिनके परिवार में बेरोजगारी है। कुछ के पास कृषि या अन्य व्यवसाय नहीं है। कुछ गरीब ऐसे है, जो अपाहिज है, या जिनके परिवार में वृद्धों का बाहुल्य है तथा कुछ भीख मॉगते है, और उसे ही व्यवसाय के रूप में मानते है।

---

1. योजना 16--30 सितम्बर, 1985, पृ0 11
2. रूद्रदत्त एवं के0पी0 सुन्दरम्- भारतीय अर्थव्यवस्था, चौदहवॉ संस्करण, 1981, पृ0 395

देश में पड़े नवयुवकों की संख्या में वृद्धि हुई, वृद्धि के आँकड़े रचनात्मक हैं, पर इसके विपरीत बेकारी के धन्धे आँकड़े की निराशा को बढ़ाते हैं। परिणाम में युवा छात्रों में असन्तोष भड़काना स्वाभाविक हुआ, वे अनुशासनहीन होने लगे, उनके क्रिया कलापों में आक्रोश भर आया, यह भी आन्तरिक संघर्ष का एक स्वर है। जिन हाथ पैरों को काम में लगना चाहिए। उन्हें नौकरी की खोज में वर्षों भटकना पड़ता है। अत उनकी मानसिकता क्षुब्ध और पीड़ित होने लगती है। कालाबाजारी, भृष्टाचार और प्रपंचों को अपनाकर दूसरे लोग खुशाली का जीवन यापन करते हैं। इस नजीर में देश की युवा शक्ति के नैत्यिक आत्म विश्वास को हिला दिया नैत्यिकता और आदर्श उनके लिए सबसे बड़े प्रश्न बन गये। यह युवा शक्ति जब निर्माण से नहीं जुड़ सकी, तो तोड़--फोड में लग गई और संघर्ष, संघर्ष, संघर्ष की आवाजें गूँजने लगीं। योजनाओं द्वारा--

"आन्तरिक गरीबी और विषमता को समाप्त करने के प्रयास किये गये, लेकिन आय और सम्पत्ति के वितरण में असमानता बढ़ती गई, यह विडम्बना ही है, कि यह असमानता उस समय की तुलना में आर्थिक है। जब आर्थिक नियोजन प्रारम्भ किया गया था।"[1] बी0एम0 ठाडेकर तथा नीलफण्ठ ने "राष्ट्रीय सैन्थ्लि सर्वेक्षण" द्वारा निष्कर्ष निकाला कि सन् 1960–61 से 68–69 तक के मध्य व्यय में औसतन 4.8% की वृद्धि हुई। विकास के लाभ प्रधानतः उच्च तथा सम्पन्न वर्गों के लोगों तक ही सीमित रहे। ग्रामीण क्षेत्रों में उन परिवारों को इस रपट में गरीबी के स्तर से भी नीचे माना गया। जिनकी वार्षिक आय 324 रू0 से कम थी इस क्षेत्र में आने वाले समस्त ग्रामीण जनसंख्या के 40 प्रतिशत थे। शहरी क्षेत्र में गरीबी कास्तर प्राते व्यक्ति 486 रू0 वार्षिक आय पर निर्धारित किया गया। इस आधार पर 68--69 में शहरी क्षेत्र में 50 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति गरीबी

---

1. के0एन0 राजकमल (भारतीय अर्थ व्यवस्था और उसका विकास: श्रीकान्त मिश्र, पृ0 130 से)

के स्तर से नीचे थे।

लगभग सभी अर्थशास्त्रियों ने सहमति दी है कि-- "भारत के सन्दर्भ में केवल उन्हीं लोगों को गरीब माना जा सकता है जो निर्धारित न्यूनतम जीवन स्तर से भी नीचे हैं। न्यूनतम स्तर पर चाहे जितना भी विवाद हो, लेकिन भारत की गरीबी की भयंकरता को कोई भी नहीं निकाल सकता है।"[1]

इसी समय कीन्मतों ने गगन स्पर्शी उछाल ले ली। रूपये का अवमूल्य हो गया। दैनिक निर्वाह जीवन की वस्तुओं के दाम दुगुने, तिगुने, चौगुने हो गये। इन कारणों ने आन्तरिक संघर्ष की अग्नि को हवा दी। बेकारी की समस्या की गम्भीरता इस तथ्य के सामने है कि तृतीय योजना के अन्त में दस लाख से एक करोड़ लोग बेकार थे। सन् 1965 में अर्ध बेकारों की समस्या 1 करोड़ 60 लाख थी। अनुमान लगाया गया है, कि सन् 1966 से 76 तक के मध्य श्रमिक शक्ति में 5 करोड़ 25 लाख लोग और बढ़ गये बेकारों व नये श्रमिकों में से दो तिहाई ग्रामीण क्षेत्र के हैं। शहरी क्षेत्र में भी बेकारों में उनका अनुपात अधिक है जो कि काम की खोज में देहातों से शहर चले आये हैं। आवास, परिवहन, स्वास्थ्य, शिक्षा और अनेक नागरिक समस्यायें इसी कारण खड़ी हो गई हैं।

इस बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 15 अगस्त, 1983 को स्वाधीनता दिवस पर लालकिले से स्वरोजगार योजना की घोषणा की ताकि शिक्षित एवं अशिक्षित बेरोजगारों तथा समाज के पिछड़े वर्गों को इसके प्रत्यक्ष लाभ मिल सकें। स्वतः रोजगार के अन्तर्गत जिला उद्योग केन्द्र 25,000 रूपये ऋण देता है।

---

1. भारतीय अर्थ व्यवस्था और उसका विकास : श्रीकान्त मिश्र, पृ0 130

वर्तमान में एक करोड़ से अधिक शिक्षित बेरोजगार हैं। भारत में बेरोजगारी की समस्या अशिक्षित युवकों में हीं नहीं अपितु शिक्षित इससे विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं। रोजगार दफ्तरों में बेरोजगारी के आंकड़ों से पता चलता है कि यह समस्या दिन--प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। रोजगार दफ्तरों के बेरोजगारी के आंकड़ों से पता चला। उनके पंजीकरण में अक्टूबर 1981 में 174·24 लाख से बढ़कर अक्टूबर 1982 में 192·69 लाख लोग बेरोजगार हो गये अर्थात 10·6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जबकि --

"जनवरी--अक्टूबर 1981 की अवधि से 4·11 लाख उपलब्ध रोजगारों की तुलना में जनवरी--अक्टूबर, 1982 में 3·82 लाख रोजगार उपलब्ध कराये जा सके अर्थात् इस कार्य में 7·1 प्रतिशत की गिरावट आई।"[1]

सन् 2000 तक जनसंख्या 100 करोड़ को पार कर जायेगी। ऐसी परिस्थिति में वर्तमान पूँजी प्रधान तकनीकी का उपयोग करते हुए सभी को कार्य उपलब्ध कराना असम्भव है। वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि की दर 24·75 दशक हैं, जो कि पिछले दशक से 0·05 कम है। सातवीं योजना में जनसंख्या वृद्धि दर 1·6 प्रतिशत वार्षिक लाने का लक्ष्य रखा गया है। इतना जी नहीं, सातवीं योजना के मुख्य नारे में बेरोजगारी दूरकरना भी है। 1975--76 से 1983--84 के मध्य बेरोजगारी में 10·8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है एवं बेरोजगारी में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, जैसा कि निम्न आकड़ों से स्पष्ट है :--

---

1· योजना 1--15 नवम्बर, 1983, पृ0 12

बेरोजगार कार्यालय में पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या

वर्ष	बेरोजगार की सख्या (लाख में)
1975–76	93
1983–84	220
1984–85	235

[1]

बेरोजगार के स्थान पर बेरोजगार दिन की गणना के आधार पर एक दिन में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या 1971 में 175.5 लाख थी, जो सन् 1973 में 185.7 लाख, 1978 में 250.6 लाख हो गई तथा 1983 में 228.8 लाख होने का अनुमान था।

आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण न होने पाये, इसके लिये गॉधी जी ने अनेक सुझाव दिये तथा आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण का विरोध किया। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं कि – "व्यक्तिगत तौर पर मैं तो यह चाहूँगा कि राज्य के हाथों में ज्यादा केन्द्रीकरण के बजाय ट्रस्टीशिप की भावना का विस्तार हो, क्योंकि मेरी राय में राज्य की हिंसा की तुलना में व्यक्तिगत मालिकी की हिंसा कम हानिकर है, लेकिन यदि राज्य की मालिकी अनिवार्य है तो मैं राज्य की कम से कम मालिकी की सिफारिश करूँगा।"[2]

गॉधी जी को देखें तो पता चलता है कि पंचायती राज्य का उद्देश्य शक्ति का केन्द्रीकरण दूर करना ही था। जिससे वे गॉवों की स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। इस सम्बन्ध में डा0 राजानन्द कहते हैं कि --

---

1. स्रोत– योजना, 16–31 अक्टूबर, 1985 पृ0 10
2. नरेन्द्र दुबे-- ट्रस्टीशिप सिद्धान्त और व्यवहार, पृ0 73

"वस्तुतः गाँधी जी शहर और गाँव के आर्थिक सन्तुलन को बनाये रखना चाहते थे। वह यह नहीं चाहते कि गाँव की इकाई निर्बल हो जाये। उसकी आर्थिक निष्पन्नता से शहरों में श्रम केन्द्रीयकरण होने की सम्भावना थी, जो भारत जैसे ग्राम प्रधान देश के लिए अस्वाभाविक तथा हानिकर है। इससे विषमता दुगुनी बढ़ती है-- जैसे कि हम आज पा रहे है।"[1] गाँधी जी पूंजी और मजदूरी के बीच की खाई को हमेशा के लिए समाप्त कर देना चाहते थ, क्योंकि पूँजी ही शोषण को जन्म देती है और धन का केन्द्रीकरण ही विषमता को जन्म देता है।" गाँधी जी चाहते थे कि सारा शोषण बन्द हो और शोषण के स्थान पर सेवाभाव व शरीर श्रम का महत्व बढ़े। शिक्षण पैसा, सुविधा आज मात्र मुट्ठीभर लोगों के हाथ मे केन्द्रित है, जिससे समाज में हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती है।"[2]

मृत मशीनों को 7 लाख गांवों के भारत में बसने वाले जीवित मशीनों के मुकाबले में नहीं खड़ा करना चाहिए। मशीनों का सदुपयोग इसमें है कि मनुष्य के प्रयत्नों में थोड़ी सहायता कर दें। आजकल मशीनों का परिणाम यह होता है कि कुछ लोगों की मुट्ठी में धन केन्द्रित होता जा रहा है और असंख्य नर नारियों की रोटी छीनी जा रही है और उनका तिरस्कार है। जिस देश में गाँव--गाँव में उद्योग फैले हुए थे तथा वहाँ हर गाँव सुखी व समृद्ध था, आज उसमें भयंकर बेकारी व गरीबी फैलती जा रही है। इससे गाँव और शहरों के बीच, पूंजीपति और मजदूर के बीच आय की विषमता बढ़ती जा रही है। कुटीर उद्योगों के विनाश से गांव की अर्थ व्यवस्था डगमगा रही है। गाँव उजड़ रहे हैं, धन्धे चौपट होते जा रहे हैं। सरकार से अनुरोध है कि भारत में जहां ग्रामीण अर्थ व्यवस्था है गांवों को न्यायपूर्ण स्थिति में लाया जाय, कोई उसमें शोषण न कर सके।

---

1. डा0 राजानन्द-- गाँधी और भारत, पृ0 109
2. डा0 प्रेमभटनागर व भंवर लाल शर्मा-- गाँधी और हम, पृ0 65--66

गॉधी जी यन्त्रों के महत्व को समझते थे। वे समय के अनुसार अविष्कारों का भी स्वागत करते थे। लेकिन वे भारत जैसे श्रम बाहुल्य देश में यन्त्रों के दीवानेपन से डरते थे क्योंकि इससे बेकारी एवं विषमता में वृद्धि होगी तथा धन कुछ हाथों में सीमित होकर अनिष्टकारी सिद्ध होगा। जैसा कि उन्होनें कहा है -

"यन्त्रोद्योगों में साधारण मजदूरों को जो रकम मजदूरी में मिलती है, उसकी अपेक्षा मैनेजर आदि का वेतन सैकड़ो गुना होता है और मिल मालिक की आमदनी तो हजारों गुना भी हो सकती है। कितनी आर्थिक विषमता है।"[1] गॉधी जी को गलत दलीलों से आघात पहुँचता था जो व्यर्थ की हो तथा विषमता में वृद्धि करे, उन्होनें कहा था– अमीर--गरीब के मौजूदा अन्तर से देश का विकास नहीं हो सकता। विदेशी हुकूमत और हमारे अपने देशवासी, नगरवासी दोनो ही गरीब ग्रामीणों का शोषण करते हैं। और उनके बच्चे दूध के बिना रहते हैं यह आश्चर्यजनक बात है। प्रत्येक को सन्तुलित भोजन रहने को अच्छा मकान, बच्चों की शिक्षा की सुविधायें एवं दवादारू की काफी मदद मिलनी चाहिये। हरिजन में गॉधी जी ने कहा है कि– "मेरा आर्थिक समानता का चित्र, मैं प्रारम्भिक आवश्यकताओं से अधिक हर चीज का निषेध नहीं करता, मगर उसका नम्बर तभी आता है, जब पहले गरीबों की मुख्य आवश्यकतायें पूरी हो जाये। पहले करने लायक काम पहले करने चाहिये।"[2]

बड़े पैमाने के उद्योग होने के कारण पूँजी का अधिकाधिक प्रयोग होता है, जिससे मशीनों का भी प्रयोग बढ़ता है और बेरोजगारी तथा गरीबी जैसी समस्यायें पैदा

---

1. भगवानदास केला-- सर्वोदय अर्थशास्त्र, 1952 पृ0 187--88
2. गॉधी जी– हरिजन, 31–03–1946, पृ0 63

होने लगती है। सर्वोदय अर्थशास्त्र में श्री जवाहिर लाल जैन लिखते है कि --

"इस सारी व्यवस्था में अन्य सारे खर्च को मजदूरों के खर्च से अधिक आवश्यक माना जाता है। फलतः ऐसी मशीनों का आविष्कार किया जाता है, जिससे मजदूरों की संख्या कम से कम रहे और घटती जाये। दूसरी तरफ कम से कम मजदूरी में काम करने वाले बालकों, स्त्रियों अथवा पुरूषों को काम पर लगाया जाता है। सामान्य लोगों में बेकारी फैलती है अतः भूखों मरने से बचने के लिये निम्नतम मजदूरी में लोग काम करने को राजी हो जाते हैं।"[1] इस प्रकार से इसमें एक छोटा सा पूँजी वाला तथा मोटा मुनाफा कमाने वाला संचालक और अधिकारी वर्ग होता है और दूसरा बड़ा पूँजीरहित कम से कम मजदूरी पर जीवन पालन करने वाला, वेतनभोगी कर्मचारी और मजदूर वर्ग होता है। इनमें पारस्परिक आशंका, भय, विद्रोह और विरोध के भाव पैदा होते और बढ़ते जाते है।

गॉधी जी नहीं चाहते थे कि धन कुछ ही हाथों में रह जाये। वे शोषण खत्म करना चाहते थे। कोई भी भूखा व नंगा न रहे। वे मजदूरों को उनका हक दिलाना चाहते थे। जो मजदूरों का शोषण करते हैं, वे उसे खत्म करना चाहते थे। वे पूँजी-पति अल्पसंख्यक की नहीं, बल्कि मजदूर वर्ग अधिसंख्यक की वकालत करते थे। जैसा कि यंग इण्डिया में उन्होने कहा है--"ऐसी पूंजीवादी व्यवस्था में लोग मजूदूरों को कम करने पर तुले हैं, और इधर हजारों आदमी भूखों मर रहे है। मैं मुट्ठी भर आदमियों का नहीं सब मनुष्यों का –मनुष्य मात्र का--समय और परिश्रम बचाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि धन और सम्पत्ति बढ़े परन्तु कुछ आदमियों के घरों में नहीं, घर--घर में, सबके यहाँ बढ़े।"[2]

---

1. जवाहिर लाल जैन-- सर्वोदय अर्थशास्त्र, पृ0 2--3
2. यंग इण्डिया, 13–11, 1984

पूँजीवादी देश इस तरह की व्यवस्था को ही अच्छा मानते है। जिसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता जुड़ी हो। जैस कि नरेन्द्र दुबे ने कहा है- "पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में राज्य का हस्तक्षेप निषेध है और यह माना जाता है कि यदि राज्य हस्तक्षेप करेगा तो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण हो जायेगा। जिससे मानवता का ही विकास अवरूद्ध हो जायेगा।"[1] ' यदि लोग शोषक की आज्ञा न मानें तो शोषण हो ही नहीं सकता। लेकिन उसमें हमारा स्वार्थ आड़े आता है, और हम उन्हीं जंजीरों को अपनी छाती से लगाये रखते हैं। जो हमे बाँधती है। यह चीज बन्द होनी चाहिये।"[2]

मजदूरों को तो यही समझना है कि मजदूरी भी पूँजी ही है। मजदूरो को अच्छी शिक्षा मिले और अपनी शक्ति की पहचान कर वे संगठित हो जाये तो फिर पूँजीपतियों को चाहे कितनी पूँजी भी उन्हें गुलामी में नहीं रख सकेगी। अगर मजदूर लोग संगठित हो जायें, तो वे जो चाहें करा सकते हैं। अपनी निर्बलता के कारण प्रतिस्पर्धी से बदला लेने का इरादा करने में कोई तन्त्र नहीं है। "मुझे दृढ़ विश्वास है कि यदि पूंजीपति जापान के उमरावों का अनुसरण करें तो वे सचमुच कुछ खोयेंगे नहीं और सब कुछ पायेगें। केवल दो मार्ग है जिनमें से उन्हें अपना चुनाव कर लेना है। एक तो यह कि पूँजीपति अपना अतिरिक्त संग्रह स्वेच्छा से छोड़ दें और उसके परिणामस्वरूप सबको सुख प्राप्त हो जाये। दूसरा यह कि अगर पूँजीपति समय रहते न चेते, तो करोड़ो जाग्रत किन्तु अज्ञान और भूखे लोग देश में ऐसी अंधाधुधी मचा दे, जिससे एक बलशाली हुकूमत की फौजी ताकत भी नही मिटा सकती।"[3]

---

1. नरेन्द्र दुबे-- ट्रस्टीशिप सिद्धान्त एवं व्यवहार, पृ0 62-63
2. अमृत बाजार पत्रिका, 2-8-1934, पृ0 4
3. यंग इण्डिया, 5-12-1979, पृ0 356

वास्तव में श्रम भी धातु के सिक्के के जितना ही द्रव्य है। यदि कुछ लोग किसी कारखाने में अपनी पूँजी लगाते है, तो आप उसमें अपना श्रम लगाते है। जिस तरह पूँजी के बिना आपका श्रम बेकार हो जायेगा उसी तरह आपके श्रम के बिना दुनिया की पूँजी भी पूरी तरह बेकार हो जायेगी। "कुछ करोड़पतियों को समाप्त कर डालने से ही गरीबो का शोषण समाप्त नहीं किया जा सकता। गरीब लोगों का अज्ञान मिटाकर और उन्हें अपने शोषकों के साथ असहयोग करना सिखाकर ही उसे समाप्त किया जा सकता है। इसके शोषकों का भी हृदय परिवर्तित होगा। मैने तो यहाँ तक कहा है कि इसके परिणाम स्वरूप गरीबो और अमीरो में हिस्सादारी स्थापित हो जायेगी। पूँजी स्वयं बुरी चीज नहीं है। इसका दुरूपयोग बुरी चीज है। किसी न किसी रूप में पूँजी की आवश्यकता तो सदैव ही बनी रहेगी।"[1]

"अहिंसक तरीके से हम पूँजीपतियो का नही, पूँजीवाद का नाश करना चाहते हैं। हम पूँजीपतियों से कहते है कि वे अपनी पूँजी को पैदा करने, इसे बनाये रखने और उसकी बढ़ोत्तरी के लिए जिन लोगों पर निर्भर है, उन लोगों के हितों का अपने को ट्रस्टी मानें।"[2] यदि वह पूँजीपति उचित भाग न देकर पूरा कब्जा करना चाहता है तो वह शायद सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी को मार डालेगा, क्योकि श्रम के बिना पूँजी का कोई अस्तित्व नहीं। आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ है सब मुनष्यों केपास समान सम्पत्ति का होना, यानि सबके पास इतनी सम्पत्ति हो जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकताये पूरी कर सकें। समान वितरण के इस सिद्धान्त से वास्तव में धनवान व्यक्तियों द्वारा अपनी फालतू सम्पत्ति का सरक्षकता अर्थात् ट्रस्टीशिप की भावना रखनी चाहिए। ट्रस्टीशिप का विचार इस दिशा में रामबाण औषधि प्रतीत होता है। जैसा कि कहा है --

---

1. यू0एस0 मोहनराव- महात्मा गांधी का सन्देश, पृ0 62

2. वही, पृ0 62

"आर्थिक समानता के लिये काम करने का मतलब है पूंजी और मजदूरी के बीच के झगड़े को हमेशा के लिये मिटा देना।"[1] इसका अर्थ यह होता है कि एक ओर से जिस मुट्ठी भर पैसे वाले लोगों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का बड़ा भाग इकट्ठा हो गया है। उनकी सम्पत्ति को कम करना। दूसरी ओर जो सैकड़ों--करोड़ों लोग अधपेट खाते है, और नंगे रहते है, उनकी सम्पत्ति में वृद्धि करना। जब तक मुट्ठी भर धनवानों और करोड़ों भूखे रहने वालों में ये अन्तर बना रहेगा, तब तक अहिसा की बुनियाद पर चलने वाली राज--व्यवस्था कायम नहीं हो सकती। यदि हमारे पूरा प्रयत्न करने के बाद भी धनवान लोग शराब के हित में अपना धन का संरक्षक होना स्वीकार न करे, तो क्या किया जाये? "आर्थिक दृष्टि से निरंकुश सत्ता या तानाशाही रखकर राजनीति में आप प्रजातन्त्र स्थापित नहीं कर सकते।"[2]

क्या कोई इस बात को निश्चित कर सकता है कि जिन धनवानों को अपनी सम्पत्ति का संरक्षण करने के लिये राजी किया जा सके उनकी सम्पत्ति का कितना हिस्सा उनका है और कितना उनका नहीं है? यदि वह धनवान व्यक्ति अपने लिये उस सम्पत्ति का 25 प्रतिशत रखने को राजी हो और 75 प्रतिशत दान देने के लिये तैयार हो, तो हमें उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिये, क्योंकि स्वेच्छा से दिया 75 प्रतिशत तलवार के भय से दिये हर 100 प्रतिशत से कहीं ज्यादा है परन्तु--

"आज के धनवानों को वर्ग संघर्ष के और स्वेच्छा से धन के ट्रस्टी बन जाने के दो रास्तों में से एक हल को चुना लेना होगा। उन्हें अपनी मल्कियतकी रक्षा करनी

---

1. गाँधी जी (संग्राहक व्ही0बी0 खेर) आर्थिक और औद्योगिक जीवन, पृ0 285

2. जे0सी0 कुमारप्पा-- स्थाई समाज व्यवस्था, पृ0 170--71

होगी। उन्हें यह भी हक होगा, कि अपने स्वार्थ के लिये नहीं, बल्कि मुल्क के भले के लिये दूसरों का शोषण न करके वे धन को बढ़ाने में अपनी बुद्धि का उपयोग करें।"[1]

पं0 जवाहर लाल नेहरू ने तीसरी पंचवर्षीय योजना में कहा था-- जिसे हमने नरेन्द्र दुबे की पुस्तक से लिया है-- "कुछ अंशों में आर्थिक विषमता में वृद्धि विकासशील अर्थव्यवस्था के कारण होना अनिवार्य है लेकिन इसके निराकरण के लिये उपर्युक्त कदम उठाने होगें। यदि चीजों को ऐसे ही चलने दिया जायेगा तो धनवान और धनवान बनेगें ही।"[2] यहाँ पं0 जवाहरलाल जी ने विषमता की वृद्धि और विकास में सम्बन्ध दिखाया है। सभी दृष्टि से विषमता की समस्या बहुत महत्वपूर्ण है। सन् 1940 में नियुक्ति एक समिति ने यह जानकारी दी थी कि सरकार द्वारा विकास के जो भी प्रयत्न किये गये है, उनसे बड़े व्यक्ति गत उद्योग तो विकसित हुये है, पर जनता की स्थिति में ऐसा नहीं लगता कि कोई उल्लेखनीय सुधार हुआ है।सन् 1963 में श्री महानल वीस की अध्यक्षता में इस बात की जॉच के लिये एक समिति नियुक्त की गई कि योजनाओं का लाभ किस प्रकार वितरित हुआ है और उससे किस वर्ग को ज्यादा लाभ मिला है, तथा सम्पदा और आमदनी के वितरण पर उसका क्या प्रभाव हुआ है? इस समिति की रिपोर्ट में इस प्रकार कहा गया है--

(1) भारत में विश्व के अनेक मुल्कों की तुलना में आमदनी के वितरण में बहुत ज्यादा विषमता है। भारत में आय की बहुत विषमता है। यह अन्य देशों की तुलना में भी बहुत ज्यादा है।

(2) कृषि भूमि का वितरण सर्वाधिक विषम है। सन् 1960 में ऊपर के 1 प्रतिशत परिवारों

---

1. भगवान दास केला-- सर्वोदय अर्थशास्त्र, पृ0 285

2. नरेन्द्र दुबे-- ट्रस्टीशिप-- व्यवहार एवं सिद्धान्त, पृ0 23

के पास कुल कृषि भूमि का 16 प्रतिशत ऊपर के दस प्रतिशत परिवारों के पास कुल कृषि भूमि का 56 प्रतिशत और नीचे के 20 प्रतिशत परिवार बिल्कुल भूमिहीन थे।

गाँधी जी ने रामराज्य की कल्पना की थी। वे रामराज्य में सबको समान एवं समृद्ध देखना चाहते थे। रामराज्य में एक ओर अथाह सम्पत्ति और दूसरी ओर करूणा, जनक फाँकेकशी नहीं हो सकती, उसमें कोई भूखा मरने वाला व्यक्ति नहीं हो सकता। रूद्रदत्त एवं के0पी0 सुन्दरम् की पुस्तक में-- मदगली के अध्ययन से पता चलता है कि 'ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में वैयक्तिक आय वितरण अपेक्षाकृत अधिक असमान है। इसके लिए दो मुख्य कारण उत्तरदायी हैं। पहला ग्राम क्षेत्रों में निम्नतम् उच्चतम व्यय वर्ग में प्रति व्यक्ति आय के अन्तर 1:8.6 के अनुपात में है। (187 रू0 : 1636 रूपये) और शहरी क्षेत्रों में 1:12.8 के अनुपात में 168 रूपये : 1249 रूपये) के लगभग था।'[1] जिस देश में गरीबी हो, जहाँ की जनता का तीन चौथाई हिस्सा गावों में बसा हो, जहाँ की श्रमशक्ति अधिक हाने के कारण बेकारी भुगत रही हो, वहाँ भारी पैमाने का औद्योगीकरण हानिकारक होगा। डा0 राजानन्द ने सर्वोदय को इस प्रकार परिभाषित किया है--

"सर्वोदय का मतलब है सबका उदय, लेकिन भारत में सर्वोदय तभी सम्भव हो सकता है जब गाँवों की स्थिति को सुधारा जाय तथा उस वर्ग पर नियन्त्रण रखा जाय जो खाई को बढ़ा रहा है।"[2] यह विषमता कम करने हेतु काफी उपयोगी है। इस सम्बन्ध में धीरेन्द्र मोहन दत्त लिखते हैं--

---

1. रूद्रदत्त एव के0पी0 सुन्दरम्-- भारतीय अर्थ व्यवस्था, पृ0 401

2. डा0 राजानन्द-- गाँधी और भारत, पृ0 112

"ट्रस्टीशिप का प्रयोग उन्होनें आर्थिक विषमता को दूर करने के लिये किया। उनकी यह मान्यता थी, कि समाज में जब तक विषमता का उन्मूलन सभव नहीं है। जब तक समाज का प्रत्येक अंग चाहे वह धनी या गरीब अपने कर्तव्य और अपने दोषों के प्रति नैतिक रूप से जाग्रत न हो जाये।"[1]

आधुनिक समय में जैसे-जैसे हमारा समाज विकसित हो रहा है उसमे केन्द्रीकरण बढ़ता जा रहा है। प्राचीन काल में आर्थिक जगत को देखें तो हमे पता चलता है कि उस समय विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था क्या थी। इस वैज्ञानिक युग में विकेन्द्रीकरण को त्यागकर केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को जन्म दिया है। भारत में स्वतन्त्रता भू प्राप्ति से पूर्व कुटीर एवं हथकरघा उद्योगों का बोलबाला था तथा यहाँ की मलमल विश्व में अपने प्रथम स्थान पर थी। लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारी योजना इस प्रकार की बनी है, जिससे औद्योगीकरण को बढ़ावा मिल रहा है। गॉधी जी ने आर्थिक विकेन्द्रीकरण की बात कही थी, वे आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को खतरनाक समझते थे, जिससे भारत जैसे श्रम और बाहुल्य देश में शोषण, बेकारी एवं गरीबी बढ़ने का खतरा बढ़ रहा है। गॉधी जी ने प्रेमा बहिन को एक पत्र में इसे भी स्वीकारते हुये लिखा कि --

"रामराज्य अवश्य काल्पनिक है, परन्तु वैसा ही कुछ न कुछ तो पहले था ही, यह भी हम सिद्ध कर सकते हैं। वैसे असत्य और दरिद्रता का पूरा-पूरा बिल्कुल तो लोप न पहले किसी समय हुआ है और न कभी भविष्य में संभव है।"[2]

---

1. डा0 धीरेन्द्र मोहनदत्त- महात्मा गॉधी का दर्शन पृ0 85-86

2. बापू के पत्र -- प्रेमा बहिन के नाम, पृ0 223

कारखानों की सभ्यता पर अहिंसा का निर्माण नही कर सकते। ग्रामीण अर्थ रचना शोषण का सर्वथा त्याग करती है। केन्द्रितव्यवस्था ने ही साम्राज्यवाद तथा विदेशी व्यापार की समस्या को जन्म दिया है। प्रो0 दूधनाथ चतुर्वेदी ने कहा है-- "भारत मे केद्रित इस अर्थव्यवस्था ने ग्रामोद्योग को समाप्त कर दिया। प्राचीनकाल से जो कुटीर एवं ग्रामोद्योग की परम्परा चली आ रही थी, वह समाप्त हो रही है।"[1] इसी सन्दर्भ में गॉधीवादी लेखक ने उचित ही कहा है कि -- इस केन्द्रित अर्थव्यवस्था ने मानव की शारीरिक परिश्रम करने की प्रवृत्ति को कम किया और सारी उत्पादन शक्ति को मशीन के बल पर आधारित किया है। फलस्वरूप, अब उत्पादन में कम से कम मानव शक्ति लगाने का प्रयास किया जान लगा है। इसकी सबसे बड़ी बुराइ बेकारी और व्यापार समस्या से उत्पन्न होती नजर आ रही है। इस केन्द्रित उत्पादन ने व्यक्तिगत हानि भी पहुँचाई है, जैसे- नगरो के विकास के परिणाम स्वरूप मजदूरों की बुरी दशा और उनके चरित्र में हास हुआ। इस केन्द्रित अर्थव्यवस्था ने ग्रामीण जीवन को नष्ट कर दिया है।

कारखानों में उत्पादन के मितव्ययी ओर लाभकारी तरीकों से जनता का शोषण किया गया। भारतीय जनता के कताई, बुनाई वाले हाथ मशीन के साथ लड़ाइ मे हार जायें। कारखानों में बने सस्ते माल की बजह से भारतीय जनता के उद्योग की कमर टूट गई और वे बेरोजगार होने लगे। लगातार बढ़ती हुई गरीबी के कारण लोग अपना पुश्तैनी कारोबार छोड़ने लगे, लाखों, करोड़ों , बर्बाद कारीगरों, जुलाहों, सूत कातने वालों, कुम्हारों, चर्मकारों, लुहारों, बढ़इयों आदि के पास चाहे वे शहर के हों या देहात के सिवा इसके कोई चारा नहीं था कि वे या तो खेती पर निर्भरता बढ़ावें या यहाँ--वहाँ बस कर मजदूर बन जायें।

---

1. प्रो0 दूधनाथ चतुर्वेदी-- महात्मा गॉधी का आर्थिक दर्शन, पृ0 249

अग्रेजों की शासन व्यवस्था और आर्थिक शोषण को भूमिका ने ही जमींदार और महाजन वर्ग को जन्म दिया था। इस वर्ग में इतना शोषण किया कि आर्थिक दासता सी कायम हो गई। उड़ीसा और विहार की कमजोरी इसका जी वनन्त उदाहरण है-- जिसका वास्तविक अर्थ है, आर्थिक दासों द्वारा खेती की प्रथा कमिया लोग अपने मालिक के बॉधे हुये नौकर थे। ऋण के रूप में जो ब्याज आता था उसके बदले मे उन्हे सारे काम करने पड़ते थे। जमींदार की निजी भूमि के लिये खेती पर जो मजदूर बहाल होते थे उन्हें सबसे पहले जमींदार के यहां हाजिर होना पड़ता था।

गॉधी जी कहते हैं-- "तुमने अपनी रोटी आज उनके हाथ बेची है। क्या ऐसे मरणासन्न व्यक्ति को जिसने इसे लेने के लिये अपना आखिरी सिक्का भी दे दिया और जिसे फिर कभी रोटी की जरूरत नहीं पड़ेगी।"[1] रास्किन के इस कथन ने लाभ की क्रूरता व्यक्त की है। महात्मा गॉधी का आर्थिक चिन्तन भी लाभ की इसी क्रूरता को समाप्त करने के प्रयत्नों में निहित है--

"दोष पूँजी में नहीं उसके दुरूपयोग में है इस नीति वाक्य को सुनाते हुये गॉधी जी ने आर्थिक शोषण के रोग को इस तरह स्पष्ट किया-- वर्तमान भारत स्थिति में तो अमीर--गरीब सभी समान रूप से असन्तुष्ट हैं। गरीब लखपति बनना चाहता है और लखपति करोड़पति बनना चाहता है।"[2]

"गॉधी जी परिश्रम को ही सिक्का बनाने चाहते थे जिससे लाभ मे लिपटा विष छूट जाये। उनकी आर्थिक व्यवस्था में चालू सिक्का श्रम है धातु नही। जो व्यक्ति

---

1. रास्किन -- अनन्दु दिस लास्ट, पृ0 2
2. बापू कथा -- हरिभाऊ उपाध्याय, पृ0 193

अपने परिश्रम का उस सिक्के के समान उषयोग कर सकेगा, वही धनी होगा वह अपने परिश्रम को[1] वस्त्र के रूप अनाज के रूप में बेच सकेगा। गाँधी जी ने कहा-- "जब भारत का समाज गरीबों की पीठ से उतरकर अपने पैरों से चलना सीख लेगा तो देश में आर्थिक असन्तुलन समाप्त हो जायेगा। पर आज गरीबों से बोट या समर्थन तो सब चाहते है, पर क्रियात्मक रूप में अपनी प्रवृत्ति से हम सब कुछ करने को तैयार हैं। सदा गरीबों की पीठ पर से उतरने के।"[2]

इस दशा में सच्चा काम तब होगा जब भारत पूँजी और मजदूरी के बीच हमेशा झगड़ों को गिरा दिया जायेगा। इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि कुछ समय के लिये देश की अर्थव्यवस्था संकट पूर्ण हो गई थी। श्री मोरार जी देसाई ने कहा--

"यदि हमने तनिक भी स्वतन्त्रता दिलाई और देश की अर्थव्यवस्था के सामने खड़ी चुनौती को ठोस ढंग से सामना नहीं किया तो अब तक के सारे प्रयासों को कोई अनुकूल परिणाम न पड़ेगा। हमें अधिकाधिक कठिनाईयां भुगतनी पड़ेगीं। जिनका दीर्धकालीन असर हमारी राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर पड़ेगा। आने वाले दिनों में हमे ऐसी--ऐसी चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है जो हमारे पैर लड़खड़ा देने वाली सिद्ध हो। पाकिस्तान न हर घड़ी तलवार भेजता रहता है, हमारी क्षेत्रीय अखण्डता के लिये खतरा पैदा करता रहा है। दूसरी ओर चीन हमारी उत्तरी पूर्वी सीमा पर मड़रा रहा है। इन बाहरी खतरों के अलावा देश के भीतर भी तरह--तरह के संकट सिर उठा रहे

---

2. महात्मा गाँधी का समाज दर्शन-- महादेव प्रसाद, पृ0 220

2. मेरे सपनों का भारत-- मोहनदास कर्मचन्द्र गाँधी, पृ0 11, हिन्दी संक्षिप्त रूपान्तरण।

हैं। जिनका उद्‌देश्य गड़बड़ी तथा अराजकता उत्पन्न करना है। सम्प्रदायिकता हिंसात्मक राजनीति आन्दोलन खाद्यान अभाव आदि कई विकराल दैत्य हमें खा जाने के लिये मुँह बाये खड़े हैं।"[1]

यह आन्तरिक संघर्ष भारत को हर स्तर पर आर्थिक रूप से कमजोर करता रहा। सब प्रकार की व्यवस्थायें हुई और उनके रख--रखाव में आवश्यक अनावश्यक रूप से तमाम धन व्यय हुआ। श्रीमती इन्द्रा गाँधी के शब्दों में भारत पर पड़े आर्थिक बोझ की झलक इस प्रकार है--

"हमारे पास काफी बोझ था शरणार्थियों की देखभाल का। उसी के बाद सूखा दो वर्ष का भी जोरदार पड़ा, पश्चिम में गुजरात में महाराष्ट्र में और मैसूर में गम्भीर था -------तो हमने निर्णय किया कि एक भी आदमी की मृत्यु नहीं होनी चाहिये। इससे सरकार पर काफी खर्चा पड़ा। 9 करोड़ लोगों के लिये उस वक्त मुफ्त अनाज दिया और 13 करोड़ लोगों के लिये उस वक्त राहत कार्य चालू किये, उसके पहले युद्ध हुआ, युद्ध का खर्चा भी हुआ, शरणार्थियों पर भी खर्चा हुआ। फलतः अनाज खाद और दूसरी आवश्यक मशीनरी के दाम बहुत बढ़ गये सब मिलाकर एक बहुत बड़ा बोझा पड़ा।"[2]

धनी देशों में जब प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी से प्रश्न किया गया कि इतना आर्थिक बोझ भारत ने कैसे उठाया, तो उन्होनें उत्तर दिया था-- "जब आदमी के पास कम होता है तो दूसरों को भी देने को तैयार हो जाता है लेकिन अमीर आदमी दस दफे सोचता है कि मै दूँ य नहीं------। जब मैं विदेश गई, बहुत से लोगों ने मुझसे कहा

---

1. आज वारणसी 9 सितम्बर, 1965 (अर्थनीति मे दृढ़ता और अस्थिरता का अभाव, श्री मोरार जी देसाई के लेख से)

2. इन्दिरा गाँधीः नेतृत्व के दस वर्ष, राजेश शर्मा, पृ0 87-88

इतने शरणार्थियों को कैसे आप लोग रखा रहे हैं, खिला रहे हैं। हमारे मुल्क में होते, तो हम नहीं कर पाते। हमने कहा नहीं है हमारे पास नहीं है शायद इसलिये कर रहे हैं।''[1]

इस तरह गरीबी समाप्त करने के बदले जनसंख्या विस्फोट तथा बढ़ती बेरोजगारी के कारण गरीबों की संख्या दिन--प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यद्यपि योजना आयोग के अनुसार 1984--85 अर्थात् छठीं योजना के अन्त में गरीबी की रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उन लोगों का प्रतिशत 37.5 बताया है, लेकिन गैर सरकारी अनुमान जैसे प्रो0 राजकृष्ण, डा0 एम0एल0 गुप्त तथा दाण्डेकर और नीलकण्ठ रथ आदि अर्थशास्त्रियों ने भारत में गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत 50 के आसपास बताया है। अतः इस प्रकार से हमारी योजनायें देशवासियों का जीवन स्तर उठाने और साधारण जनता के गरीबी निवारण में काफी हद तक विफल रही हैं तथा बेरोजगारी दिन व दिन बढ़ती जा रही है, साथ ही साथ बेरोजगारी के बढ़ने से आर्थिक तनाव व संघर्ष भी बढ़ गया।

---

1. इन्दिरा गाँधी : नेतृत्व के दस वर्ष, राजेश शर्मा, पृ0 87--88

अध्याय षष्ठम् (ब)

बेरोजगारी से जन्मे आर्थिक तनाव व संघर्ष की स्थितियों का आधुनिक हिन्दी कहानियों पर पड़ा प्रभाव और उसकी विवेचना

बेराजगारी से जन्मे आर्थिक तनाव व संघर्ष की स्थितियों का आधुनिक हिन्दी कहानियों पर पड़ा प्रभाव और उसकी विवेचना

बेराजगारी से जनमा आर्थिक तनाव का आधुनिक हिन्दी कहानियों पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा है। जैसा कि अनेक कहानीकारों ने कहानियों में चित्रित किया है।

प्रियदर्शी प्रकाश की कहानी 'अपुत्र' में पिता की मृत्यु हो गई है, और पुत्र को यही चिन्ता है कि पिता की लाश के हाथ में कीमती अगूँठी और घड़ी भी कहीं लाश के साथ ही न जला दी जाये। उसे कोई दूसरा न प्राप्त कर ले। वह कहता है-- "घड़ी का क्या होगा। उसने सोचा क्या वह लाश के साथ ही जला दी जायेगी।"[1] और अन्त में वह मौका पाकर लाश के हाथ से घड़ी और अगूँठी उतार लेता है। तभी उसे सन्तोष होता है। इसका कारण उसकी बेकारी है, और पैसे के अभाव में पैसा मानवीय सम्बन्धों की सम्वेदना पर छा गया है। भीष्म साहनी की कहानी "चीफ की दावत" भी जीवन मूल्यों के आर्थिक होते जाने की परिचय देती है। एक ओर माँ के लिये ठन्डापन है। श्यामनाथ उसे "आऊट ऑफ डेट" और छिपाने की चीज मानते है। माँ उनके लिये ग्लानि पैदा कर देती है। किन्तु जैसे ही साहब एक फुलवारी की माँग करते हैं, तो उनकी पदलाभ और धन लाभ का स्वप्न देखने वाली आँखों में अचानक कही माँ महत्वपूर्ण हो उठती है, और आलिंगन में माँ को भर लेते है-- "ओ अम्मी तुमने तो आज रंग ला दिया। साहब तुमसे इतना खुश हुआ कि क्या कहूँ? ओ अम्मी ! अम्मी।"[2]

---

1. अपरिचित का परिचय : प्रियदर्शी प्रकाश, पृ0 67
2. आधुनिक हिन्दी कहानी : समाज शास्त्रीय दृष्टि, डा0 रघुवीर सिन्हा, पृ0 80

मनुष्य जीवन को अर्थ प्राप्त करा देने की क्षमता आज पैसे मे है इसलिये तो उसे अर्थ कहा जाता है। वह अर्थ पूर्ण है जब मनुष्य की आर्थिक परिस्थिति विकट होती है तब वह चिन्ताग्रस्त होता है। जीवन जीने के लिये चिन्ताग्रस्त होकर रहना ही असलियत में उसका आथिंक तनाव है। आर्थिक तनाव को जैनेन्द्र ने अपनी कहानियां से हमें पात्रों की परिस्थिति से स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। निम्न वर्ग के व्यक्ति को अब वस्त्र और निवास प्राप्त कर लेना बड़ा ही मुश्किल हो गया है। जगरूप को गरीब के कारण फीस भरना असम्भव हो गया है। "यथावत" इस कहानी में इस समस्या का चित्रण जैनेन्द्र ने किया है-- "माँ को देखकर उसे संशय होने लगता है कि सब ठीक है कि नहीं ? माँ से एक शब्द भी सुन पाना उसके लिये संभव नहीं है यह सब उसके मन को हिला देता है, उसे आगे पढ़ना है और जरूर पढ़ना है। लेकिन माँ को क्या हुआ है।"[1]

कालेज में दाखिल होने के लिये, फार्म भरने के लिये जगरूप के पास पैसे नहीं हैं। शिक्षा मनुष्य की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। यह आवश्यकता जो पूर्ण नहीं कर सकता वह शिक्षा से वंचित रह जाता है। मैट्रिक की परीक्षा जो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ है, उसे अगली पढ़ाई करने के लिये अर्थ उपलब्ध नहीं होता तो वह निराश तथा हताश हो जाता है, दरिद्रता के कारण शिक्षा से वंचित रहे जगरूप की दयनीयता का चित्रण जैनेन्द्र ने बड़ी गम्भीरता के साथ किया है। इस प्रकार के निम्न वर्गो बेकारी की समस्या बड़ी ही विकट है। भगवतीचरण वर्मा की कहानी "बेकारी का अभिशाप[2] में इस समस्या की यातना की अभिव्यक्ति हुई है। उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानी "बैगन का पौधा[3] में

---

1. जैनेन्द्र कुमार की कहानियाँ : दसवा भाग, यथावत, पृ0 33, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1985
2. इन्स्टाल मेन्ट-- भगवतीचरण वर्मा, पृ0 35
3. बैगन का पौधा : उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ0 19

पूँजीवादी व्यवस्था में मालिक के लिये मजदूर का जीवन इतना सस्ता हो गया है कि उसकी मृत्यु भी उसे सहज लगती है। कहानी में श्रमिक के परिवार की दयनीय आर्थिक स्थिति का भी चित्रण हुआ है।

गॉव और गरीबी में प्रमेय--प्रमाण सम्बन्ध है। इसलिये रचनात्मक स्तर पर ग्राम जीवन का स्पर्श करने वाले कथाकार और बातों के अतिरिक्त इस आर्थिक कोण को अवश्य उभारते है। स्वतन्त्रता गॉव की दरिद्रता--सोत्साह प्रदर्शित की जाती थी, क्योकि उसका कारण ''पर'' था, और स्वातन्त्रयोत्तर दीनहीनता का विक्षोभ कारक है। क्योकि अब एतदर्थ 'निज'' ही उत्तरदायी है। स्थितियों के परिवर्तन से वस्तु स्थिति की कुरूपता मिटी नहीं। धर्मवीर भारती की कहानी में जाड़े में वस्त्रहीन बेटी ठिठुर कर मर रही है। तो बाप रात के सन्नाटे में कब्रगाह जाकर कफन चुराने में गिरफ्तार होता है, और दूसरे दिन क्लाथ कन्ट्रोल आफीसर चाय पर अपनी पत्नी से इस विषय पर टिप्पणी करता है--

''कपड़े की ऐसी भी क्या कमीं। और फिर आदमी चाहे मर जाये, कब्र खोदकर कफन चुराने नही दिया जायेगा।''[1] और अब भी शिवप्रसाद सिह की कहानी को एक पात्र ''मंगरा पापी पेट भरने के लिये कफन खसोटी करता है। और जान से हाथ धो बैठता है।''[2] स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिये श्रीकान्त ने अपना जीवन राष्ट्र कार्य को समर्पित किया है लेकिन उपजीविका के लिये उसे पैसे की भ्रान्त है। वह अपने मित्र श्रीकांत के पास आकर उससे कहता है, मैं पहले कुछ रूपये तुमसे पाना चाहता हूँ। क्योंकि पैसे के लिये वह विकल हो गया है।पैसे के बिना उसका काम चलता नही। जहाँ एक ओर उसका

---

1. 'चॉद और टूटते हुये लोग' (डा0 धर्मवीर भारती) में 'कफनचोर' शीर्षक कहानी, पृ0 116
2. ''इन्हें भी इन्तजार है'' -- डा0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0 72

सिर्फ काम ही नहीं चलता वहीं हरि–प्रसन्न की स्थिति तो इससे भी ज्यादा गिरी हुई है। क्योंकि उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है। कोई तरतीब से वह रहता नहीं। उसके रहने के लिये न किसी मकान का वह बन्दोबस्त कर सका है। वह किसी मन्दिर में ठहरा हुआ है। उसकी यह रहन सहन उसके आर्थिक स्थिति का निदर्शन है जो दर्शाती है कि बहुत गरीब है। उसमें आर्थिक क्षमता नहीं, कि वह अच्छी तरह से अपना जीवन जीता रहे। यह सब पैसे के अभाव में हुआ है, ऐसा वह मानता है। पैसे के न होने के कारण बहुत ही विपन्नता में उसे जीवन बिताना पड़ता है। बदलते हुये उच्च समाज के वर्गो पर आश्रित लघु उद्योगों में लगे ग्रामीण नीची जाति ग्रामीण या तो भिखारी हो गये हैं या शहरों की ओर दौड़ने लगे हैं। शिवप्रसाद सिंह की कहानी "इन्हें भी इन्तजार है"[1] के पात्र कबरी और मगरा डोम है। उनके बनाये डाली मोन्हिया अब कोई नही खरीदता। मगरे शहर मे मजूरी ढूढने गया है। कबरी भिखारिन हो गई है। बेरोजगारी से परिवार में सम्बन्धों का निर्वाह नहीं हो पाता सारा परिवार पैसे के लिये बिछुड़ जाता है।

शिवप्रसाद सिंह की कहानी "कलंकी अवतार"[2]का रोपन भी गॉव समाज की मानसिकता में परिवर्तन से असन्तुष्ट है। रोपन की मेदूसिह ठाकुर के लड़के के विवाह में "वारी और वारिन" का पहनावा नहीं मिलता है। रोपन का यह अधिकार उसे पचास वर्षो से मिलता रहा है। किन्तु नये जमाने का ठाकुर कहता-- "पहरावे के बदले पॉच-पॉच रूपया मिला है। वही तुम्हे भी मिलेगा। चलना है लड़के के साथ चलो, नही घर बैठो। तुम क्या समझते हो, वारी नहीं जायेगा, तो बारात नही चढ़ेगी।"[3] "गृहस्थ को परजा पौनी

---

1. मेरी प्रिय कहानियॉ -- शिवप्रसाद सिंह, पृ0 111
2. वही, पृ0 13
3. वही, पृ0 17

की फिकर नहीं। अब कोई नया काम धन्धा ढूढ़ना चाहिये। पर रोपन के मन को चैन नहीं मिलता। उन्हें विश्वास नही होता कि बाप दादा के जमाने से चला आता पेशा बाँझ हो गया है।"[1] पेशा बाँझ हो रहा है। आय का श्रोत सूख रहा है। बदी-उज्जमां की कहानी 'मकबरे का आदमी' का अलताफ मामू भी ग्रामीण जीवन में परिवर्तन की तीव्रता के आघात को निरन्तर झुठला रहा है। उसकी जमींदारी चली गई है। इकलौता पुत्र पाकिस्तान में किसी शहर में अंग्रेजी ढंग से रहने लगा है। अलताफ मामू जानते है। "लेकिन यह अच्छा ही हुआ, कि वह मेरे साँचे में न ढल सका। ऐसे साँचे में ढलने से क्या फायदा जो बेकार हो चुका है।"[2]

मामू अतीत की अपेक्षा वर्तमान मे असहाय हो चुके है। उनके एक वाक्य में बदला हुआ समाज और परिवेश घुल गया है। वह कहते है "जैसी तुम्हारी मर्जी जमींदारी तो रही नहीं कि सवारी का इन्तजाम कर सकूँ। मील भर तक पैदल जाना होगा।"[3] किन्तु मामू ने जो अपने जीवन ठसक के साथ जिया है, ढलती उम्र मे उसे भूलें तो कैसे ? समय की गति में पिछड़ कर उन्होने अपने आप को "मकबरे में बन्द" कर लिया है। डा0 लक्ष्मीनरायण लाल की कहानी 'चिरई गॉव' में पुरानी मान्यताओं की लक्ष्मण रेखा का नयी पीढ़ी साहस के साथ उल्लंघन कर रही है। इन्हीं की कहानी "माघ मेले का ठाकुर"[4] के पात्र पिशाचू और मुखियानी भिखारी समुदाय के प्रतिनिधि हैं। वे भी अपनी परम्परागत जीवन प्रणाली को छोड़कर नये ढंग से जीवन शुरू करने के लिये संघर्षशील है। मुखियानी कहती है "ग्वाल।

---

1. ठुमरी : फणीश्वर नाथ रेणु, पृ0 17
2. पुल टूटते हुये : बदी-उज्जमां, पृ0 50
3. पुल टूटते हुये : बदी-उज्जमां, पृ0 50
4. एक और कहानी : लक्ष्मीनरायण लाल, पृ0 9

कहीं से अगर पाँच सौ रूपये मिल जायें तो हमारी नयी जिन्दगी शुरू हो सकती है।"[1] अतः नयी जिन्दगी प्रारम्भ करने की लालसा का बोध ही आर्थिक स्वतन्त्रता और आर्थिक समता जाग्रत करने का बोध है।

"एक और कहानी"[2] में शहर में रहकर आया पूरन तिवारी अपने इरादे में अटल है तो सुकुल की बेटी रामभारती उससे क्रान्तिकारी पौरूष का वरण करती है।

विष्णु प्रभाकर की कहानी "नई पौध" मे साक्षात नरक भोग की गरीबी तथा संत्रास से ऊबकर एक श्रावयिता स्वप्न में अपने तीन बच्चो की हत्या कर लिखित बयान देता है। कि– "जानबूझकर मैने अपने बच्चो की हत्या की है। मै नही चाहता कि मेरी सन्तानें मरघिल्ले पिल्लो की तरह मौत के आने तक चीं--चीं करते रहे।[3] मरूआ की सूखी रोटी और नमक सो भी अनिश्चित, पर दिन काटना आज भी कोटि--कोटि जनो की स्थिर नियति है। लोकनाथ आज भी भारत के प्रतिनिधि ग्रामीण है जिसके पास "जमा-पूंजी थी चार सेर सॉवा। नमक तेल के बाद मुश्किल से आधा सेर चावल मिल सका था। यह चावल बुखार के पंजे से छूटे उसके छोटे लड़के के लिये चार पॉच दिन का भोजन था। वह सॉवा का भात देखकर मुँह फेर लेता है। लोकनाथ ने सोचा था कि चावल का भात खाकर वह खिल उठेगा। कलुआ , हलुआ, घलुआ, तेतरी, पितरी और शनीचरी को ऑख बचाकर किसी छोटे बर्तन में उसके लिये अलग पका दिया जायेगा। हिसाब से दिया जायेगा। कम पड़ेगा फिर पें--पें करेगा तो एक ढेला सॉवा सरका दिया जायेगा। चावल

---

1. एक और कहानी : लक्ष्मीनरायण लाल, पृ0 22
2. वही, पृ0 181
3. "नई पौध"-- विष्णु प्रभाकर-- 'कहानी' नववर्षांक, 1961

पेट के लिये है भरसॉय के लिये नहीं। भाड़. के साथ गीला भात और ऊपर से नमक कितना अच्छा लगता है? माठा की जरूरत नहीं। माठा अँटता ही कहाँ है? गाय देती है तीन पाव दूध। उसे जमाकर पूजा के लिये कौड़ी--कौड़ी भर घी निकालने के बाद डाल दिया तीन सेर पानी। फिर सॉवा के भात के साथ हेला दिया कुल कच्चे--बच्चे ग्यारहों जने को।"[1]

योजना विकास, आर्थिक कार्यक्रमो और आसन्न कृषिक्रान्ति की समस्त सफलताओं--असफलताओं से ऊपर यह सत्य है कि कुछ स्थानो में प्राय लोग एक वक्त ही खाते हैं। गांव का आदर्श व्यक्ति अर्थात भूखा अध्यापक एक ही फटे कुर्ते में छपाक-छपाक पॉक पानी हेलता स्कूल जाता है। पत्नी का जेवर गिरवी रखकर दुकान काटता है। गांव के अन्य भले लोगों की भी यही दशा है। गहने समाप्त होने पर फॉका मस्ती प्रारम्भ होती है। अभिजात कुलोद्भव युवती कन्यायें तीज त्यौहार पर भी अपनी फटी साड़ी के लिये सिहकती रह जाती हैं। गांव की अभावग्रस्तता देखते रात में पहरेदार की जागते रहो की ठनक एक व्यंग्य हो जाती है। किसका क्या चोरी होगा। जहा आदमी गोबरहा (पशुओं के गोबर के साथ आया अन्न) खाने के लिये विवश है। वहॉ सामान्य जीवन की क्या कल्पना की जा सकती है?

बेकारी के समय जिनकी दिनभर की कमाई है एक खाँची गोबर। जिनके लड़कों की नग्नता ही वस्त्र का कार्य करती हैं। गॉव का स्वर्ग भी जिनके लिय नरक है और जो आयु गणना के अनुसार भरी जवानी में भूखों रहकर हल जोतते जो गिरता [illegible] [illegible] है, सो उठ नहीं पाता। यही उसकी नियति है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की घृणित

---

1. 'अतिथि' (कहानी) धर्मयुग, 18 दिसम्बर, 1966

परिणिति ग्रामस्तर पर हरिजन जाति की जीवन व्यवस्था से सर्वाधिक स्पष्ट हो जाती है सवर्ण लोगों के गाव से पृथक नियमतः गॉव के दक्षिण ओर करैता की ग्यारह महीना सोने और एक चैत महीने में जगने वाली चमटोल है। झिनकुआ, घुनविनवा, और जगजितवा की इस चम टोल में बाहर से तो 'अत्यधिक मनसायन है, परन्तु भीतर बहुत उदास और विरूप है। जहां के प्राणी आज भी कसाई खाने के पशु की भांति है और बन्नी मागने पर जिनकी पिटाई साधारण व्यापार है। स्वतन्त्रता के बाद इस स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। किन्तु यह नग्न सत्य है जिसे कथाकारों ने उघाड़ा है। समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व अथवा सर्वोपरि मानवता के सुनहरे नारे के नीचे घोर अन्तर्विरोध है।वास्तव मे यह सास्कृतिक और सामाजिक नहीं मूलतः आर्थिक समस्या है।

विशाल राष्ट्र भारत की ग्रामात्मा एक आर्थिक विकृति का बोझ शताब्दियों से ढोती आ रही है जो भूमिहीन किसान की घोर विसंगति के रूप में एक युग सत्य है। लक्ष्मीनरायण लाल की एक कहानी में --''फेरई के पास खेती के साधन है, उल्लास और शक्ति है उसमें, उसकी बाहुओं में 'ट्रैक्टर की गति है लेकिन उसके पास खेत नही है।''[1] फिर भी फेरई तो अच्छा है कि उसे भूमि प्राप्त संभावित है। देश के उन कोटि--कोटि कृषकों के मनः स्थिति का जो आपाततः भूमि से जुड़े रहकर भी उससे पृथक भूमिहीन की संज्ञा से प्रज्ञात है। भू--भूख और उससे विछुडन की तड़पन बहुत प्रबल है।

अमरकांत की कहानी ''दोपहर का भोजन'' मे मध्यवित्त परिवार की जो रोमांचक स्थिति उभरी है वह इस वर्ग की परिनिष्ठित स्थिति है। इस कहानी के एक लघुचित्र-बिम्ब से पूरा धुन्धग्रस्त परिवेश साकार हो उठता है--

---

1. 'सूने ऑगन रस बरसै' डा0 लक्ष्मीनरायण लाल, का कथा संग्रह : शीर्षक कथा, पृ0 19

"लड़का नंग–धड़ंग पड़ा था। उसके हाथ पैर तथा छाती की हडि्ड़याँ साफ दिखाई देतीं थीं।"[1]

वास्तविकता तो यह है कि क्लर्की से छटनी के बाद मुशी जी के परिवार के स्थिति अनन्त निराशाओं के कुहासें से अब चूभ जैसी हो जाती है। बीहड़ विषावत मौन में डूबे हुए मध्यम वर्ग के पारिवारिक संत्रास क्षणों को कथाकार ने बड़ी ही कुशलता के साथ उकेरा है।

बेकारी और निर्धनता की दोहरी चोट से आहत शिक्षित ग्रामीण नगर मे अथवा गाँवों में ही मध्यम वर्ग का जीवन जीने के लिये विवश है। मध्यवर्गीय आर्थिक विषण्णता 'बूँद पानी'[2] में एक नये कोंण से चित्रित है। विसेसर मूलतः ग्रामीण है परन्तु वह महानगर के गुंजलक में रिक्तहस्त फंस गया है। उसकी युवा पत्नी की साड़ी तार–तार हो गई है और धेली रूपये तक के लिये कंगाल हो गया है। सारी गृहस्थी उखड़ गई है। इस बीच यदि कोई वस्तु सुरक्षित है तो वह है पति–पत्नी का पारस्परिक प्रेम। गाँव से उजड़कर विसेसर के बड़े भैया दो बच्चों के साथ आ जाते हैं। वे बच्चे एकदम जंगली हैं, जैसे अजायब घर से लाये गये हैं। ग्रामबोध और नगरबोध की टकराहट विभिन्न स्तरों पर उमड़ती है किन्तु रह–रहकर जो प्रश्न उठ खड़ा होता है, वह यह कि महानगर गाँव से कटे इन अभागों को क्या सुरक्षित स्थान दे सकेगा ? गाँव का नगर हो जाना एक दुःस्वप्न है। यह सत्य है उसका नगर मे आ जाना। उनकी उजड़े लुटे गाँव की स्मृतियाँ बहुत मर्मस्पर्शी हैं--

---

1. अमरकान्त के कहानी संग्रह 'जिन्दगी और जोंक' में सकलित तीसरी कहानी "दोपहर का भोजन," पृ0 51
2. हिमांशु जोशी के कहानी–संग्रह 'अन्ततः' में संकलित कहानी।

'शायद अब गॉव लौटना नहीं चाहते भैया बड़े भैया ! ..... आखिर लौटें भी कैसे ? बैलों की जोड़ी बिक गई। बाप--दादा के पुराने मकान की पिछली दीवार पिछली बरसात में ढह गई। इने--गिने, दो--चार रेतीले खेत, कुछ उपजाता नही, सूखे तिनके तक नहीं !''[1]

इन गॉवों तक विकास के चरण अभी नही पहुँचे और न ही स्वतन्त्रता के बाद आर्थिक दृष्टि से कोई परिवर्तन हुआ है। अतः नौकरी की खोज और गाव के शिक्षित बेरोजगारों की हताश प्रयत्नशीलता बहुत करूण है। उनकी लक्ष्यहीन भ्रमित और छीजती डूबती युवाशक्ति जीविकोपार्जन के तिनके मात्र के सहारे को भी बहुत मानती खप जाती है। गॉव का एक हाईस्कूल पास लड़का नौकरी की तलाश मे नगर जा रहा है। नीरु ने थोड़ा सा सत्तू लिया और दो सेर आटा। चल पड़ा शहर की ओर। सुमेश सिवान तक पहुँचाने आ गये थे। इधर मॉ सिसक रही थी। छिः वह क्यों सिसक रही है। बेटा तो कमाने जा रहा है। इसी तरह से पानू खो--लिया की कहानी 'दुश्मन[2] मे भगपत और उसकी स्त्री सल्लो के मन में बच्चा उत्पन्न होने पर उसे राजकुअर की तरह पालने के सपने जगे। वे गॉव छोड़कर नगर में आ गये। मिल मे नौकरी लगी। जहा उन्होने सोचा था झूले, हाथगाड़ी, पढ़ाई, भारी पण्डित होने और गिरंथु (ग्रन्थ) लिखने की बात वहा घोर दरिद्रता में बच्चा कुछ आनों की दवा के अभाव में तड़प--तड़प कर चल बसता है तो अभागे दम्पत्ति यह सोचकर सन्तोष कर लेते है कि वह बेटा नही दुश्मन था।''[3] शैलेश मटियानी की कहानी ''चिथड़े''[4] में गेंदी को नगर के सपनो मे बहका रहा है।

---

1. 'अन्ततः'
2. पानू खोलिया के कहानी--संग्रह 'एक किरती और' पृ0 135
3. पानू खोलिया के कहानी--संग्रह 'एक कहानी और' पृ0 137
4. शैलेश मटियानी की 'मेरी तैतींस कहानिया' से सकलित, पृ0 33

बेकारी और अभावग्रस्तता के अतिरिक्त आधुनिक काल में अन्य ऐसे अनेक आर्थिक पोज उभर आये हैं जिनके प्रभाव से गांव टूट रहे हैं। और ग्रामीण उसे छोड़कर नगर की ओर भाग रहे हैं। रेणु की कहानी "विघटन के क्षण"[1] में इस विद्रूप का साक्षात्कार किया गया है। गॉव की दो कन्याओं में प्रबल ग्राम-प्रेम है। उनमें से एक विजया तो नगर में आकर विक्षिप्त हो जाती है, लेकिन विवशतः उसको विद्रोह सहन करना पड़ता है। क्योंकि वह जिस बड़धरिया हवेली की कन्या है उसके प्रधान रामेश्वर चौधरी एम0एल0ए0 गॉव छोड़कर पटने में ही रहते हैं। जमीन जायजाद बेंच चुके हैं। कुछ थोड़ी बची है।" जिस दिन कोई बड़ा ग्राहक लग जाये बेचकर छुट्टी।छुट्टी मानें। इस रानीडह गाव से अपनी जन्मभूमि से कोई लगाव नहीं।..... गॉव के जवान--जहान लड़के गॉव छोड़कर भाग रहे हैं। पता नहीं शहर के पानी में क्या है कि जो एक बार एक घूँट भी पी लेता है, फिर गांव का पानी हजम नहीं होता।"[2] सुविधा सम्पन्न लोग गॉव की उदासी से ऊबकर और सुविधा सम्पन्न होने के लिये नगर में जम रहे हैं। "शहर का दुतरफा आवागमन कहकर राजेन्द्र यादव जिसे "सांस्कृतिक और नैतिक संक्रमण"[3] कहते हैं। वह वास्तव में आर्थिक--संक्रमण है।

आर्थिक विषमताओं ने आज के मनुष्य को पीसकर रख दिया है। बेकारी और मँहगाई इन दोनों विभीषिकाओं के बीच आज का मनुष्य अपना चेहरा खो चुका है। आर्थिक स्तर के स्वलप वेतन भोगी आज का व्यक्ति प्रतिपल चिन्ता मे डूबा रहता है। आथिक स्तर के

---

1. रेणु के कहानी-सग्रह "आदिमरात्रि की महक" में सकलित।

2. "आदिम रात्रि की महक" पृ0 14

3. कहानी : स्वरूप और संवेदना, राजेन्द्र यादव, पृ0 45

अर्न्तविरोधों का उस पर इतना दबाव पड़ा कि आदमी आज आदमी नहीं रहा। आर्थिक परिस्थिति के प्रभाव में घुटकर जीने के लिए अभिशप्त मानव प्राणियों की नियति को अनेक कहानियों में हम देख सकते हैं। "इतने अच्छे दिन कहानी में"मृतको की हड्डियों का पहरदार युवती कमली है। गरीबी के कारण पेट पालने के लिए कहानी का बाला जीवित आदमी को टके को भी न पूछता बल्कि उनकी हडिडयों पर हक जमाता है। कमली का बर्तासह ट्रक ड्राईवर उठाकर ले जाता है। बाद में वह ट्रक ड्राइवरों की हो जाती है। कमली तन का पेशा करती है। बहिन को पेशे के लिए सोता छोड़कर भाई निस्सग भाव से रहता है। इस कहानी का हृदय स्पर्शी अंश है-- "बस्ती की लाला है।" कमली ने कहा था- "इस साले से दस लेना कहते हुए बाला अपनी खाट पर आ गया था। कुछ ही देर बाद सब कुछ शान्त हो गया था। यह अच्छा था। बस्ती का लाला जब भी आता था तो शुरू में शोर ज्यादा मचाता था पर आधा घंटे के बाद ही सो जाता था। ड्राइवर रातभर हगामा करते थे। कमली भी बुरी तरह थक जाती थी और दूसरे दिन सोती रहती थी।"[1]

"जोखिम" कहानी में बढ़ती हुई मंहगाई से कष्ट सहने वाले मध्यवर्ग का दर्द विचित है। कहानी का "मैं" घर से दूर बम्बई के तटों में सोना सामान तस्करी से उतारने वालों की सहायता करके गुजारा करता है। उसकी मॉं अकेली गॉंव में है-- 'अब न मै मॉं से अपना दुख कहता हूँ, न मॉं मुझे अपना दुख बताती है। हम दोनो एक दूसरे के दुख यातनाओं से घबराते हैं। वह अपने शहर में सबको यही बताती है कि मै बड़े आराम से हूँ, और मुझे अगर बताने की जरूरत पड़ गई तो मै कहता हूँ

---

3. कमलेश्वर-- "इतने अच्छे दिन" कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियां, पृ0 6-7

माँ है, वह बड़े आराम से गुजर कर लेती है। धीरे--धीरे हम इस दारुण समझौते पर पहुँच गये हैं। अवशता में हमारा यह आपसी समझौता हमें राहत देता है।"[1]

मृदुला गर्ग की "क्षुधापूर्ति" कहानी के लड़के ने खोली छोड़कर निकलते समय तयकर लिया था कि जैसे भी होगा एक हाँडी भात रोज खाया करेगा। कई नौकरियाँ उसने की। पर भूख न मिटा सका-- "रबर की चप्पलों के फीते बनाने वाली फैक्टरी में काम किया, डेढ़ रूपया रोज पर पता चला फुटपाथ पर सोकर भी इतने पैसों में आतों का कुलबुलाना बन्द नहीं किया जा सकता। ढावे में नौकरी की, यह सोचकर कि इतना ढेर सारा खाना जहाँ बनेगा। वहाँ इसके हिस्से भी कुछ आयेगा, मगर ढाबे का मालिक उसकी माँ से भी ज्यादा कड़ा हिसाबी था। अस्सी रूपये माहवार जो देता, उसमें से खाने के पैसे काट लेता था। दो रूपयों की पूरी सब्जी खाकर उसकी आंतो में महाभारत छिड़ जाता और और की पुकार उसे पागल बना देती।"[2]

हेतु भरद्वाज की "प्रेत छायायें" कहानी का पिता सरकारी नौकर है, क्लर्क है। चार सौ पैंसठ रूपये सत्तर पैसे पाने वाला क्लर्क जिसका बड़ा लड़का एम0ए0 पास कर बेरोजगारी के आलम में दुखी है और छोटी लड़की शीला शादी के लायक है और तीन छोटे बच्चे स्कूल मे पढ़ते हैं। अपने भरे पूरे परिवार की जरूरतें पूरा करने में वह अपने को असमर्थ पाता है। अपनी पत्नी और बच्चों को देखकर प्रेत छाया जैसा उसे लगता है--

"उसके मुँह से बहुत जोर की चीख निकली, उसकी आँखे खुल गई।

---

1. कमलेश्वर "जोखिम" - कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ0 126--127

2. मृदुला गर्ग - "क्षुधापूर्ति" (दुनिया का कायदा) पृ0 19

उसने पाया कि उसके दोनों पंजे उसकी गर्दन को बुरी तरह पकड़े थे। उसकी साँस घुट रही थी। चारों ओर घुप्प अंधेरा था। उसने सोचा कि क्या उसने आत्महत्या करने का प्रयास किया था। उसे लगा कि उसके चारों ओर अनेक छायायें मड़रा रहीं है और उसका दम घुट रहा है। ....उसने महसूस किया कि उसके गले में शब्द अटक गये हैं और अनेक अज्ञात छायाओं ने उसे दबोच लिया हे।"[1]

इब्राहीम शरीफ की "जमीन का आखिरी टुकड़ा" कहानी में पिता की मृत्यु के बाद परिवार के लोग आर्थिक कठिनाई से इतनी तकलीफ उठाते हैं कि कर्ज चुकाने के लिए पुश्तैनी जमीन का आखिरी टुकड़ा तक बेच देना पड़ता है। इस कहानी में माँ अपने में टूट चुकी है। रजिस्ट्रार के दफ्तर जाते वक्त माँ-- बाहर अगर बोली-- ... बेकार में जायदाद में मेरा हिस्सा भी लिखा गये हैं ....बरना मेरे ये बार-बार के चक्कर नहीं होते .....गाँव में फजीहत अलग से .....मैने ही कौन सी जायदाद बचा ली है।"[2] चित्रा मुद्गल की "मामला आगे बढ़ेगा अभी" कहानी का मोट्या सक्सेना साहब के कार धोने का काम करता है। दो चार दिन तबियत खराब होने के कारण मोट्या सक्सेना के यहाँ न जा सका था तो साहब-तो साहब गाड़ी धोने के लिए नया छोकरा ढूँढ रहा था लेकिन मोट्या फिर आया तो चेतावनी दी. कि आइन्दा बिना खबर दिये छुटटी लेनी नहीं है। लेकिन उस महीने के वेतन से चार दिन का वेतन काट दिया गया तो मोट्या आग बबूला हो गया और लपलपाते सरिये से सक्सेना साहब की सफेद ब्योटा पर प्रहार किये जा रहा था- "कुछ न कर पाने की विवशता क्रोधाग्नि से फनफनाती हुई उसकी आँखों में पनिया रही थी-- मेरा चार दिवस का खाड़ा काट लिया फसेब करके

---

1. हेतु भरद्वाज "प्रेत छायायें" श्रेष्ठ सचेतन कहानियाँ-- स0 सुदर्शन नारंग, पृ0 146
2. इब्राहीम शरीफ-- "जमीन का आखिरी टुकड़ा" स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी कोश -- सं0 महेश दर्पण, पृ0 218

थोड़ा मै घर पर मस्ती मारता होगा। ....खाड़ा के वास्ते मै .....लड़ाई किया तो मेरे को थप्पड़ चढा के दफा हो जाने कू बोला .....धक्का मारके घर से बाहर कर दिया।"[1] मोट्या प्रतिशोध की भावना से कॉप रहा था। शशि प्रभा शास्त्री की "ग्रोथ" कहानी की नायिका उमादेवी शादी के बाद परिवार की विषम आर्थिक स्थिति के कारण नौकरी कर लेती हैं और इसी तरह परिवार को आर्थिक रूप से डूबने से बचाती हें। लेकिन दफ्तर में पुरूषों के साथ काम करने से उसका पति उसे सन्देह की दृष्टि से देखता है और सोचता है कि ये सब पुरूष उसके यार दोस्त हैं।" बीमार पति को देखने के लिए उमादेवी के सहयोगी आ जाते हैं तो उसके पति का कहना है-- मुझे देखने आने का तो बहाना है, ये सब लोग तेरी खातिर आते हैं, मुझे नही मालूम था कि तेरे इतने यार दोस्त हैं।"[2]

दीप्ति खंडेलवाल की "रीतते हुए" कहानी की सुषमा अपनी दो सौ की टीचरी के साथ रमेश की हो गयी थी।' वैसे भी निर्धन माता पिता ने उसे दिया ही क्या था कि वह इनकी इच्छा अनिच्छा की परवाह करती। मॉ ने कहा था- "तू रमेश के लिऐ हमें छोड़ रही है तो अब फिर इस घर में कदम मत रखना। हमनें यही सोचकर तुझे पढ़ाया लिखा था न कि पंख निकलने पर तू उड़ जाये। तुझे यह भी होश नहीं कि तेरे बाबू बीमार हैं और ज्यादा नहीं चलेंगे।"[3] मेहरून्निसा परिवेज की "आतंक भरा सुख" कहानी में मारवाड़ी की अर्थी के फेंके जाने वाले सिक्के लेने के लिए गांव का एक लड़का भी भागता है-- "उसे अब मारवाड़ी की लाश से जरा भी डर नहीं लगा रहा था, जरा

---

1. चित्रा मुद्गल "मामला आगे बढ़ेगा अभी"- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी कोश -- स0 महेश दर्पण, पृ0 378
2. शशि प्रभा-- ग्रोथ-- (अनुत्तरित) पृ0 24
3. दीप्ति खण्डेलवाल-- रीतते हुए-- (धूप के अहसास) पपृ0 68

भी यह एहसास नहीं हो रहा था, कि वह अर्थी के साथ चल रहा है। कल जो भय उसे सता रहा था आज उस भय का कही अता पता नहीं है। यह खुश- खुश होकर मेहतरों के साथ पैसे उठाता जा रहा था। वह यह भी भूल गया था कि वह किस जाति का है और यह काम उसका नहीं है।"[1]

श्रवण कुमार की "सबंध" कहानी की नायिका अन्तरिमा सुहावनी दुनिया चाहती है। उसकी अपनी दुनिया ही अलग है। वह - "अपने पति से कहती है कि पैसे का नूर ही कुछ और होता है। अरे, पैसे के बल पर मुर्दा लोग भी उठकर खड़े हो जाते हैं। कमाई करो कमाई। कमाई नहीं करोगे तो रिश्तेदारो के यहां तीज--त्यौहारों पर कैसे पहुंचोगे, दोस्तों को गमी- सुख में क्या मुँह दिखाओगे ! पैसा नहीं होगा तो खुद ही दूसरों से कटे--कटे घूमोगे। मुझे तो पैसा चाहिये पैसा। पैसा ही हर रिश्ता तय करता है पैसा ही भाई है, पैसा ही बेटा है, पैसा ही पत्नी है, पैसा ही प्रेमिका है।'[2] ममता कालिया की 'काली साड़ी' कहानी की कल्पना स्कूल टीचर है और उसका पति विनोद दफ्तर का बाबू है। "मकान का किराया, बिजली का बिल, बच्चों की फीस, रिक्शे का भाड़ा, दूध के दाम देते--देते तक वेतन का लिफाफा "रामनाम सत्य है' बोल पड़ता और कल्पना चुपचाप अपना ध्यान आध्यात्मिक सन्तोष में लगाने का प्रयत्न करती है।"[3] विकेश निझावन की कहानी "पहली जीत"[4] में नौकरों का संगठित होना और घर से निकाले गये नौकर चन्दन की उसकी बहू के साथ घर मे रहने के लिये सेठानी का मजबूर हो जाना एक बदली हुई सामाजिक स्थिति का सूचक है। कुमार सम्भव की कहानी आखिरी सॉड़'[5]

---

1. मेहरूनिन्सा परिवेज-- आतक भरा सुख टहनियों पर धूप, पृ0 79
2. श्रवण कुमार-- संबध-- सारिका, जून 1989, पृ0 44
3. ममता कालिया-- काली साड़ी--(प्रतिदिन) सकलन, पृ0 8
4. विकेश निझावन-- "पहली जीत" "15 सक्रिय कहानिया"- सं0 राकेश वत्स, पृ0 37
5. कुमार सम्भव-- "आखिरी सॉड" "15 सक्रिय कहानियाँ" पृ0 50

------ में गाँव की नयी पीढ़ी द्वारा संगठित होकर अन्याय, हत्या एवं बलात्कार के लिए कुख्यात ठाकुर के अन्तिम अवशेष जोधासिंह को मारना सामाजिक बदलाव का सूचक है।

राकेश वत्स की "उसका हिस्सा" कहानी में दिखाया गया है कि आर्थिक तंगी से मजबूर होकर किस तरह बच्चों को भी रसोई से लेकर कूड़े, कचरे से कबाड़ी की चीजें इकट्ठा करने तक का काम करना पड़ता है-- "थोड़ी देर चलते रहने के बाद जब उसका जोश ठन्डा पड़ा तो उसे फिर माँ के कहे दाल चावल और उनकी दवाई का ख्याल सताने लगा। पिता की दवाई खरैती अस्पताल से आती थी, और उसके लिए हर रोज आठ आने खर्च करने पड़ते थे। ख्याल के साथ ही भूख से जलती हुई पेट की आँते एक क्षण के लिए उसके पैर ठिठके और फिर कागज की रद्दी वाले कबाड़ी की दुकान की तरफ मुड़ गये।"[1]

सुमित अय्यर की कहानी "घटना चक्र" माँ पैसे की लालच से अपनी बेटी को किसी ऐसे पुरूष को सौंप देती है जो लड़की के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है। कहानी की अलकनन्दा अपने पड़ोसी अतुल को चाहती थी, लेकिन अतुल तो अभी कमाने नहीं लगा था। पढ़ तो रहा था इसीलिए अलका के माँ--बाप ने अतुल से शादी नही करने दी। कानपुर आई0आई0टी0 में उसका सेलेक्शन हो गया तो अतुल चला भी गया। अलकनन्दा को शादी शुदा बाल बच्चों वाला अति सम्पन्न व्यापारी जो अपने भरे पूरे परिवार को कलकत्ता में ही छोड़ चुका है। उसी के साथ बम्बई रहना पड़ता है। उसके केर टेकर के रूप में, या दूसरे शब्दों में 'रखैल' बनकर रहने के लिए अलका मजबूर हो जाती है। माँ--बाप ने अपनी बेटी को "सुखी और सम्पन्न" देखना चाहा। अलका अपने आप परेशान है। "उसे

---

1. राकेश वत्स-- "उसका हिस्सा" 15 सक्रिय कहानियाँ, पृ0 64

सोचकर आश्चर्य हुआ कि आर्थिक विपन्नताओं में नैतिकता की सीमा को सुविधा अनुसार विस्तृत और संकुचित करने की अपार क्षमता होती है। उसका जी चाहा था किसी अर्थशास्त्री और नैतिक शास्त्री से पूछे कि इनका मिला--जुला समाजशास्त्र कैसे बनेगा? उसने तो कभी सुविधाओं की कमी की शिकायत नहीं की थी। फिर सत्रह वर्षों से वह उसकी आदी हो गई है। सहसा माँ को ऐसा ख्याल क्यों आया। नैतिकता का अनकहा बोध सिर्फ उसके भीतर ही बच रहा था।"[1]

इस व्यापारी ने तो एक के साथ अपने मित्र सक्सेना को अलका के पास भेजा था। पत्र के अनुसार सक्सेना को उनके यहाँ ठहरने का प्रबन्ध अलका और नौकरानी रामी ने मिलकर कर लिया। सक्सेना का व्यवहार तो अलका को पसन्द न आया और वह उससे अलग हो गई थी। अलका ने सोचा था कि जब वे (व्यापारी) यह सुनते ही भड़केंगे, लेकिन अलका की प्रतीक्षा के विपरीत उसने कहा कि पिछली बार सक्सेना ने जो कान्ट्रेक्टस साइन किये थे, पिछले हफ्ते मे तोड़ देने के कारण अलका का ऐसा ही व्यवहार था। आगे वह समझाया- "मेरा मतलब है तुम इतनी, माड़, पढ़ी-लिखी, लड़की हो। अब भी उन फिजूल के सस्कारों से बंधी बैठी हो। शारीरिक पवित्रता जैसी नैतिकता क्या फालतू नहीं लगती?"[2] सुशिक्षित होने का मतलब नैतिकता का ह्रास ही समझने वाला अनपढ़, अमीर व्यापारी यहाँ एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधि बनकर आया है, जिसे नैतिक मूल्यों की कोई परवाह नही है। उन्हें पैसा ही सब कुछ है।

"कामनापूर्ति" इस कहानी में जैनेन्द्र ने पंडितानी की सोचनीय आर्थिक स्थिति का चित्रण करके उसकी दरिद्री गृहस्थी का चित्रण करके इस समस्या की ओर संकेत

---

1. सुमित अय्यर-- घटना चक्र-- हिन्दी कहानी का मध्यान्तर, स0 रमेश बक्षी, पृ0 259
2. सुमित अय्यर-- घटना चक्र-- हिन्दी कहानी का मध्यान्तर, स0 रमेश बक्षी, पृ0 262

किया है– ''पडितानी सेठों के हाल को तरसती थी। खिलाने को कोई पास नही है। अपने दो जनें कैसे ठाठ से रहते हैं। न क्लेश, न चिन्ता, न कलह। मुझपर इतने सारे खाने को आ पड़े हैं। सो क्या करूँ?''[1]

आमदनी कम और खाने वाले ज्यादा ऐसे बृहद परिवार में पालन-पोषण का प्रश्न चिन्ता को बढ़ाने वाला होताहै। दिन प्रतिदिन महंगाई तो बढ़ती रहती है। घर के सदस्यों की मॉगे भी बढ़तीं हैं। जैसे--जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं, उनकी मॉगे भी बढ़ती जाती हैं। ऐसी अवस्था में काम की अपूर्णता महसूस होती है और क्या करें न करें, खर्चा कैसे चलाया जाय? आदि प्रश्न कुरेदते रहते हैं। पंडितानी के आठ बच्चे हैं। वह स्वयं और पति कुल मिलाकर परिवार में दस सदस्य है। कमाने वाले सिर्फ पंडित जैनेन्द्र ने इस परिवार की परिस्थिति का चित्रण करके इस बात की ओर भी संकेत किया है कि कुटुम्ब की आबादी पर हम मर्यादा डालें, और वह छोटा बनाये रखे तो इतनी तकलीफ नहीं होगी, पण्डित के परिवार में दस के बजाय 4 व्यक्ति होते तो शायद उनकी इतनी दयनीय स्थिति न होती जो आज हो गई है। छोटा परिवार सुखी परिवार यह मन्त्र अगर पण्डित याद रखते और चरितार्थ करते तो यह समस्या इतनी तीव्र भी न होती।

मनुष्य के सामने धन की समस्या है इसी–लिए सारी यातायात और दौड़ धूप उसे करनी पड़ती है। दिन--रात चिन्ता उठानी पड़ती है। बिना सोच विचार और समस्या के बगैर तो एक दिन भी खाली नहीं जाता, मनुष्य के लिए धन चिन्ता अगर न होती तो कितना अच्छा होता ऐसा पण्डितानी को लगता है। और वह कहती है-- ''एक वह है कि धन की कूत नही और पीछे झमेला भी नहीं। जो कहीं धन होता और यह सब जंजाल न होता, तो कैसा आराम होता?[2]

---

1. जैनेन्द्र कुमार की कहानियाँ-- तीसरा भाग, कामनापूर्ति, पृ0 144, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1983
2. वही

लेकिन बात तो ऐसी है कि कोई भी आदमी अर्थ के कारण ही कोई व्यापार करता है।

आर्थिक स्थिति निम्न होने के कारण आदमी अपने मनचाहे जैसा रह नहीं सकता। उसे अपनी इच्छाओं पर रोक लगानी पड़ती है। सच तो यह है कि गरीबी के कारण उसे सफर करना भी मुश्किल हो गया है। टिकट के लिए पैसे भी नसीब नही होते। गरीब स्थिति का यह निदर्शक है, कि जब लेखक रेल स्टेशन पर आता है तब कुली उसका सामान उठाकर पूछता है, कौन से वर्ग के डिब्बे में सामान रखें? "बाबू ज्याढा दरजा? मैने देखा, मै इन कुलियों को यह नहीं कह सकता कि चौथा दरजा नहीं है, इससे तीसरे में बैठता हूं। इसे ये लोग "एप्रिशियेट नहीं कर सकेंगे।"[1]

गरीबी मानवी के लिए एक ऐसा अभिशाप है कि वह अगर गरीब हे ऐसा लोग समझते हैं तो उसे सम्मान भी नहीं मिलता। गरीबों के प्रति समाज का देखने का रूख तिरस्कार और घृणा का होता है। यह गरीबी की एक और समस्या है। इसीलिए अपनी गरीबी को छुपाने का यह प्रयत्न मानवी जीवन की दूसरी ओर संकेत करता है।

अर्थ के अभाव के कारण परिवार तितर--बितर हो जाता है। पिता भीख मॉगता है। इसीलिए लड़का उसे अपना बाप कहलवा लेना शर्म की बात मानता है। कारण पिता का भीख मांगना उसे सामाजिक दृष्टि से लाच्छनास्पद लगता है। गरीबी के कारण पिता का पालन पोषण करना मुश्किल हो जाता है। पत्नी पति की ऑख फाड़ देती है और गरीबी के कारण रोजी–रोटी प्राप्त करने के लिए वह वेश्यावृत्ति अपना लेती है।

---

1. जैनेन्द्र कुमार– छठा भाग-- इक्के में, पृ0 43 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1981

अन्धा सूरदास अब बूढ़ा हो चुका है। उससे भीख माँगने का काम नही होता। इसीलिए उसमें पलायन वृत्ति निर्माण हो रही है। अब ईश्वर उसे अपने पास बुला ले ऐसी वह प्रार्थना करता है-- ''मालिक रोटी मिलने में अब मुश्किल होती है। देह बूढी हो चली। अब तेरे पास तेरे चरणों में आना चाहता हूँ। जल्दी चाहने का हक नहीं है, तो भी मालिक जल्दी करना, जल्दी ही उठा लेना।''[1]

इस प्रकार से कहना अनुचित न होगा कि मनुष्य अर्थ के लिए क्या-क्या नहीं करता, जब वह कुछ नहीं कर पाता तो भीख माँगना ही एक मात्र साधन रह जाता है, जब भीख माँगने के काबिल भी नहीं रहता तो ईश्वर से अनुनय, विनय करता हुआ, मौत की भीख माँगता है। ऐसा क्यों? सिर्फ पापी पेट नहीं भरता इसलिए। हाँ - सिर्फ इसीलिए की भूख से आंते कुलबुलाती हैं और पेट के लिए भोजन चाहिए। भोजन के लिए पैसा और पैसा बिना रोजगार के प्राप्त नहीं होता और रोजगार मिलता नहीं है। इसीलिए भारत में गरीबी और बेरोजगारी की जुड़वा समस्या है।

रमेशचन्द्र शाह की कहानी ''मुहल्ले का रावण''[2] में कहानी का पात्र कादिर–मियाँ जो चिचड़े के नाम से पुकारा जाता था। उसकी बीबी मर मई है। बेटी सूफी और कादिर मियाँ दोनों टाँट की फट्टी के मकान में रहते है। वही दुकान तथा वही मकान है। कादिर मियां टोपियाँ बनाते हैं। साल में कम से कम साठ सत्तर नाटक होते थे और उनके लिए पोशाक बनाने का जिम्मा कादिर मियाँ का ही था-- यह तो कादिर मियाँ की बल्कि हमारे कस्बे की ही बदकिस्मती कहिए कि कोठी खाने के पादरी के साले

---

1. जैनेन्द्र कुमार– पाँचवा भाग, अन्धे का भेद, पृ0 164 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1978
2. रमेशचन्द्र शाह– प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ0 47

अध्याय सप्तम् (अ)

भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की वास्तविक सामान्य स्थिति और आर्थिक विकास की सम्भावनायें

भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की वास्तविक सामान्य स्थिति और आर्थिक विकास की सम्भावनायें

भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की वास्तविक सामान्य स्थिति को ध्यान में रखते हुये गॉधी जी ने कहा है कि, आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण से आर्थिक विषमता में वृद्धि होती है। इसके आर्थिक विकास के लिये तथा इन्हे रोजगार देने के लिये खादी एवं कुटीर उद्योग सर्वोत्तम है, क्योंकि खादी का उद्‌देश्य है ग्रामीण बेरोजगारी को दूर भगाना। भारत में जहॉ बेरोजगारी, अर्धबेरोजगारी व मौसमी बेरोजगारी जैसी अनेक समस्यायें है वहॉ इस बेरोजगारी को दूर करने के लिये खादी का उद्योग महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। मुकेशचन्द्र शर्मा के अनुसार -

"खादी और ग्रामोधोगी क्षेत्र का विकास केवल देशभक्ति का काम नहीं? बल्कि हमारी जरूरतों को पूरा करने के लिये एक मात्र विकल्प है। श्रम प्रधान होने के नाते यह बड़ी संख्या मे लोगो को रोजगार प्रदान कर सकता है, और इसके लिये बहुत थोड़ी पूॅजी और तकनीकी की आवश्यकता है।"[1]

इस प्रकार से योजना आयोग के इस एक अनुमान के अनुसार जैसा कि अध्याय--4 के पूर्व में वर्णन किया गया है कि बड़े उद्योगो की तुलना मे कुटीर तथा लघु उद्योगों में लगाई गई समान पूॅजी से 15-20 गुना अधिक रोजगार प्रदान किया जा सकता है। जबकि एक अन्य अनुमान के अनुसार-- "कुटीर उद्योगों में एक करोड़ रूपये की पूॅजी के विनियोग से तीन हजार व्यक्तियो को रोजगार मिलना है जबकि बड़े उद्योगो मे इस राशि से केवल तिरेपन व्यक्तियों को ही रोजगार मिलता है।"[2]

---

1. खादी एवं ग्रामोद्योग पत्रिका, वार्षिकांक अक्टूबर 1984 पृ0 31
2. भटनागर एव मित्तल-- भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्यायें, पृ0 264

रोजगार के दृष्टिकोण को अपनाकर पॉचवी योजना में दो लाख लघु इकाईयों की स्थापना का आयोजन किया गया था। जिससे 20 लाख लोगों को रोजगार मिल सके। जनता सरकार ने भी कुटीर तथा लघु उद्योगों की ओर समुचित ध्यान दिया। ग्रामीण समाज में जहाँ अर्धबेरोजगारी व्याप्त है। कुटीर उद्योग इस समस्या के समाधान हेतु अधिक लाभप्रद होगें। कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने हेतु जिला उद्योग केन्द्र (डी0आई0सी0) की स्थापना की गई। इस समय स्वीकृति जिला उद्योग केन्द्रों की सख्या 315 है। जो देश 518 जिलों में कार्यरत है। सन् 1960-61 में योजना आयोग के अनुसार कुटीर तथा लघु उद्योगों में कार्यरत व्यक्तियों की सख्या 82,700 बताई गई थी। परम्परागत चौथी योजना के अन्त तक लघु एव कुटीर उद्योगों मे 102.21 लाख व्यक्तियो को रोजगार मिला। जबकि पॉचवी के अन्त तक 132.34 लाख व्यक्तियो को रोजगार प्रदान किया जा सका। जिसमें हस्तशिल्प उद्योग मे 5.59 लाख, रेशम उद्योग मे 20.30 लाख, हथकरघा उद्योग मे 16.00 लाख व्यक्तियों को रोजगार मिला। यदि कुटीर एव लघु उद्योगो की तरफ समुचित ध्यान दिया जाये तो ये अधिक रोजगार प्रदान करने मे सहायक होगें। प्रसिद्ध आदर्शवादी अर्थशास्त्री श्री मन्नूनारायण जी लिखते है कि-- स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये आर्थिक स्वावलम्बन आवश्यक है और कुटीर उद्योग ही लाखों, करोड़ों लोगो को रोजगार देने में समर्थ है। बड़े केन्द्रित उद्योग वस्तुतः बहुत कम काम दे पाते हैं। गणना के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है। बड़े उद्योगों में जहाँ 11 प्रतिशत लोग लगे थे। वहाँ 1951 में उनकी सख्या कुल जनसंख्या का 9 प्रतिशत ही थी।''[1]

यदि इस प्रकार कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दिया जाय तो भारत में बेरोजगारी की समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है, क्योंकि ये उद्योग अधिक रोजगार क्षमता रखते हैं। यदि

---

1. श्री मन्नारायण-- गॉधीवादी संयोजन के सिद्धान्त , पृ0 88

भारत में सभी व्यक्तियों को रोजगार के अवसर अधिक मिलें तो भारत बहुत तेजी से विकास कर सकता है। जैसा कि भवानी शंकर व्यास ने गाँधी जी की नीतियो को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सार्थक बताते हुए कहा है कि-- "कुटीर उद्योगों का विकास राष्ट्र की आर्थिक प्रगति के लिए अत्यन्त ही आवश्यक है और उसकी अपेक्षा आत्मघाती ही हो सकती है। भारत में अपरिमित जनबल है। यदि उसे समुचित अवसर दिया जाय, तथा बेरोजगारी का अभिशाप समाप्त हो सके और भारत के किसी भी समुन्नत देश से प्रति स्पर्धा कर सकता है।"[1]

इस वर्ष 1976--77 मे 4808 लाख व्यक्ति इस क्षेत्र में नियोजित थे। और इसमें क्रमशः वृद्धि हुई क्योंकि वर्ष 1982--83 मे इस क्षेत्र मे नियोजित व्यक्तियों की सख्या 79 लाख पहुंच गई। वर्ष 78--79 को छोड़कर वार्षिक वृद्धि की दर 5 प्रतिशत से 8.4 प्रतिशत के बीच रही। इस प्रकार इन आंकड़ों से ज्ञात होता होता है कि 76--77 से 82--83 की अवधि में रोजगार मे विशेष प्रगति नहीं हुई। इसका अर्थ यह नहीं कि इन उद्योगों में रोजगार क्षमता कम है, बल्कि यह है कि पूंजी विनियोग की दर में वृद्धि करके हम इन छोटे उद्योगों को अधिक एवं त्वरित रोजगारप्रद बना सकते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि यदि इन छोटे ग्रामोद्योगों को पूर्ण रूप से बढ़ावा दिया जाय तो बेरोजगारी एव गरीबी कम होगी। इतना ही नही, ऐसे उद्योगों के अन्य लाभ भी परिलक्षित होंगे, जैसे-- शोषण व असमानता आदि। आज के कुटीर उद्योग ही बेरोजगारी को दूर कर सकते हैं।

खादी एवं ग्रामोद्योग त्वरित रोजगार देने में सहायक हैं, जो कि आज

---

1. भवानी शंकर व्यास-- गाँधी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, पृ0 93

की गम्भीर समस्या है। इस क्षेत्र में विभिन्न योजनाओं में पूँजी की भी मंद गति से वृद्धि हुई है तथा रोजगार में काफी सृजन हुआ है। जैसा कि हमें इन आकड़ों द्वारा पता चलता है कि वर्ष 1962 में खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र में 2.33 लाख लोगों को रोजगार दिया गया, जबकि 73–74 में 8.84 लाख लोगो को रोजगार दिया गया। पॉचवी योजना के अन्तिम वर्ष अर्थात 1979–80 में खादी में 11.2 लाख लोगों को रोजगार मिल सका। जबकि छठी योजना के अन्तिम वर्ष यानी 1984–85 मे लक्ष्य 15.4 लाख लोगों को रोजगार प्रदान कराया जा सका और सातवी योजना में 20 लाख लोगों को खादी उद्योग मे रोजगार के अवसर प्रदान कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उत्पादक एव रोजगार क्षमता को दृष्टिगत रखते हुए हम यह कह सकते है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के 48 वर्षों बाद भी कुटीर एवं लघु उद्योगों को नकारा नहीं जा सकता। कुटीर एव गावो के उद्योगों का भारतीय आर्थिक विकास में गरीबी को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इससे करोड़ों ग्रामीणों को कम से कम पूँजी में अधिक से अधिक रोजगार मिलता है। जिससे अधिकाधिक लोगों की आय में वृद्धि होती है और भारत की गरीबी दूर होती है। वर्तमान भारतीय अर्थव्यवस्था में जहां भारी उद्योग की स्थापना हो चुकी है। इनके साथ–साथ कुटीर एव लघु स्तरीय उद्योगों को भी बढ़ावा देना चाहिए। जिससे अधिकाधिक लोगों को रोजगार प्राप्त भी हो सके, और देश का तीव्र गति से विकास हो सके। यदि हम ऐसा कर पाने में असमर्थ रहे तो बेरोजगारी की समस्या के भयंकर परिणाम होंगे और देश प्रगति नहीं कर सकता. क्योंकि यहाँ की आर्थिक व्यवस्था में कृषि क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है, अतः हमारे योजनाकारों को चाहिए कि वे कुटीर एवं ग्रामोद्योग पर अधिक ध्यान दें।

भारतीय आर्थिक व्यवस्था मे कुटीर उद्योगों का स्थान निरन्तर बढ़ता

जा रहा है। महात्मा गॉधी के अनुसार-- "भारत का मोक्ष उसके लघु एवं कुटीर उद्योगों के धन्धों में निहित है।'[1] इसी प्रकार से योजना आयोग के अनुसार-- 'कुटीर एवं लघु उद्योग हमारी आर्थिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं। जिनकी कभी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।''[2]

पिछले कुछ ही वर्षों में कुटीर एवं लघु उद्योगों में क्षेत्र ने देश की आर्थिक व्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। अब इन उद्योगों का उद्देश्य राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करना ही नहीं, अपितु निर्यात व्यापार में योगदान देने हेतु भी ये उद्योग महत्वपूर्ण हैं।जैसा कि पता चलता है कि 'लघु उद्योग क्षेत्र द्वारा किए जान वाले निर्यात का अंश 1975--76 मे 13 प्रतिशत था, 1982--83 मे बढ़कर 24 प्रतिशत हो गया।'[3]

इस प्रकार से निर्यात में लघु एवं कुटीर उद्योगों की भूमिका सराहनीय रही है। लघु क्षेत्र में इनकी संख्या काफी बढ़ती जा रही है। 1983--84 में देश में कुल मिलाकर लगभग 11 लाख 50 हजार लघु उद्योग इकाईयॉं कार्यरत् थीं, इनमें से 6 लाख 69 हजार पंजीकृत तथा शेष 4 लाख 67 हजार अपंजीकृत इकाईयां थी। लघु एवं कुटीर उद्योगों में पिछले वर्षो भी अधिक उत्पादकता हुई है। कुटीर एव लघु उद्योगों मे विगत वर्षों में यद्यपि पूंजी विनियोग की गति धीमी रही, फिर भी उत्पादकता में अच्छी प्रगति रही। 1976--77 में छोटे उद्योगों का उत्पादन 12400 करोड़ रूपये का था, जो कि 77--78 में बढ़कर 14300 करोड़ रू0 हो गया। इस प्रकार पिछले वर्ष की तुलना में 1900 करोड़

---

1. योजना 16 -- 31 मार्च 1985, पृ0 4
2. योजना 16 – 31 मार्च 1985, पृ0 4
3. खादी एवं ग्रमोद्योग पत्रिका, जुलाई, 1985, अंक 10, पृ0 387

रूपये का उत्पादन अधिक हुआ। अर्थात् 15.3 प्रतिशत की उत्पादन में वृद्धि हुई 78--79 में 15790 करोड़ रूपये का उत्पादन हुआ जो अपने ठीक पिछले उत्पादन से 1490 करोड़ रूपये अधिक का था। 79--80 में कुल उत्पादन 21635 करोड़ रूपये का था. जो कि पिछले से भी 5845 करोड़ रूपये का था तथा पिछले वर्ष की तुलना मे 37 प्रतिशत अधिक था। इस प्रकार से 79--80 में कुटीर एवं लघु उद्योगों में असाधारण वृद्धि हुई। छठी योजना में कुटीर एवं लघु उद्योगों की ओर काफी ध्यान दिया गया और इस क्षेत्र के उद्योगो मे विनियोग भी बढ़ाया गया। छठी योजना के प्रथम वर्ष 80--81 में कुटीर एव लघु उद्योगों का कुल उत्पादन 28060 करोड़ रू0 मूल्य का हुआ, जो पिछले वर्ष में 6425 करोड़ रूपये अधिक होता है। अतः छठी योजना में जहा विनियोग में वृद्धि को बढ़ाया गया है वहीं उत्पादन में भी अच्छी प्रगति हुई है। इस प्रगति को देखकर यह कहा जा सकता है कि कुटीर एवं लघु उद्योगों पर ध्यान देने की अधिक आवश्यकता है, जैसा कि गॉधी जी ने भी स्वीकार करते हुए कहा है कि --

"यदि हम छोटे पैमाने पर चलने वाले उद्योगों की मदद करते है तो हम राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि करते हैं। इस विषय मे मेरे मन मे तनिक भी शंका नहीं है।"[1]

इस प्रकार से हमें आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि कुटीर उद्योग जहाँ त्वरित रोजगार प्रदान करने में सहायक है, वहीं दूसरी ओर अधिक उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं, और जिनमें कम पूंजी की आवश्यकता होती है। भारतीय आर्थिक संघर्ष की व्यवस्था में यदि देखा जाय तो भारी उद्योगों को नकारा नहीं जा सकता।

---

1. सेन्ट परसेन्ट स्वदेशी, 1958, पृ0 5

तथापि कुटीर एवं लघु उद्योगों को और अधिक पूँजी विनियोग की आवश्यकता है। ये उद्योग भारी उद्योगों में अपेक्षाकृत लाभकारी होंगे। भारतीय आर्थिक व्यवस्था मे जहाँ कृषि की प्रधानता है। कुटीर उद्योग आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण रहेंगे। आज कुटीर उद्योग ही बेरोजगारी को दूर कर सकते हैं। देश और विदेश के अर्थशास्त्री आज इन उद्योगों पर अपना ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। जिससे भारत की आर्थिक व्यवस्था में कुटीर उद्योगों की आवश्यकता और भी महत्वपूर्ण एवं सार्थक बन जाती है।

यद्यपि वृहद स्तरीय उद्योगों पर अधिक बल दिया जा रहा है। तथापि यह कहना उचित ही होगा, कि भारत कुटीर एव लघु उद्योगों का ही देश है। अतः भारतीयों के यहाँ छोटे पैमाने के उद्योग ही अपेक्षाकृत अधिक सफल हो सकते है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के 38 वर्ष बाद भी कुटीर एवं लघु उद्योगो को नकारा नही जा सकता। महात्मा गाँधी जी के अतिरिक्त पडित जवाहर लाल नेहरू, डा0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी योजना आयोग एवं विभिन्न आयोगों ने भी कुटीर उद्योगों पर बल दिया। डा0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी के अनुसार--

"भारत गाँवों का देश है। अतः सरकार को सन्तुलित अर्थव्यवस्था की दृष्टि से कुटीर तथा लघु उद्योगों के विकास को सर्वाधिक महत्व प्रदान करना चाहिये।-------- अल्प पूँजी में अधिक रोजगार पैदा करने की क्षमता आय व सम्पत्ति के समान वितरण, विकेन्द्रीकरण तथा सन्तुलित विकास, औद्योगिक शान्ति तथा शहरीकरण के दोषों से मुक्ति मानवीय मूल्यों आदि की दृष्टि से ही इन उद्योगों का ही हमारी अर्थव्यवस्था में अद्वितीय महत्व है।"[1]

---

1. भटनागर एवं मित्तल, भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्यायें, पृ0 263--264

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि कुटीर उद्योग भारत के आर्थिक विकास में अपना विशेष महत्व आज भी बनाये हुये हैं। इन उद्योगो को कृषि उद्योग के सहायक उद्योग के रूप में समझा जाना चाहिये। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में इन उद्योगों को बढ़ावा देकर हम अपनी आर्थिक वयवस्था को अधिक मजबूत एवं समृद्ध बना सकते हैं।

कुटीर एवं ग्रामोद्योगों का भारतीय आर्थिक व्यवस्था में गरीबी उन्मूलन हेतु महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इससे करोड़ों ग्रामीणों को कम पूँजी में अधिक रोजगार मिलता है। जिससे अधिक लोगों की आय में वृद्धि होती है। परिणाम स्वरूप गरीबी दूर होती है।

कुटीर उद्योग कम पूँजी मे अधिक उत्पादन सिद्ध होते हैं। जैसा कि पिछले अध्ययन् से पता चलता है। कुटीर एव ग्रामीण उद्योगों द्वारा आय मे तो वृद्धि होती है। इससे आर्थिक समानता लाने में भी सहायता मिलती है। जबकि बड़े उद्योगों में धन का केन्द्रीकरण होता जाता है। भारतीय योजनाओं मे समाजवाद की कल्पना की जाती है। समाजवाद तब तक नहीं लाया जा सकता जब तक गरीब और अमीर की खाई दूर न की जा सके तथा अवसरों में समानता न लाई जा सके। धन के विकेन्द्रीकरण लाने में कुटीर उद्योग सर्वोत्तम भूमिका अदा कर सकते हैं। इनसे सभी की आय में वृद्धि होगी। परिणाम स्वरूप गरीबी कम होती जायेगी।

इस प्रकार के निष्कर्ष से यह पुष्टि होती है कि कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देकर गरीबी की समस्या को दूर किया जा सकता है। अत आधुनिक सन्दर्भ मे कुटीर उद्योगों का महत्व बढ़ता जा रहा है। ये उद्योग भारतीय आर्थिक व्यवस्था की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते है। इन्हें बढ़ावा दिया जाना अति ही आवश्यक है।

कुटीर एवं लघु उद्योग रोजगार एवं उत्पादकता वृद्धि के साथ अपना महत्वपूर्ण स्थान निर्यात व्यापार में भी रखते हैं। अधिक निर्यात करके हम विदेशी पूँजी अर्जित कर सकते हैं। जिससे व्यापार सन्तुलन अपने पक्ष में किया जा सकता है। गणना करके पता चला है कि वर्ष 1979–80, 80–81, 81–82, 82–83 में निर्यात वृद्धि क्रमशः 157.1 करोड़ अर्थात 14.7 प्रतिशत 293.0 करोड़ अर्थात 23.9 प्रतिशत, 166.7 करोड़ अर्थात 11.0 प्रतिशत, 509.0 करोड़ अर्थात 24.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अतः निर्यात व्यापार में प्रतिवर्ष निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। जहाँ तक प्रतिशत वृद्धि का प्रश्न है ? वह भी वर्ष 1981--82 को छोड़कर निरन्तर वृद्धि को दर्शाता है। अतः छोटे पैमाने के उद्योगों को बढ़ावा देकर हम अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकते हैं। और इस प्रकार से देश की गरीबी दूर कर सकते हैं। वर्ष 1977 में इस बात पर जोर दिया गया कि लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाये तथा इसका विस्तार गाँवों की ओर किया जाये। आर्थिक व्यवस्था में इन उद्योगों की विशेष भूमिका की दृष्टि से 504 वस्तुओ के उत्पादन को पूर्णतः लघु क्षेत्र के लिये सुरक्षित किया गया। जबकि वर्तमान में सुरक्षित वस्तुओं की सख्या लगभग 1100 है। ऐसा करके सरकार इन उद्योगों को बढ़ावा देना चाहती है। ताकि इन्हें अधिक प्रभावी और लाभप्रद बनाया जा सके।

खादी उद्योगों में पूँजी की वृद्धि बहुत कम रही है। इसलिये खादी ने रोजगार संरचना को प्रभावित कर बदला नहीं है। जबकि खादी ऐसे ग्रामीणों की जीविका का साधन बन सकती थी। जो वर्षा पर निर्भर (अथवा सूखे से प्रभावित) गांवों में निवास करते है। श्री एल0एल0 चौधरी के अनुसार-- 'गांधी जी चाहते थे कि खादी की क्रियाओ का विशाल सगठन सरकार के नियन्त्रण में स्थापित कर प्रत्येक गॉव तक खादी यूनिक पहुँचा दी जाये।

अर्थात् प्रत्येक गांव में चरखा केन्द्र व बुनाई केन्द्र स्थापित कर खादी का पर्याप्त विस्तार किया जाये।''[1]

अतः गाँधी जी चरखे को एक आवश्यक चीज मानते थे। जो प्रत्येक घर में होने चाहिये। उनकी मान्यता यही रही होगी, कि इससे शान्ति, समृद्धि एवं सद्भावना बढ़ती है। गाँधी जी को खादी बहुत पसन्द थी। इसलिये उन्होने स्वय आजीवन खादी धारण करने का निर्णय लिया--

''खादी के अर्थ को विस्तार देते हुये गाँधी जी ने कपास के बीज बोने से कपड़ा बनाने तक की तमाम क्रियाओं को खादी के कार्य में सम्मिलित कर लिया था।''[2] लेकिन वर्तमान समय में विपणन क्रिया को भी खादी मे सम्मिलत कर लिया गया है। कोई भी व्यक्ति जो खादी विक्रया में संलग्न है, स्वय को खादी कार्य में लगे होने का गौरव अनुभव करता है।

खादी और चरखा गाँधी जी का सत्य तथा अहिसा का प्रतीक है। चरखे को गाँधी जी भौतिक शक्ति के लिये ही नहीं, बल्कि वे इसे मानव मूल्यों की संवृद्धि के लिये भी आवश्यक समझते थे। गाँधी जी ने खादी पहनने का आह्वान किया। जिसके माध्यम से उन्होने स्वतन्त्रता प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। आर्थिक समानता व भौतिक विकास हेतु भी गाँधी जी खादी को आवश्यक समझते थे। इसलिये गाँधी जी कहते थे--

''खादी ऐसा ग्रामोपयोगी उद्योग है, जैसा और कोई उद्योग न तो है, और हो सकता है।''[3]

---

1. योजना 1--15 नवम्बर 1983, पृ0 27
2. वही
3. महात्मा गाँधी– खादी, पृ0 90

खादी की योजना गॉधी जी की अपनी विशेष दृष्टिकोण से बनाई गई योजना कही जा सकती है। वे ग्राम स्वराज्य लाना चाहते थे तथा गॉव को स्वावलम्बी बनाने हेतु खादी उद्योग को आवश्यक समझते थे। इसलिये वे प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रत्येक व्यक्ति को चरखे से सूत कातने की बात कहते थे। वे स्वय हाथ का बना हुआ कपड़ा पहनते थे इसलिये वे हर घर में चरखे को आवश्यक समझते थे। जैसा कि उन्होने स्वयं कहा है--

"अपनी रोटियां हम घर में ही बना लेते है। गॉवों में कहीं होटल तो है नहीं इसी तरह तमाम ग्रामवासियों को अपने लिये खुद ही कपड़ा बना लेना चाहिये।"[1]

खादी उद्योग मे पूॅंजी विनियोग की काफी कमी रही है। अतः यह बड़े खेद की बात है कि स्वतन्त्रता के बाद भी खादी ग्रामोद्योगी क्षेत्र है जहॉं के लिये पूॅंजी विनियोग पर ध्यान नहीं दिया गया। जैसा कि आकड़ों द्वारा हमें पता चलता है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में मात्र 6 करोड़ रू0 इस क्षेत्र में खादी एवं ग्रामोद्योग में व्यय किये गये। जबकि द्वितीय योजना के दौरान 82.4 करोड़ रू0 व्यय किये गये। तृतीय योजना में 92.4 करोड़ रूपये इस क्षेत्र में सार्वजनिक परिव्यय किया गया, अर्थात तृतीय योजना मे पूॅंजी विनियोग द्वितीय योजना की अपेक्षा केवल 10 करोड़ रू0 की वृद्धि की गई, जबकि तृतीय योजना का सार्वजनिक क्षेत्र में कुल परिव्यय द्वितीय योजना के कुल परिव्यय से लगभग दो गुना अधिक था। जैसा कि पिछले अध्याय से पता चलता है खादी एवं ग्रामोद्योग क्षेत्र पर विभिन्न योजनाओं के दौरान जहॉं कुल व्यय सार्वजनिक क्षेत्र में कई गुना बढ़ रहा है, वहॉं इस क्षेत्र के व्यय में तो वृद्धि हुई है, लेकिन वृद्धि की दर कम हो रही है। यदि खादी क्षेत्र पर ध्यान से देखा जाये तो अधिक विनियोग की आवश्यकता बनी हुई है, क्योंकि ये अत्यधिक

रोजगार प्रद एवं उत्पादक है। जैसा कि आगे हम इसका अध्ययन करेगें। अतः हमारे योजनाकारों को इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। खादी एवं ग्रामोद्योग कमीशन के वर्तमान चेयरमैन श्री अ0म0 थामस ने कहा था कि –

"आज अपने शासन के तीन दशकों के बाद भी इन्हें (खादी एवं ग्रामोद्योग) बनाये रखने की आवश्यकता शाश्वत बनी हुई है, क्योंकि हमारी जनसंख्या दिनों दिन बढ़ रही है। पूँजी के साधन कम हैं। दीर्घ और आधुनिक उद्योग जनता को रोजगार प्रदान न करने सम्बन्धी राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल रहे हैं..... उक्त सन्दर्भ में खादी और ग्रामोपयोगी क्षेत्र ने भारतीय आर्थिक संघर्ष की व्यवस्था में एक अति महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में दृढ़ता के साथ प्रतिस्थापित किया है।"[1]

इस प्रकार से जहाँ यह उद्योग भातीय सन्दर्भ में बहुत उपयुक्त होगा। वही इस पर पूंजी विनियोग की मात्रा कम रही। और इन्हें विकास हेतु समुचित बढ़ावा नहीं दिया जा रहा है। जबकि भारतीय सन्दर्भ में जहाँ इसके लिये पर्याप्त कच्चा माल उपलब्ध है। बढ़ावा देना ही चाहिये। इससे संसाधनों का उपयोग एवं रोजगार की भी वृद्धि की जा सकती है।

आजकल खादी की विदेशों में भी निर्यात सम्भावनायें बढ़ रहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि विदेशों में सिन्थेटिक यार्न से बनं पोलिस्टर और टेरीकॉट कपड़ों के प्रति लोगों में अरूचि पैदा हो रही है और ये कपड़े चर्म रोगों का कारण बन रहे हैं। इसलिये लोगों में सूती कपड़ों विशेषकर खादी व हैण्डलूम से बने कपड़ो में विशेष अरूचि

---

1. खादी और ग्रामोद्योग पत्रिका, वार्षिकांक, अक्टूबर 1984, पृ0 7

दिनों दिन बलवती होती जा रही है। अतः निर्यात् संवर्धन की भावनायें भी निरन्तर बढ़ रही है। इसलिये इस ओर हमारे योजना कर्ताओं, निर्माताओं एवं संस्कार का विशेष ध्यान देना आवश्यक है। जिससे कि इस क्षेत्र में लगे लोगों को आसानी से पूँजी सुलभ हो सके, और इस क्षेत्र का उत्पादनएवं लाभ राष्ट्रहित में प्रवाहित हो सके।

खादी के लिये पूंजी कम तथा श्रम शक्ति की प्रचुरता है। आज देश के सामने श्रम शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग करने की तथा पूजी का प्रयोग कम से कम करने की आवश्यकता है। अतः हमें ऐसी योजना की आवश्यकता है जिससे अधिक से अधिक लोगों को रोजगार दिया जा सके, तथा उचित श्रम प्रबन्ध किया जा सके। महावीर प्रसाद ने अपने सम्पादकीय लेख में लिखा है–

"यह केवल विकेन्द्रित आधार पर श्रम साधन योजनाओं और कार्यक्रम के माध्यम से ही सम्भव है। खादी और ग्रामोद्योग क्षेत्र ही वह क्षेत्र है। जिसकी तुलना दूसरे से नहीं की जा सकती और उसे बहुत ही अहम् भूमिका निभानी है। असल में इस शीर्षस्थ योजनाकारों से लेकर औसत खादी कार्यकर्ताओं तक ने स्वीकार किया है।"[1]

खादी और ग्रामोद्योग स्वतन्त्रता संग्राम की अवधि में राष्ट्रभक्ति की भावना भरने के लिये विकसित नई विचारधारा नही हैं, बल्कि ये तो सदियों से हमारी प्राचीन विरासत और प्राचीन परम्पराओं के अभिन्न अंग रहे हैं। स्वयं भारतीय अर्थव्यवस्था इन हस्त शिल्पों पर निर्भर थी। इससे हमारे समाज में श्रम प्रबन्ध मे कोई समस्या नहीं आती थी। क्योंकि हड़ताल एव तालाबन्दी जैसी कोई विकट समस्या भी देश के सामने नहीं थी लेकिन विदेशी

---

1. खादी ग्रामोद्योग पत्रिका, वार्षिकांक, अंक प्रथम अक्टूबर, 1984, पृ0 7

शासन तथा आधुनिकीकरण के कारण इन छोटे उद्योगों की उपेक्षा हुई है। आज से विनाश के कगार पर पहुँच गये हैं। अ0म0 थामस के अनुसार-"गाँधी जी के प्रयासों से कुछ हद तक इनका पुनरूद्धार हुआ और आजादी की लड़ाई की पोशाक बनी। इस वस्त्र को बढ़ावा देने के पीछे भयावह गरीबी की अवस्था में जी रहे हमारे किसानों और गाँवों के गरीब भाइयों की आय में कुछ वृद्धि करने का भी उद्देश्य था।"[1]

खादी लघु उद्योग क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है, तथा ये अधिकाशतः कुटीर उद्योग ही माने जाते हैं। यह उद्योग सबसे बड़ा असंगठित विकेन्द्रित क्षेत्र है। खादी सहित 26 उद्योगों को राष्ट्रीय, स्वायत्तशासी, निकाय खादी और ग्रमोद्योग के मार्गदर्शन में प्रोत्साहन दे रहा है। जो कि देश में खादी और ग्रमोद्योगी कार्यक्रम को बढ़ावा देता है। वर्तमान समय में यह कार्य–

26 राज्य (केन्द्र शासित राज्य सहित) खादी एवं ग्रमोद्योग बोर्ड 1114 रजिस्टर्ड संस्थाओं तथा लगभग 30008 औद्योगिक सहकारिताओं जो लगभग 1.5 लाख गावों मे लागू है।"[2] के माध्यम से किया जा रहा है।

यदि घर-घर में यह खादी उद्योग चरखे के माध्यम स चलाया जाये तो प्रत्येक व्यक्ति इसका स्वामी होता है। इससे अपनी आवश्यकतानुसार व्यक्ति श्रम करता है, तथा वह स्वयं का प्रबन्धक होगा। यदि यह उद्योग बिजली चालित अथवा हथकरघरा से सम्बन्धित है। तब भी अधिकांशतः इस क्षेत्र में 9 या 10 व्यक्ति कार्य करते हैं, तथा श्रम प्रबन्ध में कोई चीज कठिनाई नहीं होती। इस प्रकार खादी जो भारतीय सभ्यता एव

---

1. खादी ग्रमोद्योग पत्रिका, वार्षिकांक, अंक प्रथम अक्टूबर 1984, पृ0 7
2. सेवेन्थ फाइव ईयर प्लान, वाल्यूम 2, प्लानिंग कमीशन, पृ0 104

संस्कृति का प्रतीक है। सादगी के साथ आर्थिक 'प्रगति भी लाती है। अतः इसे बढ़ावा दिया जाना चाहिये। जो भारतीय आर्थिक संघर्ष के अनुरूप एवं उपर्युक्त है। इतना ही नहीं श्रम प्रबन्ध की दृष्टि से खादी उद्योग का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि यह उद्योग पूर्णतः ग्रमीण एवं लघु उद्योग है। जिसमें प्रत्येक घर के लोगों को अधिक रोजगार दिया जा सकता है। इस उद्योग को अभी और सुविधाजनक बनाने की आवश्यकता है।

देशी चरखे के स्थान पर अम्बर चरखा क्रान्तिकारी सिद्ध होगा जिसमें आर्थिक उत्पादन की क्षमता है। जो सुविधाजनक भी है। गांवों मे आजकल देशी चरखे का पतन इसलिये हो रहा है कि इसमें श्रम अधिक तथा उत्पादन कम हो रहा है। अतः श्रमिकों को अधिक कार्य कुशल बनाने हेतु हमें इसमें नई एवं सुधरी हुई तकनीकी का प्रयोग करना चाहिये। ऐसा करने से श्रम प्रबन्ध को अधिक कार्य कुशल एवं आधुनिक बनाया जा सकता है। जो हमारे भारतीय सघर्षो के लिये वरदान सिद्ध होगा।

अतः खादी ग्रमोद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते है, क्योंकि खादी आधुनिक भारतीय अर्थ की अनिवार्यता बन चुकी है। जिसे प्रोत्साहन देना आर्थिक व्यवस्था की प्रगति के लिये शुभकारी होगा।

खादी व ग्रमोद्योग क्षेत्र में किया गया प्रत्येक परिव्यय असमानता दूर करने में सहायक होगा। गॉधी जी स्वराज्य की कल्पना इसी आधार पर करते थे। कि इन उद्योगों को बढ़ावा दिया जा सका। तो हम स्वाबलम्बन् को प्राप्त कर सकते हैं। जैसा कि उन्होने कहा था-- "चरखे का सन्देश उसकी परिधि से कहीं अधिक व्यापक है। उसका सन्देश

सादगी मानव सेवा अहिंसामय, जीवन गरीब और अमीर पूंजी और श्रम, राजा और किसान के बीच अच्छा सम्बन्ध स्थापित करना है।''[1]

इस प्रकार खादी एवं ग्रमोद्योग जितना रोजगार देने में सहायक होगा। उतना ही गरीब पर प्रहार किया जा सकता है। उत्पादन और रोजगार की वृद्धि को देखकर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि गरीबी उन्मूलन हेतु खादी उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। इसे और सक्रिय बनाने की आवश्यकता है। यदि पूँजी विनियोग में इस तरह की वृद्धि की गई, तो उत्पादन रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा। मुकेशचन्द्र शर्मा के अनुसार--''गाँधी जी ने भारतीय गाँवों की आर्थिक निर्भरता के आधार पर खादी एव ग्रमोद्योग के विकास की आवश्यकता पर जोर दिया गया था। यदि इन उद्योगों का विकास उस प्रकार किया जाये, जैसा कि गाँधी जी चाहते थे तो जन समर्थन के भरोसे बेकार या निष्क्रिय ग्रमीण कारीगरो को रोजगार प्रदान किया जा सकता है।''[2]

अतः इस प्रकार के उद्योगों में और पूंजी लगाकर इसका और विकास कर सकते हैं। भारत में कृषि विकास ही तेज आर्थिक विकास की कुंजी है।

---

1. गाँधी जी-- सर्वोदय, पृ0 160
2. मुकेशचन्द्र शर्मा-- खादी ग्रमोद्योग क्षेत्र के लिये नीति समर्थन, खादी ग्रमोद्योग पत्रिका, अक्टूबर 1984, पृ0 31

अध्याय सप्तम् (ब)

आधुनिक हिन्दी कहानियों में भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की वास्तविक सामान्य स्थिति और आर्थिक विकास की सम्भावनाओं के निरूपण की समीक्षा।

"आधुनिक हिन्दी कहानियों में भारतीय जीवन के आर्थिक संघर्ष की वास्तविक सामान्य स्थिति और आर्थिक विकास की सम्भावनाओं के निरूपण की समीक्षा"

आधुनिक हिन्दी कहानियों मे भारतीय जीवन के आर्थिक सघर्ष की वास्तविक सामान्य स्थिति योजनागत आर्थिक विकास गॉव के नवीन शोषक विचौलियो तक ही अटक जाती है। हिमांशु जोशी की कहानी में भूतपूर्व जमींदार "आदमी : जमाने का"[1] बन ग्राम प्रधान बन जाता है। श्रमदान, कन्या पाठशाला, पंचायत घर सहकारी पाठशाला, सहकारी फलोद्यान और सहकारी भैंस आदि विकास आदि के कार्य के प्रदर्शनीय ठाठ ठट जात हैं। वास्तविकता का रहस्योद्‌घाटन कमिश्नर साहब के निरीक्षण में भी नहीं हो पाता है कि भैंस वास्तव में सभापति जी की है। पानी की डिग्गियॉ नकली हैं. और सहकारी फलोद्यान में पौधे नहीं, वास्तव में रातों रात एक दिन के दिखावे के लिये हरी टहनियॉ गाड़ दी गई हैं, और कमिश्नर साहब पंचवर्षीय योजना की सफलता पर अपने भाषण मे भारी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं।

जनता और सरकार दोनों को भरमाये यह "आदमी जमाने का" 15 हजार की ग्रान्ट और 100/--रु.पुरस्कार मार लेता है। स्थितियॉ ऐसी हैं कि विज्ञ लोग मुँह बन्द रखते हैं। स्वागत सम्मान में डूबे अधिकारी को मात्र कागजी कार्यक्रम की पूर्ति अपेक्षित है। योजनायें मात्र पोल हो जाती है। मार्कण्डेय की एक कहानी का नायक बसाबन और रमजान जैसे जनता वर्ग के व्यक्तियों के मन में विकासी "आदर्श कुक्कुट गृह"[2] के लुभावने आर्थिक कार्यक्रम भले स्वर्ण स्वप्न बनकर उदित हों परन्तु अक्षम नौकरशाह अधिकारी

---

1. हिमांशु जोशी की कहानी– कहानी संग्रह 'अन्ततः' में संकलित

2. मार्कण्डेय की कहानी, कहानी सग्रह "भूदान" में संकलित

वर्ग के रहते वह पूर्ण होने वाला नही-- "दोनों पचास मुर्गियो के पालन के साथ महीने भर में ही सात सौ रूपयों का लाभ देखते है।"[1] और वर्ष दो वर्ष में ही यदि पूरे गॉव में यह "आदर्श कुक्कुट" गृह योजना फैलती है तो गॉव का नगरीकरण सम्भव प्रतीत होता है।"[2] कलक्टर के भाषण से भी इन स्वप्नो की पुष्टि हो जाती है। ठाकुर के बैलों की साट के सामने ही "आदर्श कुक्कुट गृह" का प्रपंच खड़ा होता है तो प्रारम्भ में उद्घाटन की व्यवस्था होती है। सलामी, स्वागतम् गेट, झंडी के साथ, बॉस का टट्टर, तार की जाली और दरबे, अर्थात्, दर्शनी कुक्कुट गृह बनाया जाता है। बी0डी0ओ0 की राय है कि दरबे खाली न रहें। अतः रमजान के कई मुर्गे और गॉवो में से अन्य मुर्गे आये। "कार्यवाही को पूरी तौर पर समाप्त करने की गरज से कहीं-कहीं धूल और तिनके जुटाकर दो चार अण्डे भी रख दिये गयें।"[3] "तहसीलदार, डिप्टी और कलक्टर साहब आते है। भाषण होते है। और चलते-चलते दरबे के सारे मुर्गे और अंडे में साहबों के नाम पर साहबों के चपरासी समेटते जाते हैं। क्षण मात्र मे समस्त कृत्रिम ठाट- ढह जाता है परन्तु कथाकार की स्थापना है कि "आदर्श कुक्कुटगृह" विधिवत् स्थापित हो चुका है।[4] स्पष्ट है कि इस आर्थिक विकास सम्पन्नों के लिये वरदान और विपन्नो के लिये अभिशाप हो जाता है।

योजना विकास क्रम मे "रमजान जैसा ही नियति भोग मार्कण्डेय के एक अन्य पात्र भोला को दूरी को प्राप्त होता है। उसके मुर्गे श्रीगणेश में ही चले गये।"[5] प्रथम

---

1. मार्कण्डेय की कहानी, कहानी संग्रह "भूदान" में संकलित पृ0 36
2. वही पृ0 38
3. वही पृ0 39
4. वही पृ0 42
5. मार्कण्डेय की कहानी (दोने की पत्तियॉ)

पंचवर्षीय योजना में गॉव में नहर आई. तो गॉव के शीर्षस्थ प्रतिष्ठित तिवारी के खेत पर आकर काम रूक गया। वोट दे दिलाकर जिताये गये मिनिस्टर की सिफारिश और इन्जीनियर को एक हजार के साथ मुर्रा भैंस का अकोर देकर तिवारी ने अपने खेत से नहर मुड़वा दी और भोला को दूरी के उस एकमात्र सम्पूर्ण खेत से नहर निकलवा दी जिसे पॉच वर्ष में आधे पेट खाकर उसने क्रय किया था और जिसे लेकर उसे तथा उसके बाल बच्चों की जीविका के सपने थे। योजना विकास के परिपेक्ष्य मे भ्रष्टाचार के ऐसे उदाहरण अपवाद नहीं है और भोला को दूरी जैसे कोटि--कोटि दीनहीन जन स्वातन्त्र्योत्तरा विकास रथ चित्रों में पिस गये। उनके पास उत्कोच के लिये धन दौलत तो क्या "दोने की पत्तियाँ" भी नहीं रह गई। उत्तम कोटि की मानवता की आदर्श पाठकों के चित्त पर झलकाकर और न केवल नहर की ठीक--ठीक नापकर खेत सरकार और भू--स्वामियों की इच्छा पर अर्पित करके उनकी मुक्ति होती है। अपितु चोर अथवा खूनी बनकर हिरासत में खपना पड़ता है। यह सत्य है कि युग--युग सूखी धरती माता की पीड़ा और निरन्न मानवता की मर्मवेदना देखते भोला कोइरी का यह बलिदान नगण्य है। परन्तु उसके साथ जो इस त्रासदी के भ्रष्टाचार का अमानवीय षड़यन्त्र जुड़ा है। वह गम्भीर मानवीय अन्वीक्षा की आकांक्षा रखता है। एक ओर सिचन--सुविधाओं के अभाव में मार्कण्डेय की एक कहानी में चित्रित "मधुपुर की सिवान का एक कोना"[1] सिहक रहा है।

परम्परागत सिंचाई पद्धति में कुएँ पर मोढ़ लेकर पुरवाह, छिनवाह और परवाह हतोत्साह है। अन्तस्तल से शत--शत आकांक्षाओं के स्त्रोत सिमटकर नहर अथवा नलकूप के अनागत चित्रों में समा जाते हैं " ये आ जाते है तो बखेड़े से मुक्ति मिल जाती।"[2]

---

1. मार्कण्डेय की एक कहानी। "सहज और शुभ" शीर्षक कहानी--सग्रह मे संकलित।
2. वही पृ0 58

नार, पुर मोट, बरहा, चरसा, जुंआ और बैल आदिं की आदिम दृश्यावलियों के नव विकास में अस्तंगत होने की कल्पना तो हम करते हैं। परन्तु जिन अविकसित जनो के लिये यह विकास–विस्तार योजित है। उनके विनाश की कल्पना प्रजातांत्रिक अनुचिन्तन क्रम को विखण्डित कर देता है। आधुनिक वैज्ञानिक भौतिकवादी सभ्यता की सुख--सुविधाओं की बाढ़ केवल एक वर्ग के लिये है और दूसरा वर्ग क्षुधा–पिपासा में आतुर जीवन की साधारण से साधारण आवश्यकताओं के लिये चिन्तित विवश आदमी जीवन के अडंस में जीता है वह "देश के लोग"[1] की सीमा में है। उसके कपड़े गन्दे है। "वह भूख की पीड़ा से मरणासन्न है और एक घिनौन जीव की भाँति प्रतीत होता है। ऐसे बदबूदार दरिद्र के साथ अखिल जो एक सभ्य नागरिक है और कालेज प्राफेसर है। एक रिक्शे पर कैसे बैठ सकता है? यदि किसी कारणवश बैठ भी सकता है तो घृणा से मुँह फेर लेता है।"[2] और जब वह गरीब व्यक्ति रिक्शे से उतर जाता है तो वह बहुत ही राहत महसूस करता है और अपने सुख संसार में लौट आता है। अमरकान्त की इस रोमाचक कहानी मे वैषम्य का भयावह यथार्थ अत्यन्त तीव्रता से अभिव्यक्त हुआ है।

पुरानी पीढ़ी के अतिरिक्त दूसरी ओर युग धर्मासन पर विराजित, विद्रोह के चरणों में समर्पित नया रक्त है जो कुंठित भी है और कुद्ध भी। इसका प्रभावकर स्तर पर नगरों तक ही सीमित है। गॉव में इसकी प्रगति अत्यन्त मन्द है।[3] विकास के साथ नगर सम्पर्क और नगरीकरण की स्थितियाँ जैसे--जैसे बढ़ रही है वैसे--वैसे गांवों का सामाजिक ढॉचा परिवर्तित होता जाता है।

---

1. "देश के लोग" अमरकान्त की कहानी संग्रह की इसी शीर्षक की अन्तिम कहानी

2. वही

3. नव लेखन विचार विमर्श गोष्ठी : 27–28 मार्च, 1968 (वाराणसी) की प्रस्तावना पुस्तिका।

1947 और सन् 1970 के बीच मूल्यगत संक्रान्ति का परिवर्तन चक्र इतना तीव्र रहा है। कि सेवा, सहयोग, सुधार, विकास विचार, विरोध, प्रस्ताव और समझौता वार्ता जैसे सैकड़ों शब्द टूटकर एकदम अर्थशून्य हो गये। अवश नागरिक सतता अपनी उपहासास्पद स्थिति को ही सत्य मानती जीती रही है। मार्कण्डेय ने "प्रलय और मनुष्य"[1] शीर्षक कहानी में इसी तथ्य को चित्रांकित किया है। गंगा की प्रलयकारी बाढ़ के पानी में मेढ़की, चेल्हवाँ, हेल्सा, घोघी, जोक आदि जलचर अपने मार्मिक प्रतीकों में नये मनुष्य पर व्यग्य करते हैं और युग बोधक नये मूल्यों का विश्लेषण होता चलता है। कुद्ध प्रकृति की चपेट में एक इन्जीनियर स्वय स्वीकार करता है कि किस प्रकार वह तन्त्र के काम को किसी तरह रंग कर दिखा देने वाले ठेकेदारों को पूरा रूपया देता था। किस प्रकार सीमेन्ट की जगह भारी और बड़े-बड़े बाँधो में बालू भरवाकर वह सेवा के पर्वत खड़े कर देता था।

कमलेश्वर की कहानी "राजा निरबंसिया" में इसी आर्थिक मुद्‌दे पर चन्दा बचन सिंह कम्पाउण्डर के फन्दे में फाँसी और वह फँसकर फिसल गई, क्योकि वह कस्बे की आधुनिक नगर बोध की निकटवर्ती पड़ोस की थी। वहाँ तुलसी कुँअर "न केवल अमीन के चंगुल से सुरक्षित निकल आती है वरन् पति को उलटकर ऐसा तड़ाका उत्तर दे देती है जिसमें प्राचीन सामाजिक मूल्य सतीत्व का आक्रोशपूर्ण हुकार भरा होता है। पानू खोलिया ने तुलसी कुँअर के रूप में परम्परित हिन्दू कुलवधू के दर्ज स्फीति पवित्रता बोध और आदर्श नारीत्व को अंकित किया है।

हिमांशु श्रीवास्तव की परबतिया और अमरकान्त की दमयन्ती में प्राचीन सामाजिक मूल्य सुरक्षित है। कथा साहित्य में जहाँ भी ग्राम बोध अपनी ऊर्जा के साथ

उभरा है। वहाँ प्राचीन मूल्यों की अनायास प्रतिष्ठा मिल गई है। पानूखोलिया की कहानी "शीश कटी"[1] में पति--पत्नी की कहानी है। पहले तो पत्नी स्वय ही एक अन्य व्यक्ति अमीन के प्रति आकृष्ट होती है और अपने पति से बराबर आशंकित रहती है। कि इस रहस्य का उद्‌घाटन होने पर उन दोनों की कुशल नहीं। परन्तु बाद में जब जमीन और सिगरेट के कुछ टुकड़ों के कारण पति स्वयं पत्नी तुलसी कुँअर को अमीन के यहाँ प्रेषित करने लगता है। तो उसकी निर्वीयता पर पत्नी को बहुत क्षोभ होता है. और वह उसे क्षुब्ध होकर कहती है– "बता दूँ कौन है तू मेरा ? ......मैं बेशुआ और तू मेरा दलाल।"[2] यह चेतना व्यक्ति की अपने प्रति है। वह सम्पन्न वर्ग का खाद और चारा बन रहा हे. इधर मंगी की छटपटाहट और तड़प शोषित समुदाय के साथ भी गहरी जुड़ जाती है। मंगी अपने बेटे से कहती है- "बड़ा कानून सीख के बैठा तो है। भला बची एक बिस्सा भूमि किसी मजूर–धतूर के पास? सभी तो खेत जोत रहे थे। कोई मार खाकर स्तीफा लिखा गया तो किसी को बहकाकर सादे कागज पर अंगूठे की टीप ले ली, इन लोगों ने। किसी को सौ--दो–सौ देकर टरकया। कहीं रह गया है कुछ? वह तो कहो मुझे जो बज्जर की तरह बैठी हूँ छाती पर......।"[3] मार्कण्डेय की उनकी कई कहानियों में स्वराज्य, कानून, पंचायत और ग्राम विकास योजनायें सब नये ढग से शोषण का साधन प्रतीत होती है। "बातचीत" कहानी का राम कहता है, "कि हर विंधा हमें ही तो पिसना है, दादा। भरेंगे, जरेंगे, अन्न उपजायेंगें पर मजा दूसरे मारेंगे। देखों ने पंचायत बनी थी किसानों के फायदे के लिए सो सरपंच ही हो गये गयादीन ठाकुर। खूब मुट्ठी गरम

---

1. "एक और किरती और" में संकलित

2. "एक किरती और" पृ0 100

3. हंसाजाई अकेला, मार्कण्डेय, पृ0 28

होती है।''[1] परिवेश के दबाव में उभरती हुई यह चेतना "बीच के लोग"[2] तक आते--आते सामाजिक समता और मानवाधिकारों की रक्षा करने का काम अपने हाथ में ले लेती है। सशस्त्र द्वन्द्व शोषित और शोधक के बीच आरम्भ हो गया है। बीच के लोग का फऊदी दादा जो स्थिति को संघर्ष से बचाकर परिवर्तन को रोकने का काम करता आया है, अब "क्रान्तिकारी भनरा चमार" द्वारा उपेक्षित हो गया है। परिवर्तन को रोकने वाली शक्तियाँ अब अनावश्यक प्रतीत होती है। युवक भनरा को अपने जोते हुए खेत पर अपना कब्जा चाहिए कानून उसके हित में है। फाऊदी बुझावन और भक्तिनियाँ बीच बचाव करके हरदयाल ठाकुर की जमींदारी के रूवाब--दबाव को आज भी ढो रही है। किन्तु भनरा विद्रोही हो गया है। वह कहता है कि-- "अच्छा हो कि दुनियाँ को जस की तस बनाये रखने वाले लोग अगर हमारा साथ नहीं दे सकते तो बीच से हट जायें, नहीं तो पहले उन्हीं को हटाना होगा क्योंकि जिस बदलाव के लिए हम रण रोपे हुये हैं, वे उसी को रोके रहना चाहते हैं।''[3] और भनरा गाँव की ओर लौटते बुझावन और फऊदी दादा की ओर देखे बिना अपना हल चलाता रहा। इस कहानी के अध्ययन के दौरान यशपाल की पुस्तक "गाँधीवाद की शव परीक्षा" की प्रतिच्छाया झलकती प्रतीत होती रहीं।

ख्वाजा बदीउज्जमाँ की कहानी "मकबरे का आदमी"[4] में नगरीकरण प्रक्रिया में ग्रामीण युवकों की जो दौड़ शहरों की ओर लगी है उससे गाँव सूने हो रहे हैं। महानगर से आये नायक को लगता है कि "क्या सचमुच दिल्ली में मेरा जी लगता है, मैं सोचने लगता हूँ। शहरी जीवन के पेचीदा उलझाव भरे जाल मुझे घेर लेते हैं। मरघट के इस

---

1. हंसा जाई अकेला -- मार्कण्डेय, पृ0 57

2. बीच के लोग-- मार्कण्डेय, पृ0 38

3. वी, पृ0 61

4. पुल टूटते हुए : बदीउज्जमाँ, पृ0 45

सन्नाटे से महानगर का जीवन फिर भी अच्छा है....।"[1] नायक की अलताफ मामू का ग्रामीण मकान मकबरे जैसा लगता है। वह गाँव छोड़ने के लिए अपनी रफ्तार तेज कर देता है और उसे महसूस होता है- "कि मुर्दों की दुनिया से निकलकर मैं जिन्दों की दुनियां में जा रहा हूँ।"[2] अतः उसके मन में गाँव के प्रति कोई आकर्षण नहीं रह गया।

गाँव और शहर के अन्य कहानी में कुछ ऐसे पात्र भी चित्रित हैं जो शहर से गाँव का और गाँवों का शहर से फासला नापते रहते हैं। इनके माध्यम से ग्रामीण समाज में आये हुए परिवर्तन के विद्रूप का चित्रण हुआ है, रामदरश मिश्र की कहानी "आधुनिक"[3] में गाँव में आये हुए परिवर्तन के बाहरी सतह को उठाकर देखा गया है तो अन्दर वह वैसा ही क्रूर अमानवीय और अन्धविश्वासी है। सामूहिकता की परम्पराबद्धता जीवन प्रणाली का लाभ असामाजिक तत्व उठा रहे हैं और व्यक्ति आज भी नगण्य असहाय हो रहा है। नायक एक ओर देखता है "कि वह सोच रहा था कि सचमुच गाँव कितना बदल गया है। गाँव की दोहरी तिहरी परतें कहीं उसके भीतर उगती जा रहीं थीं। .....अब तो गाँव में मशीनें आ गई हैं, गाँव बहुत बदल गया है। यहाँ की दुकानों पर भी शहर की अनेक चीजें मिलने लगीं हैं, हाईस्कूल भी खुल गया है। सुना है कुछ दूर के गाँव में सरकारी अस्पताल भी खोल दिया गया है, चर्चा है कि यह तीस मील की कच्ची सड़क पक्की होने वाली है, गाँव-गाँव शिक्षा का प्रसार तेजी से हो रहा है...... वह सोचता है कि अब गांव में रहा जा सकता है। हाँ गाँव बहुत बदल गया है।"[4] किन्तु कुछ ही

---

1. पुल टूटते हुए : बदीउज्जमाँ, पृ0 48
2. वही, पृ0 51
3. एक वह : रामदरश मिश्र, पृ0 104
4. वही, पृ0 100-101

क्षणों में उसे पता चल गया है कि यह परिवर्तन केवल बाहरी है। भीतर आज भी गाँव का जीवन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों की सड़ांध से भरा हुआ है। आज भी भूत–प्रेत ओझा उतने ही विश्वसनीय हैं जितने कि पहले थे। व्यक्ति जिस प्रकार शहर में एक पुर्जा मात्र है उसी प्रकार गांव में भी हो रहा है। वह कहता है कि –

"तब यह षड़यन्त्र करके रामाप्रसाद को अपमानित करने का क्या मतलब ? और उस नपुंसक से यह नही हुआ कि सफाई देने के बदले किसी एक को गड़ासे से साफ कर दे।"[1] किन्तु दूसरे ही क्षण पुराना गाँव उसके दिमाक से अलग हो गया और बदला हुआ गाँव शहर जैसा ही हो रहा है। इसका बोध उसे हो गया। "शहर में वर्षो से वह यही तो देख रहा है कि कोई अन्याय या अपमान अब उत्तेजित नहीं कर पाता, एक व्यक्ति की बिसात ही क्या है ? और गाँव में जहाँ इतने लुच्चे, लफंगे एक ओर हों, एक रामाप्रसाद ही क्या कर सकता है।"[2] इस प्रकार नगर और गाँवों में कोई भी मानवों में वह बात नहीं रह गई है जो कि पहल थी। अब हम आगे औद्योगीकरण के विकास की ओर चलते हैं।

औद्योगीकरण का विकास होता गया शहरों में विविध प्रकार के और बड़ी संख्या में कल काराखानों की निर्मिति हो गई। देहातों में रहने वाले लोग रोजगार के निमत्त शहरों की ओर चल पड़े। देहात ओस पड़ गये। अनाज की स्थिति भी बरसात के वे भरोसे की बात हो गई। हीरासिंह की गरीबी की समस्या का चित्रण जैनेन्द्र ने इस प्रकार किया है– "पर धीरे–धीरे अवस्था बिगड़ती गई। आज हीरासिंह को यह समझ में नहीं आता है कि अपनी बीबी, दो बच्चे, खुद और अपनी सुदरियाँ गाय की परवरिश कैसे करे?"[3]

---

1. एक वह : रामदरश मिश्र, पृ0 102
2. वही, पृ0 103
3. जैनेन्द्र कुमार– एक गौ, पृ0 155, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1983

औद्योगीकरण के कारण सूने .पड़े देहातों की वह स्थिति बड़ी ही दयनीय और सोचनीय है। जिसके कारण गरीब और गरीब होकर टूट रहा है।

सामाजिक विषमता का यह कटु फल निकल आया कि जो आर्थिक अभावात्मक स्थिति में रहें उन्हें उभरने की ऊपर उठने की कोई शक्यता नहीं रही। "अपना-अपना भाग्य"[1] इस कहानी में जैनेन्द्र ने इस समस्या का चित्रण किया है- "एक लड़का सिर के बड़े-बड़े बालों को खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर है, नंगे सिर। एक मैली सी कमीज लटकाये है।"[2] जो एक पहाड़ी प्रदेश से नैनीताल भाग आया है। वह भाग भी इसीलिये आया था कि वहाँ कोई काम नहीं था बाप भूखा रहता था और मारता था। माँ भूखी रहती थी और रोती थी। इसलिये वह भाग आया। वह नौकरी के लिये दर-बदर भटकता है, पर नौकरी नहीं मिलती। लेखक और उसके मित्रो ने हामी भर दी थी कि उसके लिये जरूर कोई काम देगें। उसकी मदद वे करना चाहते हैं। लेकिन उनके पास छुट्टे पैसे तक नहीं होते। उच्च वर्ग का यह एक बहाना ही है, काम न करना, मदद न करना, बहाने बनाते रहना यही तो और गरीबों के प्रति केवल हमदर्दी जताना और कुछ नहीं भूख और शांति से आखिर वह बालक- "सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुर कर मर गया।"[3]

आर्थिक विषमता का यह परिणाम है कि भूख और वस्त्र के अभाव में एक पहाड़ी बालक ठिठुर कर मर जाता है। समाज का उच्च वर्ग उसके प्रति कुछ भी उत्तरदायित्व नहीं निभाता। वह सिर्फ ऊपरी-ऊपरी हमदर्दी जताकर अपना काम हो गया ऐसा मानता है परन्तु जैनेन्द्र इस समस्या को इस रूप में चित्रित करते हैं कि परेह रखकर

---

1. जैनेन्द्र कुमार-द्वितीय भाग- "अपना-अपना भाग्य" पृ0 90, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली 1983
2. वही, पृ0 96
3. जैनेन्द्र कुमार-द्वितीय भाग "अपना-अपना भाग्य" पृ0 101, पू0 प्र0 दिल्ली, 1983

सिर्फ हमदर्दी जताकर हम समाज की विषम स्थिति को बदल नही सकेगें। उसके लिये निश्चित कोई कार्यक्रम हमें साकार करना होगा। पहाड़ी परिवार की आर्थिक स्थिति का चित्रण करके उनकी आर्थिक अभावात्मक परिवार के विघटन की समस्या सामाजिक समस्या के रूप में चित्रित की है। जो आर्थिक विषमता के कारण निर्माण हो गई है। इस समस्या के कारण आज समाज अस्वस्थ हो गया है।

अर्थ के अभाव में अपने परिवार को विपदा मे देखकर कोई देशभक्त अपनी देश सेवा को छोड़कर परिवार की रोजी रोटी पाने के लिये नौकरी करने लगता है तो उसके मन मे जो अपरिमित दुख निर्माण होता है वह अवर्णनीय होता है। स्वातन्त्र्य आन्दोलन में जिसने अपनी शिक्षा को तिलांजलि देकर असहयोग आन्दोलन मे भाग लिया और देश सेवा का वृत धारण किया। पैसे के कारण ही उसका त्याग उसे करना पड़ता है। इस प्रकार की एक अलग तथा गम्भीर समस्या का चित्रण जैनेन्द्र ने ''आतिथ्य'' कहानी में किया है। घर की गरीबी देशभक्त को देशकार्य से किस प्रकार विमुख करती है उसका चित्रण, "पिता बीमार है, स्त्री भी ठीक नहीं है, और बच्चे यहां से वहा और वहा से यहां और सब जगह से फिर--फिर कर चौके मे घूम रहे है। चौके में कुछ बना नही है। कौन बताये और कैसे बनाये ?"[1] अतः आर्थिक स्थिति ही मनुष्य के लिये महत्व की होती है जिसके सशक्त होने से ही मनुष्य अपनी मनपसन्द बात कर सकता है, अन्यथा नहीं। अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्रता प्राप्त करने की चाह के लिये हुये कोई युवक अपने मन की मुराद पूरी नहीं कर सकता। जिसका कारण घर की आर्थिक स्थिति है। धन के कारण मनुष्य भोग से ही नहीं बल्कि त्याग से भी वंचित रह जाता है। आर्थिक समस्या का एक पहलू भी इस कहानी में उघाड़ा गया है।

---

1. जैनेन्द्र कुमार--छठा भाग आतिथ्य, पृ0 97, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1981

समाज में आदर्शो के बजाय पैसे को ही ज्यादा मान सम्मान मिल रहा है। "देश सेवा में वह स्वय को भी कुछ नहीं बना पाया। लेकिन पैतीस रूपये की नौकरी में यह आत्मविश्वास निर्माण किया कि वह कुछ हैसियत जरूर रखता है, इन पैंतीसरु.ने ने अच्छा भी किया , खुश भी किया, लोग भी कुछ अपने बनते जा रहे है और अपने को भी, समझता हूँ, बना रहा हूँ।"[1] पैसा होने से मनुष्य बनता है ऐसा मानना, देखना इतना भी मानने को बाध्य करता है कि बिना पैसे के मनुष्य टूट जाता है।

"एक टाईप" कहानी मे सज्जनता के पीछे व्यक्ति मे दुष्कर्मो की बू मिलती है। इसका कारण वह व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत बनाने के लिये रिश्वत खोरी का आश्रय लेता है। रिश्वत लेना सामाजिक दृष्टि से बुरी आदत है। वह व्यक्ति इस आदत को इस कदर अपने जीवन का एक अविभाज्य अंग बनाता है कि वह उसे कोई गैर बात समझता ही नहीं। उस व्यक्ति के आचरण मे सादगी है। धार्मिकता तो फूट-- फूटकर टपक रही है। "शान्ताकारम् भुजगशयन पद्‌मनाभं सुरेशम्"[2] का जाप तो सदा चलता ही रहता है। परन्तु लेखक जब उससे उसके परिवार तथा उसकी स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करता है तब वह यह बात समझ जाता है कि वह जितना जाप करके अपने आपको धार्मिक जता रहा है, इतना वह सदाचारी नही है। वह अपने परिवार की स्थिति का वर्णन करता है--

"अजी पैंतीस रूपये मिलते हैं, बीस रूपये से मेरी नौकरी लगी थी। रिटायर होते वक्त सत्तर तक पहुंच गया।....... दो लड़के हाईस्कूल में पढ़ते है।

---

1. जैनेन्द्र कुमार--छठा भाग आतिथ्य, पृ0 91, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1981
2. जैनेन्द्र कुमार--छठा भाग, एक टाइप, पृ0 31, पूर्वोदय प्रकाशन-- दिल्ली 1981

छोटा प्राइमरी में है। बड़े दो नौकरी से लगे हुये हैं। दो लड़कियां के हाथ पीले कर ही चुका, बाकी दोनों के ब्याह में दो-दो, ढाई-ढाई हजार और लगाना है। वह भी हो जायेगा। लड़कों के लिये दो अलग मकान बनवा दिये है अपना फर्ज इतना ही कर देना है। ......दो साल और रहा तो बीमे की रकम भी पक जायेगी। आठ हजार वह जो जायेगें।"[1]

इस व्यक्ति के कुनबे में 11 व्यक्ति हैं। तनखाह है बीस रूपये इतने बड़े परिवार का खर्चा बिल्कुल कम आय में पूरा करके अनके शादी ब्याह में बड़ी रकम खर्चना तथा उनके लिये अलग मकान बनवा देना। लेखक के लिये अर्तक्य तथा अनबूझ पहेली जैसा ही प्रतीत होता है। लेखक उससे अपनी शका का समाधान करने के हेतु पूँछता है। "आपकी पेंशन पैंतीस रूपये है न ? फिर वह सब आपने कैसे बन्दोबस्त कर लिया ?"[2] और उस व्यक्ति ने बिना हंसे, बिना रूष्ट हुये उत्तर दिया-- "तनख्वाह बीस से ही शुरू हुई थी, लेकिन उसी के भरोसे कौन रहता है, साहब।"[3] उसके इस उत्तर से लेखक हतबुद्धि रह जाता है। वह उससे प्रश्न करता है, "रेल में इतनी आमदनी है ? तो वह व्यक्ति कहता है, "करने वाले के लिये सब जगह रास्ते है। अनुसूझते के लिये क्या कहा जाये ?"[4]

सरकारी मुहकमे में रिश्वतखोरी कितनी सहजता से चलती है, मानो उसमें कोई गलत बात ही उस व्यक्ति को नजर नही आती। वृहद कुनवे को चलाने के लिये तथा अच्छी तरह से बनाये रखने के लिये वह पैसे जिस रास्ते से बटोरता है। वह

---

1. जैनेन्द्र कुमार--छठा भाग, एक टाइप, पृ0 31, पूर्वोदय प्रकाशन-- दिल्ली 1981
2. वही
3. जैनेन्द्र कुमार--छठा भाग-एक टाइप, पृ0 31 पूर्वोदय प्रकाशन-दिल्ली. 1981
4. वही

बुरी बात है। अर्थ लोलुपता मनुष्य को किस क़दर निर्लज्ज बनाती है। इसका यह उदाहरण हमारे सरकारी विभागों में चलने वाले गैर प्रकारों को चित्रित करते हुये लेखक आर्थिक समस्या का चित्रण करता है। जो व्यक्ति, समाज तथा देश के लिये हानिकारक है। इसी तरह के भ्रष्टाचार जैनेन्द्र ने शर्मा के द्वारा "चक्कर सदाचार का" कहानी में बताया है कि ऐसे सोचने वाले लोगों के भ्रम को उपहासात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है, "सदाचार कानून से चलेगा और बनेगा। जैसे दुराचार स्वभाव हो आदमी का। तुम्हारे कन्धे क्यों फालतू है। कि उस बोझ को ढोते हो। बड़ी ताकत है कानून के पास क्यों उसका भरोसा नहीं करतेहो और उसमें दखल देने पहुँचते हो?"[1]

सामाजिक प्रतिष्ठा का वह मानदण्ड माना जाता है। तब व्यक्ति पैसे को जुटाने में लग जाता है और वह अपनी आय के निर्धारित साधन को तोड़-मरोड़ कर अनौसत बात का आश्रय धन जुटाने के लिये करता है तो भ्रष्टाचार का रूप धारण कर लेता है। शर्मा जी का यह कहना- "पर भाई सदाचार के लायक तो मैं हूँ ही नही। सिर्फ तीन सौ रूपये मेरी आय है, सोचने की बात है कि तीन हजार मासिक आय से पहले सदाचार क्या शुरू भी हो सकता है।"[2]

व्यक्ति का वह आय के बढ़ने पर सदाचार का निर्भर होना मानना ही समस्या को अनुस्यत या उद्‌भूत करना है। जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'कुछ उलझन' में अभावात्मक तथा एकाकी रहकर भी उतने पैसे के महत्व को जान लिया है। वह कहता है कि- "श्याम तुम और भी पक्के होकर समझ लो कि पैसा दुनियाँ में निकम्मी चीज

---

1. जैनेन्द्र कुमार--दसवाँ भाग-- "चक्कर सदाचार का" पृ0 155, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली 1985
2. वही पृ0 156

नहीं है।"[1] पैसे के कारण मनुष्य बहुत सारे कार्य करता है बल्कि यह कहा जा सकता है कि पेसे के बिना मनुष्य का कोई काम चल ही नहीं सकता।

सदानन्द व्याकुल इसीलिये है कि किसी ने उस पर मेहरबानी करके पैसा उड़ेला है। वह यह नहीं चाहता कि किसी ने दिया है इसलिये खर्च किया जाये। वैसे पैसा कमाना और रखना आसान बात नहीं है उसने बहुत अभावात्मकता में दिन काटे है। इसीलिये वह कहता है "रूपया बहुत काम आता है। एक यही उस रूपये की- चारितार्थता नहीं है कि वह मुझ पर खर्च हो। मैं उसके योग्य नहीं हूँ। वह भी शायद मेरे योग्य नहीं है। इसीलिये तो तुम देखते हो कि अगर मैं उसकी परवाह नहीं करता तो उसको मेरी कब परवाह है।"[2].

श्याम अर्थ के कारण तंग है, इसीलिये कि उसने यह जाना है कि मनुष्य जीवन पर पैसा इस कदर छाया है, कि उसके बिना तो उसका जीवन चलता नही। यह लेन--देन का व्यवहार मनुष्य को अन्दर से नीरस और निसत्व बना देता है। उसमे स्नेह और अपनत्व कहाँ बचता है ? एक आपाधापी मात्र होती है, "रूपये की बात कृपया न कीजिये। मैं भी उससे तंग हूँ। उसके कमाने से तंग हूँ। उसके खर्च करने से तंग हूँ। कमाने के लिये, खर्चो, खर्च करने के लिये कमाओ। कुछ निरर्थक सा चक्कर है. पर जीवन है ही एक चक्कर। ग्रहण करो, विसर्जन करो। पाओ, खाओ। लो दो और थक जाओं, तो ऑख मीच सो जाओ। जीवन की परिभाषा ही यह है। हम पिता से जीवन

---

1. जैनेन्द्र कुमार--सातवां भाग-- कुछ उलझन-- पृ0 57, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली 1983

2. वही पृ0 57

लेते है, पुत्र को जीवन देते हैं। पिता को हम कुछ नहीं देते, पुत्र हमें कुछ नहीं देता।..... संसार का यही चक्कर है। यहाँ ऋण झूठ उऋणता भी झूठ है।"[1] ऋण-उऋण की बात झूठ है। सच तो यह है कि जीवन का सौदा नगद है इस हाथ ले उस हाथ दे। अर्थ के कारण ही मनुष्य का जीवन बनता बिगड़ता है।

ग्राम जीवन में खेती बाड़ी तथा धन--दौलत के मोह मे मनुष्य एक दूसरे का खून करने पर भी तुल जाता है। सिर्फ अपने कुनबे को अच्छी तरह से बनाये रखने के लिये वह दूसरे की गृहस्थी तथा जीवन को उजाड़ कर देता है। स्वार्थ की यह परिसीमा है कि मनुष्य--मनुष्य से बेरहमी या अमानवीयता से व्यवहार करता है। मनुष्य की स्वार्थांधता कितने हद तक बढ़ जाती है। और जिसने आर्थिक मदद की होती है, उसके प्रति कृतज्ञता या उऋणता का भाव जताने के बजाय वह उसकी हत्या ही किस कृतघ्नता से कर बैठता है। पैसे के लिये पागल बने हुये व्यक्ति की यह हरकत समाज के लिये एक समस्या ही बन जाती है। जैनेन्द्र ने इस समस्या का चित्रण "मौत की कहानी' इस कहानी में किया है। चाचा की हत्या में--

"डालचन्द का नाम और उसका भाग प्रमुख था। पहले उसी ने लाठी मारी थी..... उस क्रूर ने गिरने पर भी कई लाठियाँ मारी थी। वही छोटे चाचा का हत्यारा है..... वह अभी तक इनका कर्जदार है।"[2]

ग्रामीण समाज विभाग में यह समस्या बनी हुई है कि मालदार आदमी

---

1. जैनेन्द्र कुमार--सातवाँ भाग--कुछ उलझन-- पृ0 60, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1983
2. जैनेन्द्र कुमार-सातवाँ भाग, मौत की कहानी, पृष्ठ 77, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1983

अपना रोब जमाने के लिए किस प्रकार अपनी सम्पत्ति का अवलम्ब करता है। धन के कारण ही वह दूसरों पर अपना अमल रखता है इतना ही नहीं जमीन और जायदाद को वह इसीलिए हथियाता है कि समाज में वह अपना अधिकार जताये रहे। चाचा की जिस "डालचन्द" ने हत्या की थी उसका परिचय जैनेन्द्र ने इस प्रकार दिया है, "बात मीठी करता है, पर भीतर छुरी है। पास एक गाँव है. उसका चार आना मालिक है। बड़ा रोब वाला और रसूखवाला आदमी है, पर एक नम्बर का बदमाश है।"[1]

ऐसे लोगों की बदमाशी सामाजिक जीवन में एक गहन तथा गम्भीर समस्या बनी हुई है। जमीन जायदाद के बल पर यह लोग कानून को भी न्याय देने में नाकामयाब बनाते रहे हैं। यह तो और भी गहन समस्या है। न्याय संस्था 'पर' का विश्वास इसके कारण उठता जा रहा है। यह सब मालदार होने का ही नतीजा है-- "पर लाख कोशिश करने पर भी उनमें किसी को भी सजा न मिल सकी, गाँव का गाँव जो विपक्ष में होकर एक बन बैठा है। गवाह नहीं मिल पाते, यह अन्धेर खाता है।"[2] यही समस्या है।

मध्य वर्ग का व्यक्ति तो आज आय-व्यय के हिसाब में दिन--रात अपना माथा लगाये हुए है। उसका जीवन एक दायरे में बन्द है। जिससे बाहर आना उसके लिए नामुमकिन हो गया है। आर्थिक अभाव में उसे दान धर्म तथा मानवता को बनाये रखना भी दुष्वार हो गया है। किसी की मदद न करते बनना तथा दिल में किसी के प्रति रहम हो भी तो जताते न बनना एक आर्थिक समस्या का ही रूप है। जिसका चित्रण जैनेन्द्र जी ने "तो लायें" नामक कहानी में किया है--

---

1. जैनेन्द्र कुमार-- सातवाँ भाग, मौत की कहानी, पृष्ठ--77 पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1983

2. वही, पृष्ठ-- 77

''क्लर्क आदमी हूँ, इससे मेरी गिरस्ती का हाल आप जान ही सकते हैं। हिसाब कसा–बँधा रहता है। घट बढ़ की गुंजाइश तो उसमें से शायद ही निकले। तीस दिन के वेतन में 28 दिन का खर्च। इस तरह दो दिन हिसाब में सदा चढ़े रहते है। इस चौकस हिसाब में ऐसी कहीं सन्धि नहीं है कि दया माया का इसमें से प्रवेश हो सके।''[1]

खाट पर पड़ा हुआ बीमार आदमी इस क्लर्क से दो रूपया माँगता है और दो रोज जीने की उम्मीद रखता है। लेखक उसे वादा करता है कि वह उसे जरूर देगा। लेकिन घर आकर वह उसका बजट देखता है। तो ऐसी कोई उम्मीद नहीं बँधती कि वह उसे दो रूपये देगा। बीमार आदमी दो रूपये के लिए तरसता है और लेखक दो रूपये उसे नहीं दे सकता इसीलिए व्याकुल हो जाता है। बीमार आदमी की निगाह से बचकर उसे पार करके वह जाता है। मानो वह दोषी है। गुनहगार है। पैसे के अभाव के कारण मनुष्य को मनुष्य से आँख बचाकर किसकदर रहना पड़ता है। मनुष्य--मनुष्य के प्रति दया तथा प्रेम भी पैसे के अभाव में नहीं व्यक्त कर सकता। यह मनुष्यता की जान लेवी विडम्बना भी हो जाती है कभी–कभी। जैसे कि-- बीमार आदमी बेहोश हो जाता है। अब वह चन्द पलों का मेहमान है। लोग उसके इई--गिर्द इकट्ठा हुए है। डाक्टर इलाज कर रहा है और उसकी आँखे खुल जाती है। लेखक की ओर वह देखकर कहता है, ''तो लाये? और उसकी आँखे फटी की फटी रह गईं।''[2] अन्तिम सांस भी उसने पैसे के अभाव को महसूस करते ही ली। अर्थ के अभाव के कारण मानो वह मर गया।

---

1. जैनेन्द्र कुमार-- सातवाँ भाग, तो लाये?, पृ0 119, पूर्वोदय प्रकाशन - दिल्ली, 1983

2. वही, पृ0 121

पैसे के अभाव में निम्न वर्ग की स्थिति कितनी दयनीय और असहाय हो गई है। पैसे के सभी मित्र होते हैं, पैसे के सभी नाते होते हैं। पैसा नही होता तो रिश्तेदार भी मुकर जाते हैं। इतना ही नहीं भाई–भाई को नहीं पहचानता। प्रेमाश्रित के यह नाते कितने खोखले होते हैं--

"दो उसके छोटे भाइ हैं। इन्हें उसी ने पाला--पोसा है, ब्याह किया है। उसकी पान की दुकान थी। चलती थी, फिर भी उसमें टोटा आने लगा। पैसा देता रहा तब तक भाई उसके थे और उनकी बीबियाँ भी उसे मानती थीं। भाई दो पैसे लाने लगे और दुकान उठ गई, तो अब उसे यहाँ पटक रखा है। न दवा है न दारू है। ऊपर से ताने और सुनाये जाते है। दो वक्त खाने का भी ठीक नहीं।"[2]

पैसा अब प्राप्त नहीं होता है, इसीलिए उससे भाई तथा भाभी आँख बचाकर रहते हैं। इतना ही नही वे पास भी फटकते नहीं। दो चार का उस पर जो देना आता है, वह उसे घड़ी भी चैन नहीं लेने देता। पैसे के अभाव में वह इतना लाचार एवं विवश हो गया है कि वह मरना चाहता है। पैसा कितना बलवान एव प्राणवान होता है। कि वह मनुष्य को जिलाये रखता हे, वेंसे ही वह मरने को भी बाध्य करता है। अर्थ प्रधान हुई इस समाज रचना में मानो मनुष्य पैसे के बल पर ही जिन्दा है। पैसे के कारण मनुष्य जीवन की हुई यह वाताहत आज की एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई है। कि जब वह लेखक से दो रूपये मांगता है वह कहता है-- "क्या दो रूपये मै उसे दे सकता हूँ? वह कहता है, बड़ी मेहरबानी होगी। दो रोज जी लूँगा।"[2] एक मरीज पैसे

---

1. जैनेन्द्र कुमार-- सातवाँ भाग, तो लाये?, पृ0 118, पूर्वोदय प्रकाश, दिल्ली, 1983

2. वही, पृ0 119

के होने से जीने की उम्मीद रखता है। दो रूपये दो दिन की जिन्दगी बख्शता है। यह पैसे का रोग है। जब पैसा पास होगा आदमी जिन्दा रहेगा। पैसा नही होगा तो वह जीवन से हाथ धो बैठेगा। बड़ी ही दीन स्थिति है।

मृदुला गर्ग की "गुलाब के बगीचे तक" कहानी का "वह एक कम्पनी का जनरल मैनेजर है। उसके दो बच्चे थे बेटी और बेटा। बेटी के बाद बेटे की पैदाइश पर "उसने कहा था –"मै दोनों को खूब पढ़ाऊँगा, जिससे दोनो अपने पैरो पर खड़े हो सके। मुझे न लड़की के लिए दहेज जुटाना है न लड़के के लिए जायदाद।[1] लेकिन पढ़ाई पूरी न करती फिल्म प्रोड्यूसर के मंझले लड़के से प्रेम करने लगती है। और शादी के लिए बाप को पचास हजार रूपये का दहेज जुटाना पड़ा। लड़का भी निकम्मा निकला और पेट्रोल पम्प लगवा देना चाहता है। जिसके लिए और एक लाख रूपये चाहिये। जनरल मैनेजर की बीबी तो महज तड़क--भड़क चाहती है। अपने पति की तकलीफों को वह समझती ही नहीं। अपनी बीबी के चेहरे पर वह पचास वर्ष पहले का चेहरा ढूँढता है जो अब बिल्कुल गायब हो गया था। अन्त मे विवाहित बेटी अपनी छोटी बच्ची के साथ अपने ससुराल से मायके आना चाहती है क्योकि शराबी पति और मायके वाले उसकी जान लेने पर उतारू हैं। तो कहानी का "वह" चारों ओर से अपने को टूटा सा महसूस करता है।

ममता कालिया की कहानी "अनावश्यक" में स्त्री पात्र "मै" अपना आत्म विश्लेषण करके पहचान लेती है कि वह तो "कुछ प्रतिशत जशोदा मैया और कुछ प्रतिशत ललिता पवार बनना है।"[2] आधुनिक जीवन के दिखावे का चित्र इस कहानी में है। जीवन

---

1. मृदुला गर्ग, गुलाब के बगीचे तक– टुकड़ा–टुकड़ा आदमी, पृ0 71
2. ममता कालिया, अनावश्यक, हिन्दी कहानी का मध्यान्तर, स0 रमेश बक्षी, पृ0 155

के यथार्थ और सच्चाइ से कोसों दूर रहने वालों की प्रतिनिधि के रूप में कहानी का ''मैं'' खड़ी है ''मैं' का सोचता है-- ''क्यों नहीं सोचती मैं अपनी गली के बारे में जहाँ भिखारियों से भी ज्यादा विपन्न और बेचारे लोग रहते हैं। क्यों नहीं सोचती मै उन बच्चों के बारे में जो कड़कती ठन्ड में गली में बिठा दिये जाते हैं, क्योंकि उनके घर परवाने नहीं है। क्यों नहीं सोचती मैं कलाम धोबी के बारे मे जिसे अपना धन्धा सिर्फ इसलिए बन्द कर देना पड़ा क्योंकि उसक पास कोयला खरीदने को साठ पैसे नहीं थे। क्यो नही मै सोचती अपनी महरी के बारे में जिसके बाल सीधे करने के लिए एक कंघा तक नहीं। जरूर में असामाजिक होती जा रही हूँ। मुझे अपने भविष्य की पड़ी है। गली जाय भाड़ में. बस नाम कमा लू। पर इन्दिरा गॉधी के सिवा हिन्दुस्तान की कौन औरत नाम कमा लेगी। हिन्दुस्तानी औरत तो आलू प्याज खरीदते, स्वेटर बुनते चवन्नियॉं बचाते नष्ट हो जायेगी। कमरे में चिल्लाता यह बच्चा ये भीतर बाहर सूखते पोतड़े, ये लोगों की मुबारके, सब मुझे लगातार जता रहे हैं, मै भी वही हूँ, मैं भी वहीं हूँ।''[1]

कुसुम अंसल की ''टूटी कुर्सी'' कहानी की कान्ता अपने से अलग हो गई है। कान्ता के चाचा चाहते हैं कि नरेश सारा दहेज लौटा दे। चाचा ने दहेज की झूठी लिस्ट बना दी थी। कान्ता पहचान लेती है कि उसका अपना कोई मूल्य नही है। धन ही सब कुछ है। वह कचहरी में जज से कहना चाहती है-- ''आपके कानून मे मेरे लिये क्या है? दहेज के लिए नरेश ले गया था, दहेज की खातिर चाचा लौटा लाना चाहते हैं और अब नरेश चाचा को उतना दहेज वापस नहीं कर सकता, इसलिए मुझे अपने घर ले जाने को तैयार है।''[2] असल में कान्ता इन दोनों से छुटकारा चाहती है। बल्कि

---

1. ममता कालिया-- अनावश्यक-- हिन्दी कहानी का मध्यान्तर, सं0 रमेश बक्षी, पृ0 156

2. कुसुम अंसल-- टूटी कुर्सी-- (पत्ते बदलते हैं), पृ0 49

वह कह नहीं सकती। उसकी जुबान नहीं खुली। वह मौन होकर कचहरी से बाहर हो गई। समाज में स्त्री की यह दुर्बल हालत है।

इधर शहरों के औद्योगीकरण ने गॉवों को भी कंगाल कर दिया है। निरूपमा सेवती की सन्तुलन कहानी की अनिला और सुधीर मोटर कार खराब हो जाने के कारण एक ऐसे गॉव में सहायतार्थ पहुंचे जहाँ भूख से तड़फते कुछ अस्थिपंजर रूप में मानव रेंग रहे थे। किसी में बोलने और चलने की भी शक्ति नहीं थी। इसी मध्य मे उन्हे ए क स्त्री के पास पन्द्रह मिनट पहले जन्मा एक शिशु पड़ा दिखायी देता है .....बच्चे को इधर--उधर घुमाकर देखा। बच्चा क्या था? मॉस का भी नहीं हड्डियों का लौदा था। -- अनिला ने चाहा, उधर से दृष्टि हटा लें, लेकिन वहाँ चारो ओर से घिरी उस शून्य विरक्ति में शायद उसे सम्मोहन सा लगने लगा था, वह अपनी निगाहें हटा नहीं पा रही थी।'[1]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय जीवन के आर्थिक सघर्ष की स्थिति बहुत ही कठिन रही है। आधुनिक हिन्दी कहानियों में इसका विशेष प्रभाव पड़ा हे। आर्थिक विकास तो हुआ, परन्तु गरीब और गरीब होते गये, तथा पैसे वालों के पास और पैसा बढ़ता गया।

अतः स्वातन्त्र्योत्तर आधुनिक हिन्दी कहानियों में इस आर्थिक सघर्ष की समुचित और समीचीन अभिव्यक्ति हुई है।

****

---

1. निरूपमा सेवती– ''सन्तुलन''-- खामोशी के पीते हुए, पृ0 73

अध्याय अष्ठम्

स्वातन्त्र्योत्तर आधुनिक हिन्दी कहानियों में आर्थिक जीवन के संघर्ष के प्रतिफलन की समीचीनता की सारपूर्ण विवेचना

स्वातन्त्र्योत्तर- आधुनिक हिन्दी कहानियों में आर्थिक जीवन के संघर्ष के प्रतिफलन की समीचीनता की सारपूर्ण विवेचना

स्वातन्त्र्योत्तर आधुनिक हिन्दी कहानियो में आर्थिक जीवन के सघर्ष की ऊष्मा पूरी तरह उभर आई है।

आर्थिक अभाव के कारण संयुक्त परिवार मे विघटन होता है। आय सीमित और खर्च ज्यादा इसके कारण परिवार का चरितार्थ चलाना दुष्प्राप्य काम हो जाता है। जिसके कारण पति--पत्नी. सास--बहू, पिता--पुत्र आदि मे अनबन हो जाती है। संघर्ष बढ़ते जाते है। एक दूसर के प्रति मन कलुषित हो जाता है। परिणाम यह होता है कि सयुक्त परिवार छोटे--छोटे परिवारों में बंट जाता है।

आर्थिक विपन्नता के कारण बच्चों का पालन पोषण, शिक्षा--दीक्षा तथा बीमारियों का इलाज करना भी असम्भव हो जाता है। जिसके कारण माता-पिता दीन तथा असहाय स्थिति में रहकर अपने आपको दोषी महसूस करते है। उपवर हुई लड़कियों का व्याह भी धन के अभाव के कारण वे कर नहीं सकते तथा वे इसके कारण दुःख ही झेलते रहते हैं।

अर्थ के अभाव में जेवर गिरवी रखने पड़ते है. साहूकार से कर्ज लिया जाता है। ब्याज की रकम भरने के लिये खर्चे में काट--छाँट करनी पड़ती है. ज्यादा श्रम करना पड़ता है जिसके कारण शारीरिक और मानसिक तनाव बढ़ते जाते हैं। कभी-कभार साहूकार का कर्जा उधार लिया धन वापस लोटाया नहीं जाता है. तो घर जायदाद को नीलाम करना पड़ता है और जीवन जीने का सहारा ही नष्ट हो जाता है। ऋण के कारण मनुष्य दब जाता है और वह और परवश हो जाता है।

आर्थिक अभाव के कारण मनुष्य चोरी, डकैती तथा वैश्यावृत्ति या को अपनाता है। जो सामाजिक दृष्टि से जघन्य तथा बुरे काम हैं। मानवता के लिये यह कलंक है। लेकिन आर्थिक विपन्नता के कारण मनुष्य का विवेक नष्ट होता है। उसे विधि निषेध का विवेक नहीं रह जाता और वह ऐसे कामों में लग जाता है।

मनुष्य धन के अभाव में जिस प्रकार बुरे कर्मों को अपनाता है उसी प्रकार धन लोलुपता के कारण भी वह जघन्य से जघन्य कार्य करने को उद्दीप्त हो जाता है। जिसके कारण सामाजिक आचार–विचार, सभ्यता तथा रीति–नीति को वह तिलांजलि देता है। आथिक समस्यायें मनुष्य से वह कार्य कराती है जो सामाजिक विघटन अक्सर कर देती हैं और ऐतिहासिकता को भी समेट लेती है। प्रेमचन्द की "कफन" नामक कहानी का एक --एक शब्द ऐतिहासिकता को समेटे हुये है उन्होने लिखा है--

"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढंकने को चीथड़ा भी न मिले उसे मरने पर नया कफन चाहिये।"[1] इस कहानी में मुंशी जी ने कदम--कदम पर प्रत्येक शब्द मे इस प्रकार की ऐतिहासिकता को कूट–कूटकर भर दिया है कि इसका जितना अधिक भी वर्णन किया जाये वह भी कम है। आर्थिक तगी होने पर भी दोनों बाप--बेटे काम न करते। "वे दोनो ही काम चोर थे। माधव तो इतना अधिक कामचोर था कि आधा घंटे काम करता तो घन्टे भर चिलम पीता, इसीलिये उन्हें कहीं मजदूरी नही मिलती थी। घर मे मुट्ठी भर अनाज मौजूद हो तो उनके लिये काम करने की कसम थी।"[2] माधव कामचोर था तो घीसू भी कम कामचोर नहीं था। घीसू एक

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानियॉ-- डा0 नन्ददुलारे बाजपेई, डा0 विजयशकर मल्ल, पृ0 88
2. वही पृ0 83

दिन काम करता तो तीन दिन आराम। -- "विचित्र था इनका जीवन । घर मे मिट्टी के दो चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ो से अपनी नग्नता ढक ......मगर कोई भी गम नहीं।"[1] मुंशी जी ने जहाँ एक ओर ऐतिहासिकता को दर्शाया वहीं दूसरी ओर कामचोर प्रवृत्ति को भी प्रस्तुत किया है। 'गरीब की हाय'[2] नामक कहानी में रामभरोसे ने धन लो-लुपता के कारण जघन्य अपराध किया। जिसका परिणाम, रामभरोसे को भुगतान के रूप मे अपनी पत्नी से हाथ धोना पड़ता है। सही ही कहा गया है। यहाँ मनुष्य जो कर्म करता है उसे यही भुगतना है। जैसा कि रामभरोसे को भुगतना पड़ा। पहला अपराध तो यह कि उस बेचारी विधवा असहाय मूँगा की जमा पूँजी लेकर उसे पूरी वापस न देना। दूसरा अपराध वह जो कि गौहत्या से भी बढ़कर है ब्रम्हहत्या। वह भी, उसी के द्वारे पर भला ऐसे कठोर अपराध के दण्ड से कौन बच सकता है। जीते जी जब वह गरीब मूँगा अपना बदला न ले सकी तो उसने मरकर प्रेत बनकर अपना बदला ले लिया, और उसकी सम्पत्ति रखने वाले रामभरोसे का उस मूँगा ने सर्वनाश कर दिया।

जमींदार, महाजन, सेठ, साहूकार आदि किसानों तथा श्रमिकों का अत्यधिक शोषण करते हैं। जब वह लोग सेठ--साहूकारों से खाद तथा बीज के लिये पैसे लेते है तो वहीं सेठ साहूकार पैसे तो दे देते है परन्तु उन किसानों पर अपने धन को दुगुना--चौगुना हिस्सा वसूल करने के साथ--साथ उन पर अत्यधिक शोषण व अत्याचार करते हैं। जिसका वर्णन प्रेमचन्द ने "बलिदान"[3] व "विध्वस"[4] जैसी कहानियों में किया है।

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानियॉं -- डा० नन्ददुलारे बाजपेई, डा० विजयशंकर मल्ल, पृ० 84
2. मानसरोवर भाग आठ- मुशी प्रेमचन्द, पृ० 16
3. मानसरोवर भाग आठ- मुशी प्रेमचन्द, पृ 63
4. मानसरोवर भाग आठ- मुशी प्रेमचन्द, पृ० 179

कहानी का नायक गिरधर की यही आर्थिक स्थिति का मुशी जी ने बलिदान कहानी में दर्शाया है। गिरधारी के दादा हरखू ने अपने जीवन में कभी दवा नही खाई। वह बीमार जरूर पड़ता, कुँआर मास में मलेरिया से कभी बचता था, लेकिन दस--पॉच दिन में वह बिना दवा खाये ही चंगा हो जाता था। इस वर्ष भी कार्तिक में बीमार पड़ा ओर यह समझकर कि अच्छा हो तो ही जाऊँगा, उसने कुछ परवाह न की। परन्तु अब ज्वर मौत का परवाना लेकर चला था। दवा न आई, उसकी दशा दिनोंदिन बिगड़ती गई। पॉच कहीने कष्ट भोगने के बाद ठीक होली के दिन उसकी मृत्यु हो गयी। हरखू के खेत गॉव वालों की नजर पर चढ़े हुए थे पॉचों बीघा जमीन कुंए के पास खाद--पॉस से लदी हुई मेड़ बॉध से ठीक थी। कोई नजराने की दूनी रकम का दस्तावेज लिखने पर तुला हुआ था लेकिन-- "ओंकार नाथ सबको टालते रहते थे। उनका विचार था कि गिरधारी का हक सबसे ज्यादा है। अगर वह दूसरों से कम भी नजराना दे तो खेत उसी को देने चाहिए ....रूपये कहाँ से लाऊँ।"[1]

"जमींदार ओंकार नाथ कहता है-- यह सच है, लेकिन मै इससे ज्यादा रियायत नहीं कर सकता। गिरधारी-- नहीं सरकार, ऐसा न कहिए। नहीं तो हम बिना मारे मर जायेंगे। आप बड़े होकर कहते हैं मैं तो बैल बधिया बेचकर पचास रूपया कर सकता हूँ। इससे बेशी की हिम्मत नहीं पड़ती।"[2] गिरधारी को गायब हुए छः महीने हो गये। कालिकादीन ने गिरधारी के खेतों से इस्तीफा दे दिया है, क्योकि गिरधारी अभी तक अपने खेतों के चारों तरफ मॅडराया करता है। वह जीते जी अपने खेतों को जोत न सका, जो खेत लोगों की नजरों मे चढ़े हुए थे। उन्ही खेतों को अब कोई नही पूंछता वे बिना

---

1. मानसरोवर भाग आठ-- प्रेमचन्द, पृ0 65

2. वही, पृ0 66

बोये ही पड़े रहते है लोग अब उन खेतों की तरफ जाते हुये भी डरते है। क्योकि– "अन्धेरा होते ही वह मेड़ पर आकर बैठ जाता है, कभी–कभी रात को उधर से उसके रोने की आवाज सुनाई देती है। वह किसी से बोलता नहीं, किसी को छेड़ता नहीं। उसे केवल अपने खेतों को देखकर सन्तोष होता है।"[1] "विध्वंस" कहानी में एक बीरा नाम की गोड़िन रहती थी। वह वृद्ध होने के साथ–साथ विधवा थी, कोई उसका सहारा न था। एक भाड़ का ही सहारा था। बीरा उदयभानु पाण्डेय की जमीन के एक छोटे से कोने मे रहती थी। वह प्रतिदिन सुबह उठकर चारों तरफ से भाड़ झोंकने के लिये सूखी लकड़िया व पत्तियाँ बीनकर लाती, और दोपहर के बाद भाड़ झोंकती और जो कुछ चबैना आदि मिलता, उसी को खाकर पड़ी रहती। उदयभानु भी उससे अपनी जमीन में रहने के बदले अपना चबैना उससे भुनवा लेते और उसे भुनाई में कुछ न देते उसे उस दिन भूखा ही सोना पड़ता। एक दिन तो उदयभानु के चपरासियो ने अति ही कर दी। वे उदयभानु के दाने लाये तो वह डर गई क्योकि--

चैत्र का महीना था संक्रान्ति का पर्व था। आज के दिन नये अन्न का सत्तू खाया और दान किया जाता है ...... घड़ी दो घड़ी और मिल जाते तो एक अठवारे के खाने भर के अनाज और हाथ आ जाता। दैव से इतना भी न देखा गया, इन यमदूतों को भेज दिया। अब पहर रात तक सेंतमेंत में भाड़ में जलना पड़ेगा; .... और सोचने लगी कैसी विपत्ति है। पंडित जी कौन मेरी रोटियां चला देते है, कौन मेरे आसूँ पोंछ देते हैं। अपना रक्त जलाती हूँ। तब कहीं दाना किमलता है। लेकिन जब देखो खोपड़ी पर सवार रहते हैं, इसीलिये न कि उनकी चार अंगुल धरती से मेरा निस्तार हो

---

1. मानसरोवर भाग आठ– प्रेमचन्द, पृ0 71

रहा है।"[1] उदयभानु ने भाड़ खुदवा डाला, और पत्तियों के ढ़ेर में आग लगा दी। भुनगी लंकादहन जैसा दृश्य पत्थर की प्रतिमा की तरह खड़ी देखती रही फिर आग में कूद पड़ी और भस्म हो गई। मनुष्य अपमान और अत्याचार जब सहन नहीं कर पाता तो अपना ही विध्वंस कर लेता है।

कितना विकृत और भयानक दृश्य है। अपना पैसा और हक वसूल करने के लिए मनुष्य गरीबों पर कितना भयानक शोषण करता है, और उसे मजबूरन अपने को मृत्यु के हवाले करना पड़ता है। मेहरून्निसा परवेज की कहानी "एक सैलाब"[2] में नीलू अपने पति की बीमारी में तीन बच्चों की जिम्मेदारी और आर्थिक कठिनाई के कारण इतनी थक गई है कि उसने अपने पति को नीद की गोलियां देकर हमेशा के लिए सुला दिया है।

पहली पंचवर्षीय योजना में कुछ उपलब्धियाँ हुई। डा0 कृष्ण बिहारी मिश्र का कथन है "पहली योजना के परिणाम उत्साहवर्धक रहे। अन्न उत्पादन में वृद्धि हुई। मूल्यों का सूचकांक ....योजना मानवीय साधनों की अपेक्षा विदेशी पूँजी पर ही विशेष निर्भर थी और उसमें देश के साधनों का भली--भाँति अनुमान नहीं किया गया था।"[3] योजनाओं में पूँजी और मशीन पर अधिक जोर दिया गया, किन्तु जनशक्ति तथा देश की आर्थिक वस्तु स्थिति की गम्भीरता पर कम ध्यान दिया गया।

एक निराशा, वेदना और अनकहीं व्यथा उसके परिवार के जीवन पर

---

1. मानसरोवर, भाग आठ– प्रेमचन्द, पृ0 180
2. आदम और हब्वा : मेहरून्निसा परवेज, पृ0 76
3. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य : डा0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 316

छा गई है। संश्वन्ध "काठ" होकर रह गये हैं। आर्थिक अभाव में स्त्री–पुरूष एक दूसरे को मूक शिकायतों भरी नजरों से देखते हैं। यह स्थिति मुक्तिबोध की कहानी "काठ का सपना" में अभिव्यक्त हुई है। आज की स्थिति पिटा हुआ बुद्धिजीवी इस स्थिति का सामना करता है देखिए–

"लेकिन उन दोनों में न स्वीकार है न अस्वीकार। सिर्फ एक सन्देह है, यह सन्देश आधार है कि इस निष्क्रियता में एक अलगाव है- एक भीतरी अलगाव है। अलगाव में विरोध है, विरोध में आलोचना है, आलोचना में करूणा है। आलोचना पूर्णतः स्वीकारणीय है, जिसे इस पुरूष ने कभी पूरा नहीं किया। वह पूरा नही कर सकता।"[1]

"इसे न कर पाने" में व्यक्ति की निष्क्रियता या निठल्लापन नहीं है वरन अमानवीय परिवेश और आर्थिक संस्कृति की क्रूरता का अस्वीकार है, विरोध की पीड़ा, मनुष्यता का संघर्ष है और संघर्ष की पीड़ा है। अपनी पत्नी को फटेहाल देखकर वह करुणा से भर उठा है और उसके विरोध को अनजाना सम्मान देने लगा है--

"उसका हृदय एक अनजानी गूढ़ करूणा की सूचना से भर उठा। ......हॉं उसका पेट, उसकी त्वचा में तो घरेलू बास थी। उसने उसे अपनी बाहों में भर लिया और वह मन ही मन उस पूरी गरम चिलचिलाती हुई पृथ्वी को याद करने लगा जिस पर वह बेसहारा मारा–मारा फिरता है। क्या यह पृथ्वी उतनी ही दुखी रही है जितना कि वह स्वयं है।"[2] दोनों स्त्री–पुरूष आर्थिक कठिनाईयों के जल–विप्लव में काठ की तरह बहते जाते हैं। पुरूष कभी आर्थिक आवश्यकतायें पूरी नहीं कर पाता।

---

1. काठ का सपना : मुक्तिबोध, पृ0 53
2. वही

अनेक कहानियों में ग्रामों के अंचल में बसे अनुसूचित और आदिम, कबीलों कंजर भील डोम और बन्जारों आदि का जीवन भी चित्रित हुआ है। इनके जीवन में औद्योगिक सभ्यता का प्रवेश अभी लगभग नहीं हुआ है। किन्तु इन्हें यह बोध है कि वे भी मनुष्य हैं और मनुष्यता के अधिकार से वंचित हैं। इस सन्दर्भ में शिवप्रसाद सिंह की कहानी "इन्हें भी इन्तजार है"[1] और "धारा"[2] तथा श्याम परमार की कहानी "जीप की दो गली नजर"[3] राजेन्द्र अवस्थी की "लाल झण्डा' और लमसेना आदि अनेक कहानियाँ उल्लेखनीय है।

स्वतन्त्रता के बाद मिश्रित अर्थ प्रणाली और राष्ट्रीय स्तर पर हुए नियोजन से समाज के आर्थिक जीवन में जबरदस्त परिवर्तन हुआ। सामाजिक व्यवहार सामाजिक आदान–प्रदान और सम्बन्धों की अपेक्षाओं में भी बदलाव आया। इस परिवर्तन में आर्थिक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जैनेन्द्र ने कहा था--

"जीवन मूल्य तेजी से आर्थिक हो रहे है। उस वेग में जान पड़ता है कि परिवार और सम्मिलित परिवार का रूप छोटा हो जाने को बाध्य है। मालूम होता है कि यदि आर्थिक सभ्यता का ही दौर रहा तो परिणाम घटित हुए बिना नहीं रहेगा।"[4] परिणाम घटित हुआ है। प्रतिस्पर्धा मूलक अर्थव्यवस्था में पैसा और पैसे के प्रतीक ऊँचा पद और प्रतिष्ठा मुख्य हो गई है। "नये नैतिक साधनों का सहारा लेकर सुधीर शुक्ला रेस में आगे निकल जाना चाहता है। ......और वही क्यों। बम्बई का सारा माहौल इसी तरह अभिशप्त है। एक झूठी तनावों से भरी जिन्दगी जीने के लिए जहाँ साजिशों,

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ: शिवप्रसाद सिंह, पृ0 111
2. वही, पृ0 92
3. सचेतन कहानी रचना और विचार : डा0 महीप सिंह, पृ0 200
4. प्रश्न और प्रश्न : जैनेन्द्र, पृ0 173

फरेबों और सच्चे, झूठे षड़यन्त्रों के बीच एक-दूसरे को धकेलते, रौंदते, न देखते नकारते लोगों की अन्तहीन रेस चल रही है।"[1]

मृदुला गर्ग की कहानी "दुनियॉ का कायदा" भी प्रस्तुत है। जिसमें दो तस्वीरें है। पहली परम्परावादी सास की जो बहू की सद्य मृत्यु पर मातम कर रही है। रोते-रोते उसे बयालीस साल के विधुर पुत्र की डा0 लड़की से शादी में दहज और बहू की कमाई का पुनर्विवाह शीघ्रातिशीघ्र करना चाहती है। दूसरी तस्वीर है आधुनिक पति की जिसका मेहता नाम के व्यक्ति से काम अटका पड़ा है और यह काम पूरा करवाने का काम सुन्दर युवा शिक्षित पत्नी को पति ने सौंप दिया है।

शेखर जोशी की कहानी "समर्पण" में पहाड़ी जीवन में आने वाले परिवर्तन को गति नहीं मिलती तो उसका परिणाम अवरोध है। पहाड़ी जीवन के सन्दर्भों के युवा कथाकार अकुलेश परिहार ने अपने एक पत्र में शिकायत की थी कि "पहाड़ों पर आने वाले सैलानियों की पहाड़ों पर प्रकृति के सौन्दर्य के बीच मानव की रुग्ण आत्मा दिखाई नहीं देती।"[2] अपनी कहानी "उजास"[3] और "आखिरी बस"[4] में अकुलेश ने इसी रूग्ण आत्मा को चित्रित किया है। जो प्रकृति से संघर्ष कर रही है। अस्तित्व के लिए नही. केवल जीवित रहने के लिए; हरिदत्त भट्ट शैलेश की कहानी "एक नाम एक विश्वास"[5] मनोहर श्याम जोशी की "गुड़िया"[6] हिमांशु जोशी की "अभाव"[7] कहानी भी पहाड़ी

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि : डा0 रघुवीर सिन्हा, पृ0 95
2. अलकनन्दा : नवम्बर-दिसम्बर, 1974, पृ0 101
3. वही, पृ0 222
4. संचेतना : सं0 डा0 महीप सिंह, डा0 हरदयाल, पृ0 60
5. अलकनन्दा : अंक नवम्बर-दिसम्बर, 1974, पृ0 164
6. एक दुर्लभ व्यक्तित्व : मनोहर श्याम जोशी, पृ0 96
7. अन्ततः हिमांशु जोशी, पृ0 51

जीवन की कठिनाईयों और विषमताओं को रेखांकित करती हे।

ग्रामोद्योग तथा सहकारिता आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों का आन्दोलन है। समानता और लोकतान्त्रिक निष्ठा के साथ जब व्यक्ति स्वेच्छा से मिलकर किसी आर्थिक हित की पूर्ति के लिए संगठित होकर कार्य करते हैं तो इसे सहकारी कार्य कहा जाता हे। कालबर्ट ने भी यही निष्कर्ष निकाला कि सहकारिता में व्यक्ति मानव के रूप में समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए स्वेच्छा से सहयोग करते हैं।

"भारत के सन्दर्भ में समाजवाद की मंजिल प्राप्त करने के लिए कृषि, सिंचाई, लघु उद्योग परियोजना, कुटीर तथा ग्रामो के विद्युतीकरण आवास आदि अनेक क्षेत्र में सहकारिता के महत्व की योजना आयोग स्वीकार करता है। भारत में तमाम प्रयत्नों के बाद 1968–69 तक 1596 सहकारी संसाधन इकाईया संगठित हो चुकी थीं। इनमें 79 सहकारी चीनी 236 कपास इकाईयां व संशाधन इकाईयां 188 तेल मिले तथा 38 फल तथा सब्जी संसाधन, 26 सूत मिल, 784 धन संसाधन इकाईयां है। 1971–72 में 13156 सहकारी उपभोक्ता सहकारी समितिया 365 केन्द्रीय उपभोक्ता भण्डार, 14 उपभोक्ता समितियाँ के राज्यसंघ तथा राष्ट्रीय उपभोक्ता संघ थे।"[1]

विपात्र का बुद्धिजीवी भ्रष्टाचार, नौकरशाही और अवसरवादी आर्थिक व्यवस्था के बीच अपने 'स्व' से साक्षात्कार करता है तो पाता है कि "एक गमगीन सूनापन दिल में घिर रहा था। दिमाग में अंधेरे के पंख भन्ना रहे थे। भयानक व्यर्थता का मान घुटनों में दर्द और दिल में किलोर पैदा करता था।"[2] उसकी इस मानसिक व्यथा का

---

1. भारतीय अर्थव्यवस्था और उसका विकाश : श्रीकान्त मिश्र, पृ0 388
2. काठ का सपना : मुक्तिबोध, पृ0 156

कारण है उसकी आर्थिक परिस्थितियाँ – "धुतकारना आसान है। मेरी भी यह पन्द्रहवीं नौकरी है लेकिन पेट पालना बहुत मुश्किल है। मेरे घर में सारे दुर्भाग्य मौजूद है– लम्बे–लम्बे रोग, भारी कर्जा कलह और मानसिक अशान्ति, ये बीसियों साल से घर किये बैठे है उन्होने मुझे ही चुना है। बाल–बच्चों को सड़क पर फेंककर भले ही कुछ कर जाऊँ। लेकिन मैं इतना कठोर नहीं हो पाता, कोई भी नहीं हो सकता।"[1] किन्तु "विवशता है।" हमें अपने वर्ग" में रहने का मोह है, निचले वर्ग में जाने से डर लगता है। लेकिन क्रमशः हमारी स्थिति गिरत–गिरते उन जैसी ही होती जाती है तो वहां संघर्ष ही क्यों न पहुँच जाये। लेकिन वहां भी मुक्ति नहीं है।"[2] श्रवण कुमार की कहानियों में गरीबी का बहुत ही डरावना रूप उभरता है और इनकी अनेक कहानियों में मध्यवर्गीय सरकारी अफसर के जीवन के यथार्थ की तल्खी को बहुत ही तीखी अभिव्यक्ति मिली है। "सलाख पर घूमता हुआ आदमी" में उस मध्यवर्गीय सरकारी अफसर की दफ्तर से घर गृहस्थी तक की यात्रा है। जिसका वेतन 15 दिन पश्चात् ही चुक जाता है। आवश्यक –आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं हो पाती। कहानी के नायक की पत्नी कहती है– "क्या इसी आजादी की दुहाई देते थे तुम ?"[3] यह प्रश्न किसी–किसी एक व्यक्ति या वर्ग का नहीं है वरन् किसी न किसी रूप में सामाजिक जीवन के यथार्थ से जुड़ा है और आड़े तिरछे राजनैतिक परिवेश पर छाया हुआ है। आजादी मिली तो एक ईमानदार परिश्रमी और दृढ़ निश्चयी, कुशल बुद्धिमान व्यक्ति अपने परिवेश में सब जगह झूठा और सस्ता हो गया है। इसी कहानी का एक पात्र कहता है–

"इसे आम आदमी का बजट कहा गया है। यानी सब चीजों के दाम

---

1. काठ का सपना : मुक्तिबोध, पृ0 157
2. वही पृ0 158
3. जहर : श्रवण कुमार पृ0 34

बढेगें, आम आदमी का दाम कम होता जायेगा। अब यार सबसे सस्ती चीज हमारे देश में क्या है ?"[1] ऐसी राजनैतिक व्यवस्था से जो आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था तथा जीवन मूल्य बनते हैं।

आज की दुनिया कुल मिलाकर तीव्रता से परिवर्तित होती हुई दुनिया है और यह परिवर्तन मानव जीवन की सभी दिशाओं में आ रहा है। सामाजिक दृष्टि से देखें तो भारत की स्वतन्त्रता के बाद से होने वाले सबसे अधिक सारभूत और उल्लेखनीय परिवर्तनों में से एक है नारी समाज की अपेक्षित मुक्ति, घरों की चार दीवारियों से निकलकर उसका बाहरी दुनिया की गतिविधि में शामिल होना।

लगभग पचास वर्षो से भारत में जो परिवर्तन हुये उनसे यहॉं का पूरा जन–जीवन प्राभावित हुआ है। विशेषतः स्वतन्त्रता के बाद की बदली हुई सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं की शिक्षा और रोजगार के अवसरों में काफी वृद्धि हुई है। किन्तु स्त्रियों की मानसिकता उस स्थिति में अधिक जटिल एवं अन्तर्विरोधो के टकरावों में फंसी है जहां वह घर की दहलीज लॉघकर उच्च शिक्षा पा चुकी है और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है। घर में उसे दयनीय, सहनशील, त्याग और तपस्या की मूर्ति बनना पड़ता है। फिर भी घर उसकी स्थिति पति तथा पिता से नीची ही रहती है। यदि ऊँचा महत्व पा भी लेती है तो संस्कारों और संक्रान्त मनः--स्थितियों द्वन्द्वों समाज तथा पारिवारिक जीवन में आये परिवर्तनों के विभिन्न रंगों को झेलना पड़ता है। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र तथा आर्थिक रूप से परतन्त्र नारी की मानसिकता में विशिष्ट अन्तर पाया जाता है। आर्थिक रूप से परतन्त्र नारी की स्थिति में परिवर्तन तो दिखाई पड़ता है किन्तु स्थिति में कोई विशेष सुधार

---

1. जहर : श्रवण कुमार पृ0 34

दिखाई नहीं देता। यह धारणा स्थापित हो चुकी है कि आज की भौतिकवादी दुनिया में न्याय, प्रतिष्ठा पद वही प्राप्त कर सकता है जिसके पास आर्थिक साधन पर्याप्त है। नेहरु जी ने भी कहा था कि आथिक स्वतन्त्रता के बिना स्वतन्त्रता कुछ अर्थ नहीं रखती। अतः आर्थिक रूप से परतन्त्र नारी के मूल्य विश्वास आज भी लगभग वही है जो स्वतन्त्रता के पूर्व थे। इनमें कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं देता। ऐसी नारियाँ निपट निरक्षर भी है और शिक्षित भी। अशिक्षित तो शायद अधिकार पा भी लेती है किन्तु शिक्षित स्त्रियाँ अधिक घुटन और मानसिक द्वन्द्वों में जी रही है। स्त्रियाँ पत्नी के रूप में सब सहती है। जैनेन्द्र की कहानी ''पत्नी''[1] में मध्यवर्गीय और घुटन का मुँह बोलता चित्र है लगता है कि पुरूष संस्कृति द्वारा स्त्री को सहनशीलता, पवित्रता, सुहागिन और न जाने क्या--क्या सिर्फ इसलिये ही बनाया गया है कि उसका मनमाना शोषण, अपमान और उस पर निर्विरोध अत्याचार किया जा सके, किन्तु पत्नी का जीवन मूल्य पति की सेवा और उसकी इच्छा में प्रसन्न रहना ही बना रहे। इसी प्रकार अज्ञेय की कहानी ''रोज''[2] में मध्यवर्गीय स्त्री की परिवार में ''मशीन'' जेसी स्थिति का चित्रण हुआ है इस कहानी के लिये पहाड़ी लिखते है– ''कि ''रोज'' मध्यवर्गीय रमणी का यथार्थ चित्र है। इसमे भारतीय कुटुम्ब प्रथा की गहरी त्रुटि का कलात्मक विश्लेषण है।''[3] एक ही घर में एक ही वातावरण में रोज एक ही तरह का दो एक लोगों के साथ जीवन जीते--जीते मालती भावशून्य, संवेदना शून्य हंसी--खुशी, सुख--दुख की अनुभूति से पूर्णतः निरपेक्ष हो गई है।

निम्न मध्यवर्ग में पत्नी की कोई प्रतिष्ठा या सम्मान एक इकाई के रूप में नहीं होता तो फिर उसके परिवार के किसी व्यक्ति का सम्मान कैसे संभव हो सकता

---

1. प्रतिनिधि कहानियाँ : सं0 पहाड़ी पृ0 190
2. वही पृ0 245
3. वही पृ0 72

है। परम्परा है कि लड़की के पिता पक्ष के लोग लड़की को देते है, लेने के अधिकारी नहीं होते। सामाजिक दृष्टि से लड़की से कुछ भी लेना बुरा समझा जाता है। नित्यानन्द की कहानी "दीदी" की जया छोटे भाई को मुसीबत में बीस रूपये नहीं भेज सकती। उसका पति देवेश्वर कहता है कि "जया तुम छोटी बच्ची नहीं हो जो तुम्हे बार--बार समझाऊँ लेकिन बहिन से रूपये मॉगने वाला मैने तुम्हारा ही भाई देखा है। भेजूँ क्यों ? वह मुझे कमाकर दे गया है ? या तू कमाकर दे रही है।" जया घुटकर रह जाती है भावना को मार नहीं पाती तो पति से पूछे बिना ही बीस रूपये भाई को भेज देती है किन्तु पति के सामने एक अपराधिन की तरह दबी घुटी रहती है। उससे क्षमा मॉगती हुई कहती है– "तुम मुझे क्षमा कर दोगे न ? ....और कभी मदन से भेंट हो तो कह देना-- जिस दिन तुम्हें कहारों ने मेरी पालकी से खीचा था, उसी दिन दीदी मर गई थी. मै मॉ बन चुकी थी। इस समाज में एक मॉ, भाई की कोई मदद नहीं कर सकती।"[1]

इस प्रकार आर्थिक परतन्त्रता में जकड़ी नारी का कोई व्यक्तित्व नहीं है। बेटी है, बहन है, पत्नी है, मॉ है, किन्तु मानवी नहीं है। सेवा, त्याग, दमन, पीड़ा और शोषण मे करूणा जीवन जीना ही उसकी नियति है। इच्छा भावना, मानवीयता और महत्वाकांक्षा को जीने का उसे कोई अधिकार नहीं है। ग्रमीण समाज में तो यदि स्त्री विधवा या परित्यक्ता है तो उसके नारीत्व के साथ चिपकी हुई खानदानी मर्यादा की प्रतिष्ठा है। मरे हुये पति अथवा किसी दूसरी स्त्री के साथ घर बसा लेने वाले पति की सुहागिन पत्नी मर्यादा निभाती रहे यही उसकी मर्यादा है। ऐसे समाज तथा संस्कारो में बनी नारी की मानसिकता ही आत्मपीड़न में सुख पाने वाली हो गई है। फिर भी पति को अस्वीकार

---

1. आसपास जीते हुये : नित्यानन्द पृ9 16,19

नहीं करती। वर उसको वधू माने या न माने, किन्तु कुल वधू का धर्म उसके साथ चिपका रहता है। गरीबी समाज में बराबर टिकी रही है। इसी पर सूदखोरी से बनी आर्थिक समस्या को जैनेन्द्र ने चित्रित किया है। गरीबी के कारण पुत्र अपनी माँ के लिये दवा दारू का इन्तजाम नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, उसकी मृत्यु के पश्चात् क्रिया--कर्म तक नहीं कर सकता। और समाज से मुँह छुपाकर वह घर से भाग जाता है। पैसे के अभाव के कारण मनुष्य घर से समाज से भाग जाता है। गरीबी की इस समस्या को जैनेन्द्र ने "घुँघरू" इस कहानी में चित्रित किया है। माँ की मृत्यु के बाद दीनानाथ उसे कफन नहीं ला सकता, "उनका क्रिया--कर्म सुना है पास--पड़ोसियो ने किया। मरते वक्त की माँ की निगाह मुझे हर वक्त चुभती रहती है। उसमें अमित दैन्य, अमित याचना भरी थी, और मैं दो पैसे की उनकी दवा के लिये बन्दोबस्त नही कर सका था।"[1] क्रियाकर्म करने की बजाय, समाज में मुँह छुपाने के हेतु कहीं दूर भाग जाता है। मनुष्य को इतना कठोर बनाने वाली जो स्थिति बाध्य कर देती है उसका ही नाम गरीबी है।

मनुष्य को बज्र से भी सख्त कराने वाली स्थिति गरीबी समाज के लिये एक शाप बनकर रह गई है। जिसके कारण मनुष्य का स्वास्थ्य, मानसिक स्थिति बिगड़ती है और वह धीरे--धीरे गल जाता है, और समाज तथा इस संसार में गया बीता हो जाता है। गरीबी के कारण वह उद्दीप्त हो जाता है और बुरे से बुरे कार्यो को भी करने लगता है। जिसके कारण वह समाज का ही नहीं वह अपना भी नुकसान कर लेता है।

समाज में आदर्शो के बजाय पैसे को ही ज्यादा मान--सम्मान मिल रहा है। यह आज की एक बड़ी गहन समस्या है। सेवाव्रत से काम करने वाला देशभक्त कहता

---

1. जैनेन्द्र कुमार -- चतुर्थ भाग, घुंघरू, पृ0 38, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली--1982

है," देशसेवा में वह स्वयं को भी कुछ नहीं बना पाया। लेकिन पैतीस रूपये की नौकरी में यह आत्मविश्वास निर्माण किया कि वह कुछ हैसियत जरूर रखता है. इन पैंतीस ने अच्छा भी किया, खुश भी किया, लोग भी कुछ अपने बनते जा रहे है और अपने को भी समझता हूँ, बना रहा हूँ।'[1] पैसा होने से मनुष्य बनता है ऐसा मानना, देखना इतना भी मानने को बाध्य करता है कि बिना पैसे के मनुष्य टूट जाता है।

ग्राम जीवन में खेती–बाढ़ी तथा धन दौलत के मोह में मनुष्य एक दूसरे का खून करने पर भी तुल जाता है। सिर्फ अपने कुनवे को अच्छी तरह से बनाये रखने के लिये वह दूसरे की गृहस्थी तथा जीवन को उजाड़ कर देता है। स्वार्थ की यह परिसीमा है कि वह मनुष्य –मनुष्य से बेरहमी या अमानवीयता से व्यवहार करता है। मनुष्य की सवार्थान्धता कितने हद तक बढ़ जाती है। और जिसने आर्थिक मदद की होती है, उसके प्रतिकृतज्ञता या उऋणता का भाव जताने के बजाय वह उसकी हत्या ही किस कृतघ्नता से कर बैठता है। पैसे के लिये पागल बने हुये व्यक्ति की यह हरकत समाज के लिये एक समस्या ही बन जाती है। जैनेन्द्र ने इसका चित्रण "मौत की कहानी" इस कहानी में किया है। चाचा की हत्या में,–

"डालचन्द का नाम और उसका भाग प्रमुख था। पहले उसी ने लाठी मारी थी..... उस क्रूर ने गिरने पर भी कई लाठियाँ मारी थी। वही छोटे चाचा का हत्यारा है...... वह अभी तक इनका कर्जदार है।"[2]

---

1. जैनेन्द्र कुमार–छठा भाग, आतिथ्य, पृ0 91 पू0 प्र0 दिल्ली 1981
2. जैनेन्द्र कुमार–सातवाँ भाग, मौत की कहानी, पृ0 77, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1983

ग्रामीण विभाग में यह समस्या बनी हुई है कि मालदार आदमी अपना रोब जमाने के लिये किस प्रकार अपनी सम्पत्ति का अवलम्बन करता है। धन के कारण ही वह दूसरों पर अपना अमल रखता है। इतना ही नहीं जमीन और जायदाद को वह इसलिये हथियाता रहता है, कि समाज में वह अपना अधिकार जताये रहे। चाचा की जिस "डालचन्द" ने हत्या की थी उसका परिचय जैनेन्द्र ने इस प्रकार दिया है, "बात मीठी करता है, पर भीतर छुरी है। पास एक गांव है उसका चार आना मालिक है। बड़ा रोब वाला और रसूल वाला आदमी है, पर एक नम्बर का बदमाश है।"[1]

मध्यवर्ग का व्यक्ति तो आज आय--व्यय के हिसाब में दिनरात अपना माथा लगाये हुये है। उसका जीवन एक दायरे में बन्द है। जिससे बाहर आना उसके लिये नामुमकिन हो गया है। आर्थिक अभाव में उसे दानधर्म तथा मानवता बनाये रखना भी दुषवार हो गया है। किसी की मदद करते न बनना तथा दिल में किसी के प्रति हो भी तो जताते न बनना एक आर्थिक समस्या का ही रूप है। जिसका चित्रण जैनेन्द्र ने "तो लाये" नामक कहानी में किया है--

"क्लर्क आदमी हूँ। इससे मेरी गिरस्ती का हाल आप जान ही सकते हैं। हिसाब कसा-बँधा ही रहता है। घट--बढ़ की गुंजाइश तो उसमे से शायद ही निकले। तीस दिन के वेतन में 28 दिन का खर्च। इस तरह दो दिन हिसाब में सदा चढ़े ही रहे है। इस चौकस हिसाब मे कही ऐसी सन्धि नहीं है कि दयामाया का इसमें प्रवेश हो सके।'[2] खाट पर पड़ा हुआ बीमार आदमी इस क्लर्क से दो रूपया माँगता है। और दो रोज जीने

---

1. जैनेन्द्र कुमार--सॉतवा भाग-- मौत की कहानी पृ0 77, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1983
2. जैनेन्द्र कुमार--सातवां भाग-- तो लाये ? पृ0 119, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1983

की उम्मीद रखता है। लेखक उसने वादा करता है कि वह उसे जरूर देगा। लेकिन घर आकर वह उसका बजट देखता है तो ऐसी कोई उम्मीद नहीं बॉधती कि वह उसे दो रूपये देगा। बीमार आदमी दो रूपयें के लिये तरसता है और लेखक दो रूपये उसे नहीं दे सकता इसलिये व्याकुल हो जाता है। बीमार आदमी की निगाह से बचकर उसे पार करके वह जाता है। मानो वह दोषी है, गुनहगार है। पैसे के अभाव के कारण मनुष्य को मनुष्य से ऑंख बचाकर किस कदर रहना पड़ता है। मनुष्य-मनुष्य के प्रति दया तथा प्रेम भी पैसे के अभाव में नहीं व्यक्त कर सकता। यह मनुष्यता की विडम्बना है। अर्थ के कारण बनी हुई यह समस्या मध्यवर्ग की जानलेवी समस्या है।

बीमार आदमी बेहोश हो जाता है। अब वह चन्द पलों का मेहमान है। लोग उसके इर्द--गिर्द इकट्‌ठा हुये है। डाक्टर इलाज कर रहा है और उसकी ऑखे खुल जाती है। लेखक की ओर देखकर वह कहता है "तो लाये ? और उसकी ऑखे फटी की फटी रह गई।"[1] अन्तिम सांस भी उसने पैसे के आभाव को महसूस करते ही ली। अर्थ के अभाव के कारण मानों वह मर गया।

पैसे के अभाव मे निम्न श्रेणी के लोगों का कितना बुरा हाल है। इस कहानी में यही दर्शाया गया है कि पैसे के सभी मित्र होते है। पैसे के सभी नाते होते है, पैसा नहीं होता रिश्तेदार भी मुकुर जाते है। इतना ही नहीं भाई--भाई को नहीं पहचानता। प्रेमाश्रित यह नाते कितने खोखले होते है। इसका एक चित्रण देखिये--

---

1. जैनेन्द्र कुमार-- सातवां भाग-- तो लाये ? पृ0 121, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली 1983

"दो उसके छोटे भाई है। इन्हें उसी ने पाला--पोसा है, ब्याह किया है। उसकी पान की दुकान थी, चलती थी, फिर भी उसमें टोटा आने लगा। पैसा देता रहा तब तक भाई उसके थे और उनकी बीबियाँ भी उनको मानती थी। भाई दो पैसे लाने लगे और दुकान उठ गई तो अब उसे यहां पटक रखा है। न दवा है न दारू है। ऊपर से ताने और सुनाये जाते है। दो वक्त खाने का भी ठीक नहीं।"[1]

पैसा अब प्राप्त नहीं होता है इसलिये उससे भाई तथा भाभी आँख बचाकर रहते हैं। इतना ही नहीं वे पास भी फटकते नहीं। दो चार का उस पर जो देना आता है, वह उसे घड़ी भी चैन नहीं लेने देते। पैसे के आभाव में वह इतना लाचार एव विवश हो गया है कि वह मरना चाहता है। पैसा कितना बलवान एवं प्राणवान होता है कि वह मनुष्य को जिस प्रकार जिलाये रखता है वैसे ही वह मरने को बाध्य करता है। अर्थ प्रधान हुई इस समाज रचना में मानों मनुष्य पैसे के बल पर ही जिन्दा है। 'पैसे' के कारण मनुष्य जीवन की हुई यह वाताहत आज की एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई है। लेखक से वह आदमी दो रूपये माँगता है। वह कहता है --

"क्या दो रूपये मैं उसे दे सकता हूँ ? वह कहता है, बड़ी मेहरवानी होगी। दो रोज जी लूँगा।"[2]

एक मरीज पैसे के होने से जीने की उम्मीद रखता है। क्योकि दो रूपये दो दिन की जिन्दगी बख्शता है। यह पैसे का रोग है। जब पैसा पास होगा आदमी जिन्दा

---

1. जैनेन्द्र कुमार-- सातवां भाग-- तो लाये ? पृ0 118, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1983
2. वही-- पृ0 119

रहेगा। पैसा नहीं होगा तब वह जिन्दगी से हाथ धो बैठेगा। पैसे के बिना बड़ी ही हीन समस्या है। अतः जो कुछ है, सब पैसा ही है, और कुछ नहीं।

अतः आर्थिक दृष्टि से मनुष्य के सामने अर्थोपार्जन की मूलभूत समस्या है। वह धन की प्राप्ति किस तरह से करे ? श्रम मूलक या श्रम विरहित। ऐसे कई व्यक्ति है जो श्रम विरहित धन को स्वीकार नहीं करते उसे वे 'कालाधन' मानकर उसका धिक्कार करते रहते है। सही मात्रा में यही काला धन होता है। यह माना जाये या नहीं, परन्तु यह भी एक समस्या इसमें चित्रित की है। अन्न, वस्त्र और निवास यह मनुष्य की मूलभूत आवश्यकतायें हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिये मनुष्य को कितना लाचार बनना पड़ता है। अर्थ के अभाव में मनुष्य लाचार बनता है। मनुष्य ही मनुष्य को कितना लाचार बना देता है। अर्थ के संघर्ष से भरे जीवन की अनेकों कहानियाँ कहानीकारों ने लिखीं जो अनेक संग्रहो तथा प्रतिनिधि कहानियों मे प्रस्तुत है। आर्थिक सघर्ष की वेदना को स्वातन्त्र्योत्तर आधुनिक हिन्दी कहानियों में समुचित सम्वेदना के साथ अभिव्यक्त किया गया है।

सन्दर्भित ग्रन्थों की सूची

:: संदर्भित ग्रन्थों की सूची ::

कहानियों के संग्रह

1. आधुनिक हिन्दी कहानियाँ — डा0 नन्द दुलारे बाजपेई, डा0 विजय शंकर मल्ल
2. आधुनिक हिन्दी कहानी — डा0 लक्ष्मीनारायण लाल
3. आधुनिक हिन्दी कहानियाँ — सं0 भगवतस्वरूप मिश्र
4. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी कोश (भाग एक) — सं0 महेश दर्पण
5. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी कोश (भाग दो) — सं0 महेश दर्पण
6. चिट्ठी पत्री — सं0 अमृतराय
7. बापू कथा — सं0 हरिभाऊ उपाध्याय
8. हिन्दुस्तान की कहानी — पं0 जवाहरलाल नेहरु
9. अभिशप्त — यशपाल
10. सड़क पर — सं0 पहाड़ी
11. प्रतिनिधि कहानियाँ — सं0 पहाड़ी
12. यही सच है और अन्य कहानियाँ — मन्नू भण्डारी
13. प्रतिनिधि कहानियाँ — मन्नू भण्डारी
14. नारी जीवन की कहानियाँ — प्रेमचन्द
15. मानसरोवर (भाग 1) — प्रेमचन्द
16. मानसरोवर (भाग 3) — प्रेमचन्द
17. मानसरोवर (भाग 6) — प्रेमचन्द
18. मानसरोवर (भाग 7) — प्रेमचन्द

19.	मानसरोवर (भाग 8)	प्रेमचन्द
20.	प्रेमचतुर्थी	प्रेमचन्द
21.	प्रेम प्रसून	प्रेमचन्द
22.	प्रेम पच्चीसी	प्रेमचन्द
23.	संचेतना	सं0 महीपसिंह, डा0 हरदयाल
24.	असफल दाम्पत्य की कहानियाँ	चित्रा मुद्गल
25.	एक कहानी और	डा0 लक्ष्मीनरायण लाल
26.	कुछ और कितना	डा0 महीपसिंह
27.	एक साहित्यिक की डायरी	मुक्तिबोध
28.	काठ का सपना	मुक्तिबोध
29.	''आतंक बीज''मॉ यह नौकरी छोड़ दो	निरूपमा सेवती
30.	हंजाजाई अकेला	मार्कण्डेय
31.	भूदान (कहानी संग्रह)	मार्कण्डेय
32.	इन्हे भी इन्तजार है (कहानी संग्रह)	डा0 शिवप्रसाद सिह
33.	डाली नहीं फूलती (कहानी संग्रह)	शानी
34.	यही सच है (कहानी संग्रह)	मन्नू भण्डारी
35.	एक दिन (तृतीय भाग)	जैनेन्द्र कुमार
36.	अपना--पराया दिन (द्वितीय भाग)	''
37.	प्रियव्रत (छठा भाग)	''
38.	घुघॅरु (चतुर्थ भाग)	''
39.	घुघॅरू (छठा भाग)	''
40	चोरी (छठा भाग)	''

41.	आतिथ्य	(छठा भाग)	जैनेन्द्र कुमार
42.	इक्के में	(छठा भाग)	"
43.	जनता	(प्रथम भाग)	"
44.	जनार्दन की रानी	(प्रथम भाग)	"
45.	फाँसी	(प्रथम भाग)	"
46.	मदर के बाद	(प्रथम भाग)	"
47.	कालधर्म	(तृतीय भाग)	"
48.	धरमपुर का वासी	(तृतीय भाग)	"
49.	कामनापूर्ति	(तृतीय भाग)	"
50.	अपना-अपना भाग्य	(द्वितीय भाग)	"
51.	एक टाइप	(छठा भाग)	"
52.	कुछ उलझन	(सांतवा भाग)	"
53.	मौत की कहानी	(सांतवा भाग)	"
54.	तो आये	(सांतवा भाग)	"
55.	यथावत्	(दसवाँ भाग)	"
56.	अन्धे का भेद	(पाँचवा भाग)	"
57.	एक गौ		
58.	बापू के पत्र: प्रेमा बहिन के नाम		
59.	लोग विस्तरों पर	(कहानी संग्रह)	काशीनाथ
60.	आदिम रात्रि की महक	(कहानी संग्रह)	फजीश्वरनाथ रेणु
61.	सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ	(कहानी संग्रह)	शैलेश मटियानी

62. सूने आँगन रस बरसै (कहानी संग्रह) डा0 लक्ष्मीनरायण लाल

63. जिन्दगी और जोंक (कहानी संग्रह) अमरकान्त

64. अन्ततः (कहानी संग्रह) हिमाशु जोशी

65. एक किरती और (कहानी संग्रह) पानू खोलिया

66. देश के लोग (कहानी संग्रह) अमरकान्त

67. गुलाब के बगीचे तक (कहानी संग्रह) मृदुला गर्ग

68. सन्तुलन निरूपमा सेवती

69. श्रेष्ठ समान्तर कहानियाँ सं0 हिमाशु जोशी

70. बन्द गली का आखिरी मकान डा0 धर्मवीर भारती

71. काली साड़ी (संकलन) ममता कालिया

72. पन्द्रह सक्रिय कहानियाँ सं0 राकेश वत्स

73. सिक्का बदल गया सं0 नरेन्द्र मोहन

74. प्रतिनिधि कहानियाँ मोहन राकेश

75. ये तरे प्रतिरूप अज्ञेय

76. जहर श्रवण कुमार

77. युद्ध की तेरह श्रेष्ठ कहानियाँ सं0 मनहर चौहान

78. प्रतिनिधि कहानियाँ रमेशचन्द्र शाह

79. रीतते हुये (धूप के अहसास) दीप्ति खण्डेलवाल

80. श्रेष्ठ संचेतन कहानियाँ सं0 सुदर्शन नारग

81. अपरिचित का परिचय प्रियदर्शी प्रकाश

82. मेरी तैंतीस कहानियाँ शैलेश मटियानी

83.	श्रेष्ठ कहानियाँ	कमलेश्वर
84.	इन्सटालमेन्ट	भगवतीचरण वर्मा
85.	'एक रात' की भूमिका	जैनेन्द्र कुमार
86.	जैनेन्द्र की कहानियाँ (भाग 6)	जैनेन्द्र कुमार

:: कहानियों की आलोचनात्मक पुस्तकें ::

1.	कहानी स्वरूप और संवेदना	राजेन्द्र यादव
2.	साठोत्तर हिन्दी कहानी (मूल्यों की तलाश)	डा0 वासुदेव शर्मा
3.	समकालीन कहानी (युगबोध का संदर्भ)	डा0 पुष्पपाल सिंह
4.	नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर
5.	परम्परा का नया मोड़	डा0 बच्चन सिंह
6.	नई कहानी संदर्भ और प्रकृति	सं0 देवीशंकर अवस्थी
7.	एक रचनाशील संदर्भ	सुरेन्द्र चौधरी
8.	हिन्दी कहानी पहचान और परख	स0 इन्द्रनाथ मन्मथ मदान
9.	कांग्रेस का इतिहास	पट्टाभिसीता रमैया
10.	प्रेम साहित्य में व्यक्ति और समाज	स0 डा0 रक्षापुरी
11.	भारत वर्तमान और भावी जीवन	रजनी पामदत्त
12.	प्रेमचन्द व्यक्ति और साहित्यकार	मन्मथनाथ गुप्त
13.	हिन्दुस्तान की कहानी	पं0 जवाहरलाल नेहरू

14. हिन्दी साहित्य का इतिहास — स0 डा0 नगेन्द्र

15. साहित्य और वद्रोह — स0 डा0 नगेन्द्र - मोहन देवेन्द्र इस्सर

16. संचेतन कहानी रचना और विचार — डा0 महीप सिह

17. हिन्दी कहानी (अन्तरंग पहचान) — रामदरश मिश्र

18. एक दुर्लभ व्यक्ति — श्याम मनोहर जोशी

19. आसपास जीते हुये — नित्यानन्द

20. हिन्दी कहानी का मध्यान्तर — स0 रमेश बक्षी

21. एक दुनिया समानान्तर — स0 राजेन्द्र यादव

22. आधुनिक हिन्दी कहानी (समाज शास्त्रीय विवेचन दृष्टि) डा0 रघुवीर सिन्हा

:: राजनीतिक आर्थिक चर्चाओं के सन्दर्भित ग्रन्थ ::

1. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि — ऐ0आर0 देशाई

2. द इण्डस्ट्रियल एबोल्यूशन आफ इण्डिया इनरीसेन्ट टाइम्स (1931) — डी0आर0 गाडगिल

3. द डेवलपमेन्ट ऑफ कैपिटलिस्ट इन्टरप्राइज इन इण्डिया (1935) — डी0एच0 वायुकैनन

4. द रुइन ऑफ इण्डियन ट्रेड एवं इण्डस्ट्रीज (1933) — मेजर बी0डी0 बसु

5. द अवेकनिंग आफ अमेरिका (1939) — बी0एफ0 कैलबर्टन

6. हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया — जेम्स गिल

7. अकांस्टि ट्यूशनल हिस्ट्री आफ इण्डिया (1936) — ए0वी0 कीथ

8. रायल कमीशन ओन एग्रीकल्चर

9. इण्डिया ए हिस्टोरिकल सर्वे — ए0के0 नीलकान्त शास्त्री, जी0 निवासाचारी

10. भारतीय अर्थनीति (विकास की एक दिशा) — दीनदयाल उपाध्याय

11. जवाहरलाल नेहरु स्पीच (1953--57)

12. शोसल चेन्ज इन इण्डिया — वी0 कुप्पू स्वामी

13. इण्डिया विन्स फ्रीडम — मौलाना अबुल कलाम आजाद

14. चेलेन्जस् इन इण्डिया — ताया जिन्किन

15. ट्रस्टीशिप सिद्धान्त और व्यवहार — नरेन्द्र दुबे

16. भारत में आर्थिक विकास एवं नियोजन — रस्तोगी एवं राव

17. भारतीय अर्थव्यवस्था (चौदहवा सस्करण, 1981) — रुद्रदत्त एवं के0पी0 सुन्दरम्

18. भारतीय अर्थव्यवस्था और उसका विकाश — के0एन0 राजकमल

19. आर्थिक विकास एवं नियोजन (1986) — एस0पी0 सिंह

20. भारतीय राजनीतिक दल (नीतियाँ और कार्यक्रम)

21. समाजवाद (लक्ष्य तथा साधन) — आचार्य नरेन्द्र दुबे

22. समाजवाद — डा0 सम्पूर्णानन्द

23. सर्वोदय अर्थशास्त्र — जवाहरलाल जैन

24. सर्वोदय अर्थशास्त्र — भगवानदास केला

25. भारत की आधुनिक आर्थिक प्रगति — पी0सी0 जैन

26. भारतीय अर्थव्यवस्था चतुर्थ संस्करण, 1981 — एस0के0 मिश्र

27. स्थाई समाज व्यवस्था — जे0सी0 कुमार वप्पा

28. भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्यायें — भटनागर एव मित्तल

29. भारतीय अर्थव्यवस्था और उसका विकास — श्रीकान्त मिश्र

30. भारत के विभाजन की कहानी — ए0के0 कैम्पबैल

31. स्वतन्त्रता के पुजारी — सं0 सुरेन्द्र शर्मा

32. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन — एम0एन0 श्रीवास्तव

33. आधुनिक भारत — प्रो0 विपिनचन्द्र

34. आधुनिक भारत का इतिहास — स0 आर0एल0 शुक्ला

35. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य — डा0 कृष्ण बिहारी मिश्र

36. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष — प्रो0 विपिनचन्द्र

37. भारत का मुक्ति संग्राम — अयोध्या सिंह

38. मेरे सपनों का भारत — मोहनदास कर्मचन्द गॉधी

39. आर्थिक और औद्योगिक जीवन — गॉधी जी (सग्राहक व्ही0बी0खेर)

40. महात्मा गॉधी का दर्शन — डा0 धीरेन्द्र मोहनदत्त

41. महात्मा गॉधी का आर्थिक दर्शन — प्रो0 दूधनाथ चतुर्वेदी

42. महात्मा गॉधी का समाज दर्शन — महादेव प्रसाद

43. गॉधीवादी संयोजन के सिद्धान्त — श्री मन्नारायण

44. गॉधी और भारत — डा0 राजानन्द

45.	गॉधी और हम		डा0 प्रेमभटनागर, भंवरलाल शर्मा
46.	गॉधी जी	हरिजन	
47.	गॉधी	आधुनिक परिपेक्ष्य	भवानीशंकर व्यास
48.	परिपेक्ष्य और प्रतिक्रियायें		डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
49.	सेन्ट परसेन्ट स्वदेशी	(1965)	गॉधी जी
50.	खादी	(1959)	गॉधी जी
51.	इण्डिया	(1984)	
52.	गॉधीवाद की शव परीक्षा		यशपाल

<u>पत्र--पत्रिकायें</u>

1. प्रगति मंजूषा – पत्रिका, अप्रैल, 1985
2. प्रतियोगिता दर्पण जुलाई, 1985
3. योजना 10--31 सितम्बर, 1985
4. प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के भाषण से-- (सूचना प्रसारण दिल्ली से)
5. स्रोत इण्डिया
6. दूसरी पंचवर्षीय योजना : संक्षिप्त रूपरेखा (सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय)
7. तीसरी पंचवर्षीय योजना : योजना आयोग: भारत सरकार द्वारा
8. चौथी पंचवर्षीय योजना : संक्षिप्त प्रारूप
9. छठी योजना (1980–85) पृ0 1 से 14
10. सांतवी योजना (85–90)
11. रविवार 13 से 19 अगस्त , 1978

12. खादी ग्रामोद्योग पत्रिका, अंक 6 मार्च 1985

13. सरदार पटेल के भाषण माला से 3--10--48 को नई दिल्ली में दिया गया।
 (भारत की एकता का निर्माण पुस्तक में संकलित पटेल के 27 भाषण से)

14. भारत के राजनैतिक दल : नीतियाँ और कार्यक्रम संविधानिक तथा ससदीय अध्ययन संस्थान के लिए प्रकाशित रिसर्च दिल्ली।

15. भारतीय अर्थ व्यवस्था -- स्रोत -- एच0सी0 शर्मा एवं आर0एन0 सिह

16. खादी ग्रामोद्योग वार्षिकांक : अक्टूबर, 1968

17. रूलर इन्डस्ट्रियलाइजेशन, योजना मार्च 79, एम0आर0कोलालहाटकर

18. यंग इण्डिया, 13--11--1984

19. यंग इण्डिया, 5--12--1979

20. खादी एवं ग्रामोद्योग पत्रिका वार्षिकांक, अक्टूबर, 1985

21. खादी एवं ग्रामोद्योग, " जुलाई, 1985

22. योजना-- 16 से 30 सितम्बर

23. योजना -- 1 से 15 नवम्बर, 1983

24. स्रोत योजना -- 16 से 31 अक्टूबर, 1985

25. अमृत बाजार पत्रिका 258--1934

26. आज वाराणसी -- 9 सितम्बर, 1965
 (अर्थनीति में दृढ़ता और अस्थिरता का अभाव श्री मोरार जी देशाई के लेख से)

27. इन्दिरा गांधी -- नेतृत्व के दस वर्ष-- राजेश शर्मा

28. खादी एवं ग्रामोद्योग पत्रिका-- वार्षिकांक -- अक्टूबर, 1984

29. योजना-- 16 से 31 मार्च 1985, खादी ग्रामोद्योग पत्रिका-- अक्टूबर 1984 --

मुकेशचन्द्र शर्मा

30. धर्मयुग-- 13 जुलाई (बदलाव कहानी)

31. अंजना रंजन दाग -- "मुआवजा"

32. सारिका-- फरवरी, 1987

33. धर्मयुग-- 18 दिसम्बर, 1966 (अतिथि कहानी)

34. सारिका-- जून, 1989 संबंध (श्रवण कुमार)

35. नवलेखन विचार विमर्श गोष्ठी 27--28 मार्च, 1968 (वाराणसी की प्रस्तावना पुस्तिका)

36. अलकनन्दा -- नवम्बर - दिसम्बर, 1974

37. धर्मयुग -- 21 नवम्बर, 1965

38. धर्मयुग - 13 जुलाई, 1969

39. नारी मनोविज्ञान विशेषांक, मार्च--अप्रैल, (साल की पहली रात) कहानी 1971

****